

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY
TIGHT BINGING
BOOK**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU₁180568

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. ^H83.1
D53k

^{P.G.H}
Accession No. 5844

Author এম এফ আলী আনন্ড

Title কয়েদাগি 1957.

This book should be returned on or before the date last marked below.

करचे धागे

कच्चे धागे धर्म प्रकाश आनन्द की कहानियों का पहला संग्रह है। आनन्द पुराने और मँजे हुए लेखक हैं और इनमें से कुछ कहानियाँ कई भाषाओं में अनूदित होकर लोकप्रिय हो चुकी हैं। लेकिन हिन्दी की नयी पीढ़ी के पाठकों के लिए शायद वे नयी हैं, क्योंकि इनके लोकप्रिय होने की बात कदाचित् उनके होश सम्हालने से पहले की है। किन्तु इसी बात से ये कहानियाँ पुरानी नहीं पड़ जातीं। सुन्दर का आनन्द जैसे शाश्वत है, इसी प्रकार इन कहानियों का रस भी स्थायी है। पुरानी शराब के नशे जैसा इनका सुरूर है।

श्री आनन्द ने इस संग्रह में अपेक्षाकृत कुछ नयी कहानियाँ जोड़ दी हैं, जिससे यह संग्रह उनकी कला का प्रतिनिधि संग्रह बन गया है।

कश्चे धामे

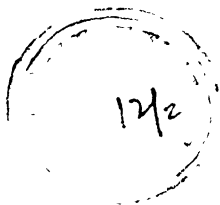
धर्म प्रकाश आनन्द

नीलाम् प्रकाशन

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १९५७

मूल्य [REDACTED] न० पै०



प्रकाशक

नीलाभ प्रकाशन

५, खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद

मुद्रक

भार्गव प्रेस, प्रयाग ।

भा जी अमोलक राम मेहता के लिए

अनुक्रम

यह भी....वह भी	: १७
रामो	: ४४
लारी में	: ५५
पति-पत्नी	: ६५
दिल ही तो है....	: ८१
विदुषी	: १०५
दो आने	: ११६
चर्च गेट से चौपाटी तक	: १३८
यह खत	: १५४
साया	: १७४
कच्चे धागे	: १८७

ज़रा एक मिनट....

दस वर्ष हुए, ये कहानियाँ उर्दू में 'जदीद-जदीदतर' के नाम से पुस्तक-रूप में छप रही थीं। अभी किताब आधी ही छपी थी कि प्रकाशकों का आपस में झगड़ा हो गया। और इस झगड़े के भँवर में मेरा मसौदा भी बह गया। जब तक उनकी परस्पर सुलह-सफ़ाई हुई और प्रकाशन का काम फिर शुरू हुआ, हिन्दुस्तान के दो टुकड़े हो गये थे और पाकिस्तान और भारत के मतवाले आपस में उलझने लगे। चूँकि इस मार-काट के नये शगल से मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी, सोचा अभी लम्बी तानकर सो रहूँ। रामराज्य आने पर इत्मीनान से अपनी किताब छपवा लूँगा। और सोया तो कुम्भकर्ण से नींद उधार लेकर.....

उठा तो देखा कि न उर्दू बाकी है, न उर्दू में हमारे क़दरदान। केवल विधान में पढ़ा कि उर्दू भी भारत की यहीं-कहीं की एक ज़बान है। इधर अशक़ अनुरोध करने लगे कि ये कहानियाँ हिन्दी में भी

पुस्तक-रूप में निकल आयें तो अच्छा है। इस संग्रह की आधी कहानियाँ तो पहले ही हिन्दी में छप चुकी हैं। कुछ का तो भारत की दो-एक और भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। जिन लोगों का अश्क से परिचय है—और मेरा तो उनसे घनिष्ठ परिचय है—वे जानते हैं कि अश्क की बात को टालना कितना मुश्किल है। परन्तु इन वर्षों में मैं साहित्य-क्षेत्र से बहुत दूर भटक चुका था। मेरी पुरानी टोली के लिखने वाले—अश्क, कृष्णचन्द्र, वेदी, मुफ्ती, मंटो इधर-उधर बिखर गये थे और वह वातावरण जिससे मुझको लिखने के लिए प्रेरणा मिलती थी, छिन्न-भिन्न हो गया था। वैसे भी अन्य और अनिवार्य कार्यों में व्यस्तता इतनी बढ़ने लगी थी कि अवकाश नहीं के बराबर रह गया था। दिमाग इतना थक जाता था कि जो थोड़ा-बहुत अवकाश मिलता वह भी आलस्य की भेंट हो जाता। आलस्य यों भी थके दिमाग की बेहतरीन दवा है।

और ऐसे ही दिन महीने होते गये और महीने वर्ष।

मुझे इस बात का दावा नहीं कि मैंने इन कहानियों में समाज-सुधार के कोई विशेष सुझाव रखे हैं। मैं न प्रगतिवादी हूँ, न प्रतिक्रियावादी ! न पथ-प्रदर्शक हूँ, न दार्शनिक। यदि इनमें से कुछ होता तो निश्चय ही समझता कि समाज की हालत नाजुक है और उसे विप्लव से बचाने की संजीवनी मेरे ही पास है। लेकिन मैं तो उनमें से हूँ जो इस दुनिया का काम-काज भी करते हैं और इसकी दिलचस्पियों के तमाशाई भी हैं। हमारे रोज़मर्रा के जीवन में बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें दूसरों के सामने दोहराने को जी चाहता है। इस रोज़ के तमाशे के कुछ पहलू मुझे भी दोहराने योग्य लगे हैं। ये कहानियाँ उन्हीं कुछ पहलुओं की एक भाँकी-मात्र हैं। यह जरूरी नहीं कि जो बातें

मुझे दिलचस्प लगती हैं, वे बाकी दुनिया को भी दिलचस्प लगे। हों, इतना मुझे विश्वास है कि मैं इन बातों को दोहराने योग्य समझने में अकेला नहीं। इन्हें अकसर पाठकों ने पसन्द किया है।

और फिर कहानी को देखने का, उसमें क्या है, यह ढूँढ़ने का एक ही कोण तो होता नहीं। कहानी तो कलाकार के मॉडल की तरह है। कहानीकार उसका निर्माता भी है, दर्शक के नाते उस मॉडल को देखने का उसका अपना ही कोण है। बाकी दर्शक भी उस मॉडल को अपने-अपने परस्पैक्टिव, अपनी-अपनी दृष्टिदिशा से ही देख सकते हैं। मॉडल का अपना व्यक्तिगत अस्तित्व तो है ही, लेकिन अपने से बाहर नहीं। दर्शक उसे अपने कोण से देखता है। उसे जो पहलू नज़र आता है उसके आधार पर वह अपनी कल्पना में जिस मॉडल को साकार करता है, वह उसकी अपनी कृति है, उसके अपने दृष्टि-कोण, अपनी संस्कृति, अपनी अनुभूतियों पर आधारित ! जिस मॉडल को दर्शक ने मूर्तिमान किया है, वह सामने पड़े मॉडल की व्याख्या है, प्रतिकृति नहीं। उसी मॉडल में एक चित्रकार को कुछ नज़र आयेगा, दूसरे को कुछ और। चित्रकार फूजिता की कल्पना में ढलकर वह एक चीज़ बनेगी, जैमनीराय की कल्पना में दूसरी और पिकासो की कल्पना में कुछ और ही। एक तरह से मॉडल के उतने अस्तित्व हैं जितने उसके दर्शक। इसी तरह कहानी में क्या है?—इसके भी उतने ही उत्तर हैं जितने उसके पाठक।

लेखक या ज़रूरत के लिए लिखता है या शौक के लिए। अभी भारत में रुपये आने पाई में लेखक का मूल्य बहुत कम है। इसलिए जिस लेखक को आजीविका के लिए लिखना पड़ता है, उसे बहुत लिखना पड़ता है, लगातार लिखना पड़ता है और बहुत बार

*** ज़रा एक मिनट....

इस बात का ध्यान रखकर लिखना पड़ता है कि उसकी कृति के ग्राहकों की रुचि कैसी है। भाग्य से मुझे अपनी आजीविका के लिए नहीं लिखना पड़ा। इसलिए ज़्यादा लिखा भी नहीं गया। और जो लिखा भी, उसके लिए दिमाग का परेशान नहीं करना पड़ा कि आज-कल कैसी चीज़ 'चलती' है। जो बात कहने का जी चाहा उसे कहा। कोशिश यही रही कि हमारी बाह्य क्रियाओं के अन्तर्गत उन्हें प्रेरित करने वाली जो चेतन, अथवा अवचेतन मानसिक वृत्तियाँ हैं उन्हें समझूँ और उन्हें व्यक्त करने को कुछ नयी राहें ढूँढ़ूँ। इस चेष्टा में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, नहीं कह सकता।

सम्भव है कि ठेठ हिन्दी के प्रेमियों को इन कहानियों की भाषा में अखरने वाली सामग्री प्रचुर मात्रा में मिले। मेरा जन्म-स्थान पंजाब है, मैंने थोड़ी-बहुत उर्दू भी पढ़ी है, कुछ हिन्दी भी लिखी है। मैं हिन्दी का पण्डित नहीं, न होने की अभिलाषा है। हिन्दी अब किसी एक प्रान्त की सम्पत्ति नहीं, सारे भारत की साझे की पूँजी है। इसके विकास में भारत की अन्य भाषाओं के शब्द, मुहावरे, व्याकरण इत्यादि का योग अनिवार्य है। किसी एक प्रान्त में प्रचलित भाषा के रूप को हिन्दी का एक-मात्र रूप मानकर उसे सारे भारत की भाषा समझ लेना तो कृप-मण्डूक की-सी समझ है। हिन्दी भाषा और उसका साहित्य सजीव है। उसके विकास में भारत के सभी प्रान्तों के लेखकों तथा साहित्यकारों की छाप अनिवार्यतः पड़ेगी। नहीं तो यह राष्ट्र की बोली कभी न हो पायेगी। संस्कृत की तरह केवल किसी वर्ग-विशेष की विचार-वाहिनी होकर ही रह जायगी। यह सत्य कुछ को कटु भले ही लगे, किन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हिन्दी मेरी मातृभाषा न होने के कारण इन कहानियों में उन द्वा-एक भाषाओं का सम्मिश्रण अनिवार्य है, जिनका

मुझे थोड़ा-बहुत ज्ञान है। परन्तु यह सम्मिश्रण जरूरी नहीं बुरा हो, निन्दनीय हो। खैर, कहानियाँ जैसी हैं, भाषा जैसी है, आपके सामने है।

पहले-पहल जब मैंने साहित्य-क्षेत्र में कदम रखा था तो अश्क से मुझे बहुत प्रोत्साहन मिला था। अब भी अश्क ही मुझे 'अमर' बनाने पर तुले हुए हैं। यदि उनका आग्रह न होता तो मैं हर रोज़ अपने से—'अवकाश कहाँ है?'—सवाल पूछता रहता, और 'नहीं है'—जवाब देता रहता। और खाहमखाह 'अमर' होने से वंचित रह जाता।

लगता है 'अमर' होना मेरी जन्म-पत्री में ही लिखा था। इसी लिए 'ना ना,' 'हाँ हाँ' करते किताब छप गयी। यदि आपकी जन्म-पत्री में भी इसे पढ़ना लिखा है तो आप पढ़ ही लेंगे। नहीं तो..... नमस्ते !

कलकत्ता
२० जून, १९५७

धर्म प्रकाश आनन्द

कच्चे धागे

यह भी...वह भी

और बड़े शहरों की तरह बम्बई में भी बहुत-सी बातें ऐसी हांती रहती हैं, जिनका कोई कारण नहीं दिखायी देता। यह बात भी उन्हीं में से एक है।

*

दादर से ट्राम के ऊपरी भाग में बैठकर कालवादेवी जायें तो दांनों और चार-मंज़िला मकानों के फ्लैट दिखायी देते हैं। प्रत्येक फ्लैट के बाहर एक छज्जा है। छज्जों के जँगलों पर झुके हुए चेहरे हैं—पीले ज़र्द चेहरे—स्त्रियों के, बच्चों के, जवानों के, बूढ़ों के। ये नीचे सड़क पर बहते हुए जीवन के तूफ़ान को ग़ौर से देखा करते हैं। उनके लिए यही सैर है, यही सिनेमा। उनके लिए यही मानसिक भोजन है, यही शारीरिक व्यायाम। आपको यहाँ सब प्रकार के लोग मिलेंगे। महाराष्ट्री, पंजाबी, मद्रासी, बंगाली। कमरों के अन्दर आपको मँजे हुए बर्तनों की कतारें भी नज़र आयेंगी और दो-एक चारपाइयाँ भी। बम्बई में

इन लोगों से यह पूछने की वृष्टता करना कि उनके मकान में कितने कमरे हैं, उन्हें भी शर्मिन्दा करना है और अपनी भी अनभिज्ञता का परिचय देना है। दादर और कालबादेवी के बीच मध्य-वर्ग के लोग रहते हैं। इनके पास दो-दो कमरे वाले फ्लैट हैं। इन्हीं फ्लैटों में एक से पिछले रविवार एक नवयुवक नीचे सड़क की पटरी पर गिर पड़ा था। वह मरा नहीं। दुर्भाग्य उसका। पर चोटें काफ़ी आयी हैं। अब अस्पताल में है। इस घटना के बारे में लोगों का अपनी-अपनी धारणा है—उसके सिर में चक्कर आ गया था; उसको किसी लड़की से मुहब्बत थी; उसने आत्महत्या करने की कोशिश की थी—पर असल कारण किसी को मालूम नहीं। हाँ, सम्भव है कि इसका सम्बन्ध उसी रविवार की सुबह को घटित कुछ बातों से हो....

✱

उस सुबह भी रोज़ की तरह केशवराव आपटे की आँख छः बजे खुली थी। नींद के खुमार को दूर करने के लिए उसने दो-तीन करवटें ली थीं। फिर उठकर बिस्तर पर बैठ गया था। उसका दिल अपने अनिश्चित भविष्य के विचार से भयभीत था। उसने इस साल तीसरी बार आई० सी० एम० की परीक्षा दी थी। यह उसका अन्तिम चांस था। तीन वर्ष हुए जब उसने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी। तब से अब तक वह छः बार प्रतियोगिता में बैठ चुका था। पर एक बार भी उसके परिश्रम, उसकी विद्वत्ता, उसके भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया था। बम्बई प्रेज़िडेंसी की सिविल सर्विस की परीक्षा देते समय उसे अपनी सफलता का पक्का विश्वास था। वह

तो पहले ही अपनी मेधा के कारण प्रान्त भर में प्रसिद्ध था। उसे और कोई प्रतियोगी ऐसा नहीं दिखायी देता था जो उससे टक्कर ले सके। लेकिन परीक्षा हुई, फल भी निकला, पर आपटे सफल न हुआ। पटेल, जिसकी स्थूल-बुद्धि के कारण सारी क्लास उसका मज़ाक उड़ाया करती थी, सर्वप्रथम रहा। गोखले भी योंही पास हो गया। काले, जो इतना खर-डिमाग था कि केशव आपटे ने उससे कभी सीधे मुँह बात भी न की थी, इन्टरव्यू के बल पर आ गया। और मुसलमान—उसके जितने भी मुस्लिम दोस्त थे सब सरकार की ओर से नामज़द हो गये। केवल उसी को सब जगह असफलता का मुँह देखना पड़ा। सूबे की सिविल सर्विस में, 'फ़िनान्स' के इम्तहान में, आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में। हर बार कोई-न-कोई गड़बड़ अवश्य हो जाती। एक बार तो वह केवल दो नम्बरों की कमी के कारण सफल होता-होता रह गया। एक बार इतिहास ने, जिसे वह अपना निजी मज़मून समझता है, उसे धोखा दिया और पिल्लली बार तो वह केवल इन्टरव्यू के कारण मार खा गया। वह केशवराव आपटे, जिसको अपने व्यक्तित्व पर नाज़ था, जिसको अपनी बुद्धि पर भरोसा था, जिसको अपने स्पोर्ट्स-रेकार्ड पर गर्व था, अपने परीक्षकों को प्रभावित न कर सका था। और इस बार उसका अन्तिम अवसर था। दो महीनों में वह पच्चीस वर्ष का हो जायगा। फिर सब सरकारी नौकरियों के दरवाज़े उसके लिए बन्द हो जायेंगे। खैर, इस बार तो उसके सफल होने में कोई सन्देह ही नहीं। सफलता....पर, पर यदि....और एक बार ही केशव के शरीर में एक ठंडी सनसनी-सी फैलकर रह गयी। वह फिर लेट गया। उसने कसकर चादर को अपने ऊपर खींच लिया। नहीं, यह नहीं होगा। अभी तो उसे सफलता के पश्चात् बहुत कुछ करना है। केशव प्रकृति से ही

*** यह भी....वह भी

अपने पर भरोसा रखने वालों में से है। उसका दिल मनोकामनाओं से भरा हुआ है। पर वह अपनी उमंगों का टिटोरा नहीं पीटता। वह मनोकामना ही क्या हुई जिसकी पूर्ति होने से पहले ही लोगों को पता चल जाय कि वह क्या चाहता है। वह चुपचाप काम करने वालों में से है। वह अपने कुटुम्ब को, मित्रों को, संसार को एक वारगी ही चकित कर देना चाहता है। और उसके बारे में चाहे कुछ भी समझें, पर उसे अपने-आप पर पूर्ण विश्वास है कि उसके लिए कोई कार्य भी असम्भव नहीं। समय पड़ने पर वह तैरकर समुद्र में गार कर सकेगा, बर्फ से ढके पहाड़ के शिखर पर भी जा पहुँचेगा। लोगों को क्या मालूम कि केशव के दिल में क्या है। लोग मूर्ख हैं, अंधे हैं। उन्हें मूर्ख और अंधा ही बना रहने दो। वे समझते हैं कि केशव में बुद्धि नहीं है, साहस नहीं है, अपने पर भरोसा नहीं है। उन्हें लगता है कि केशव पढ़ाई में दिल नहीं लगाता, ध्यान से नहीं पढ़ता। ‘भला परिश्रम का फल भी कभी व्यर्थ गया है?’ वे पूछते हैं। पूछने दो। पिछले वर्ष भी आई० सी० एस० का परीक्षा-फल मालूम होने पर जब उसके सम्बन्धी, साथी उसे ढाड़स बँधाने आये थे तो वे भी कुछ चुभते हुए वाक्य कहे बिना न रहे थे। यह प्रतियोगिताएँ कोई युनिवर्सिटी की परीक्षाएँ नहीं हैं, जो चार टेक्स्ट की पुस्तकें पढ़ीं और प्रान्त-भर में प्रथम आ गये। इनमें तो वही पास होते हैं जो दिल लगाकर पढ़ें। इन कम्पीटीशनों के लिए तो बड़ा विस्तृत ज्ञान चाहिए। ‘केशव, क्षमा करना, पर ये प्रतियोगिताएँ कोई बच्चों का खेल नहीं हैं। हमारे लड़के विश्वबन्धु ने जब परीक्षा दी थी तो वह कई-कई दिन घर से बाहर न निकलता था। कुंडी लगाकर चौबीस-चौबीस घंटे पढ़ने में व्यस्त रहता था। मित्रों करके उसे थोड़ा-बहुत ग्वाने पर विवश किया करते, नहीं तो उसे ग्वाने-पीने की

भी मुधि न रहती थी !'

केशव के दिल में ऐसे अवसरों पर एक उबाल-सा उठा करता । लोग उसे समझते क्यों नहीं ? वे उसे समझने की कोशिश क्यों नहीं करते ? खूब ! खून-गसीना एक करने की ज़रूरत है ! यह जो मेरे चेहरे की कान्ति पीली पड़ गयी है, यह किस बात की द्योतक है ? यह जाँ मैं सारी-सारी रात जागा करता हूँ, किस बात की निशानी है ? खैर, नहीं समझते तो न समझें । और केशव दाँत पीसने लगता । क्रोध से उसकी मुटियाँ बन्द हो जातीं । इस बार सही । और हल्की-सी मुस्कान उसके ओठों पर फैल गयी । सफल प्रतियोगियों की लिस्ट में सब से ऊपर मेरा नाम होगा । मुझे कुछ कहने की ज़रूरत ही न रहेगी । जो आज मुझे ताने दे रहे हैं, दिल में जल-भुन जायेंगे । आदमी की सफलता परायों के लिए खुशी का कारण होती है, अपनों के लिए नहीं । अन्दर-ही-अन्दर वे सब डाह से जल मरेंगे, पर ऊपर से कहेंगे—'केशव तुम तो छिपे रुस्तम निकले ।' केशव पहले कुछ नहीं कहेगा । फिर एक फीकी-सी मुस्कराहट ओठों पर ले आयेगा और बोलेगा—'ये कम्पीटीशन किसी की विद्वत्ता के प्रमाण नहीं हैं । यह तो भाग्य का खेल है । हमारे सहपाठियों में से ही देख लो । सबसे योग्य विद्यार्थी मनमोहन दात्रेय और मन्मुख मराठे पास नहीं हो सके ।'

केशव का सारा शरीर खुशी से काँप उठा । एक हल्की-सी सिहरन उसकी नसों में दौड़ गयी । और उसने चादर खींचकर अपने सिर को भी छिपा लिया । परीक्षा-फल की लिस्ट बृजमोहन के घर भी पहुँचेगी । सुपमा भी पढ़ेगी । सुपमा ! कितना भोला नाम है । जब मैं बृज के घर अफ़सोस करने जाऊँगा कि भाई, यह क्या हो गया, खैर अगली बार सफल हो जाओगे तो क्या सुपमा कनखियों से मेरी ओर न देखेगी ?

*** यह भी....वह भी

उसकी आँखों में लालसा होगी, उसके हृदय में प्यार। देखने में कितनी भली मालूम होती है। वह मुस्कराहट ! व आँखें ! सुषमा !! यदि उसकी नाक इतनी चपटी न होती और यदि वह हँसते समय ऐसे मुँह न खोला करती तो शायद मुझे उससे मुहब्बत ही हो जाती। खूब, खूब। क्या बेवकूफी की बातें हैं ! पर सुषमा है सुन्दर। इसमें सन्देह लेशमात्र भी नहीं हो सकता। खैर, मुझे चाहे उससे प्रेम हो या न हो, उसे तो मुझ पर मरना ही चाहिए। उसे एक आई० सी० एस० से मुहब्बत है, इसी से वह फूली न समायेगी। परन्तु मेरी महत्ता इसी में है कि मैं इस प्रेम और प्रेमियों के झमेले से दूर रहूँ। इससे लड़कियों के दिल में मेरे लिए और भी सम्मान बढ़ेगा। भोली-भाली सुन्दर तरुणियों का मेरी ओर चोरी-चोरी कनखियों से देखना मुझे बहुत भाता है। उन निगाहों में प्रशंसा होता है। मैं भी झूमने लगता हूँ। मैं अपनी आदत से विवश हूँ। जब मेरी बहन की कोई सहेली उससे मिलने आती है तो मैं भी क्यों उसके पास इधर-उधर मँडराया करता हूँ ? इसलिए नहीं कि मुझे अपनी बहन की सखियों को देखने की इच्छा है। उनमें क्या ऐसी विशेषता है ? वे भी और युवतियों ही की तरह हैं। पर बात कुछ और है। मेरी बहन मुझे बहुत विद्वान और लायक समझती है। उसको मुझ पर गर्व है। वह अपनी सखियों को मेरे कारनामे मनाया करती है....हमारे केशव ने बी० ए० में बज़ीफ़ा लिया था : एम० ए० में सर्वप्रथम था ; टेनिस की टीम का कप्तान था ; तैरने की क्लब का सेक्रेटरी था। और मेरी बहन की सखी के ओठों पर एक हल्की-सी मुसकराहट दौड़ जाती है। चोरी-चोरी कनखियों से देखकर वह आँखों-ही-आँखों में मुझे सराहती है। बस, यही मुझे भाता है। यही कमज़ोरी मेरी सबसे बड़ी कमज़ोरी है। मुझे लड़कियों की प्रशंसा-भरी निगाहें बड़ी अच्छी

खगती हैं। शायद यह मेरा भ्रम ही हो। शायद वे मेरी ओर देखती ही न हों। पर इस बात का भ्रम ही कि वे मेरी ओर देख रही हैं, मेरे लिए पर्याप्त है। मेरा खयाल है कि वे निगाहें प्रेम-भरी निगाहें होती हैं। मेरी छाती खुशी से फूल उठती है। परन्तु मेरी शान इसी में है कि चुप्पी साधे रहूँ। प्रेम की उठती हुई तरंगों का कोई उत्तर न दूँ। अब तो आई० सी० एस० बन जाऊँगा। मेरीन ड्राइव पर सैर को निकलूँगा तो लड़कियाँ एक-दूसरे को आँख के इशारे से बतायेंगी कि इसी का नाम केशव है। यही इस साल आई० सी० एस० में सफल हुआ है। सभी कनखियों से मेरी ओर देखेंगी। किस लड़की को आई० सी० एस० की पत्नी बनने का शौक नहीं है। मैं सब कुछ समझूँगा, मगर उनके प्रेम का प्रतिदान नहीं दूँगा। कितना मज़ा है लड़कियों की मुहब्बत को इस तरह उकसाने में और अपने को उनसे दूर रखने में—चाँद की तरह दूर। कितनी शक्ति है इस दूरी में !

कुछ देर तक केशवराव आपटे आँखें बन्द किये कल्पना के इस प्रेम का आनन्द लूटता रहा। फिर उसने आँखें खोलीं, चादर को सिर से हटाया और छत की ओर देखने लगा। पाँच-सात मिनटों तक योंही तकता रहा। छत पर नवयुवती लड़कियों की कतार-की-कतार उसकी ओर ससृष्टि-नेत्रों से देखती गुज़रती जा रही थी। फिर वह उठकर चारपाई पर बैठ गया और ठोड़ी को घुटनों पर रखकर, टाँगों को बाहों में जकड़े सोचने लगा। आज घर, पहले की अपेक्षा कुछ अधिक सूना लगता है। दो-चार दिन में ही यह सब वीरानी जाती रहेगी। घर पर बाजे बजेंगे, हवन होगा, बताशे बाँटे जायेंगे। नहीं, बताशे नहीं। बी० ए० के बाद भी बताशे बाँटे थे। बताशे बड़ी अर्थहीन-सी वस्तु है। खैर हलवाई तो घर पर बैठाना ही पड़ेगा। देख लेंगे, क्या बाँटना

यह भी....वह भी

उचित होगा। नतीजा एक-दो दिन में निकल आयेगा। आई० सी० एस० में पास होकर इस सफलता की खुशी में कोई अच्छी चीज़ ही वाँटनी पड़ेगी। मैं इन टुकसलों को न भी मानूँ, पर माता जी कब टलने वाली हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि वे उस पीर की कब्र पर भी, जो मड़क के उस तरफ़ है, एक-आध रुपया चढ़ा ही आयेंगी। इन औरतों की बुद्धि पर भी क्या पत्थर पड़े हाँते हैं। लेकिन हम मर्दों की अकल भी कहाँ ठिकाने हाँती है? नहीं तो सुशीला की कभी की शादी न हो गयी होती। अच्छा भली है। इस साल बी० ए० भी पास कर लिया है। परन्तु लड़के भागते हैं। उन्हें कोई बड़ा ससुर चाहिए। कोई मिनिस्टर हो। कोई कमिश्नर हो। आज-कल की शराफ़त तो पैसे में है। शायद हमेशा से पैसों में रही है। खैर, अब मेरे आई० सी० एस० में आ जाने के कारण सुशीला के विवाह में आसानी हो जायगी। अब तो हम भारी दहेज़ का लालच भी दे सकते हैं। एक मॉटर भी दे देंगे। 'शैवरलेट' तो महँगी होगी। शायद 'मौरिस एट' ही से काम बन जाय। रामस्वरूप के विवाह में भी वही मिली है। चेतन की सहायता में खरीदेंगे। वह सब मॉटर बेचने वालों को जानता है। अब हम कम-से-कम दस हजार तो उसकी शादी पर लगा ही सकते हैं। पर एक बात है। पिता जी के सिंग पर कर्ज़ा पहले ही डेढ़ हजार हाँ चला है। उस पर दस हजार का यह बोझ और पड़ जायगा। मगर ऐसा किये वग़ैर गुज़ारा भी कैसे चल सकता है। सुशीला का उमर भर घर में कुँवारी थोड़े ही बिठा रग्येंगे। यह भी औरों की तरह जवान लड़की है। इसे भी तो युवकों के साथ बातचीत करने की इच्छा होती ही होगी। इसे भी बन-सँवरकर उनके साथ घूमने-फिरने का शौक हाँता ही होगा। इसे....नहीं, नहीं....और केशव एकदम हड़बड़ा-सा उठा। चारपाई से

नीचे पाँव लटकाकर जूता टटोलने लगा। आज घर में अजीब खामोशी-सा फैली हुई है। क्या सभी पूजा करने गये हैं। आज कौन-सा त्योहार आ गया? इन सब को हमेशा अपने धर्म-कर्म ही की पड़ी रहती है। ऐसे ईश्वर का नाम जपने भर से तो जवान लड़कियों का विवाह हो चुका। लड़की के लिए हिन्दू-घर में पैदा होना ही परेशानी का कारण है। पर मुसलमानों की हालत भी कहाँ बेहतर होती है? वहाँ भी अच्छे लड़के कहाँ मिलते हैं? हिन्दुस्तानी होना ही पाप है। अंग्रेजों को देखो, मजे में हैं। लड़के-लड़कियाँ स्वयं ही अपने जीवन का साथी तलाश कर लेते हैं।

(६१)

केशव ने इधर-उधर नज़र दौड़ायी। यह कमरा कोई बहुत बड़ा नहीं है। लेकिन इसमें चार व्यक्ति सोते हैं। केशव, उसका बाप और दो भाई। उसका पिता एक बीमा कम्पनी में नौकर है और एक सौ-पाँच रुपये वेतन पाता है। इनमें से पैंतीस तो करायें में ही निकल जाते हैं। एक भाई की आयु नौ साल की है, दूसरे की पाँच साल। दोनों एक ही बिस्तर में फ़र्श पर सोते हैं। चारपाई के लिए पैसे नहीं हैं। पैसे हाँते भी तो चारपाई रखने के लिए स्थान कहाँ है? साथ का कमरा भी भरा पड़ा है। वही रसोई का काम देता है और वही औरतो का शयनगृह भी है। केशव की माँ और तीनों बहनें वहीं सोती हैं। सभी फ़र्श पर। यह ठीक है कि उन्हें रात को चूहे बहुत तंग करते हैं, न्यटमल रक्त चूस लेते हैं, मच्छर नींद नहीं आने देते। पर हाँ, उनको अमीरों की तरह अनिद्रा की शिकायत नहीं रहती। दिन-भर चारों मित्रियाँ मानो कोल्हू में जुती रहती हैं। रात को बोरी का टाट बिछाकर जब सब उस पर अपनी-अपनी मैली दुलाइयाँ बिछाती हैं तो उनकी आँखें नींद से बन्द हुई जाती हैं। पड़ते ही फ़ौरन उन्हें नींद आ जाती

*** यह भी....वह भी

है। वे सो जाती हैं। ऐसे ही एक-दो घंटे गुज़र जाते हैं। तब तक उनकी दिन-भर की थकान थोड़ी-थोड़ी उतरने लगती है। उस बेहोशी का, जो सारा दिन काम करने के कारण उन पर छा गयी थी, खुमार कुछ-कुछ कम होने लगता है। उन्हें मालूम होने लगता है कि उनकी फटी चादरों पर चूहे दौड़ रहे हैं। मच्छरों की भिनभिनाहट से बचने के लिए वे बार-बार अपने शरीर और सिर को चादर में छिपा लेती हैं। खटमलों के काटने से उनका सारा शरीर लाल हो जाता है। उसी नीम-बेहोशी की अवस्था में वे अपने जिस्मों को निरन्तर खुजाता रहती हैं। बम्बई में नीचे के मध्य-वर्ग के लोग ऐसी हालत को ही 'गूढ़-निद्रा' कहा करते हैं। चारों-की-चारा मंढकों की तरह सिमटकर पड़ी रहती है। इस तरह थोड़े स्थान में गुज़ारा हो जाता है और रसोई-घर के गीला होने से जो गठिया का डर रहता है, उसकी सम्भावना भी कम हो जाती है।

केशव आपटे यह सब कुछ जानता है। और उसके पिता से भी यह छिपा नहीं है। लेकिन चारा ही क्या है। केशव चारपाई पर सोता है। उसे मच्छरदानी भी मिली है। उसी के भविष्य पर तो सारे परिवार का भविष्य निर्भर है। बाप ने फ़ाके करके, ग्वाली समय में काम करके, माँ ने औरों के कपड़े सी-मिलाकर, बड़ी वहन मुशीला ने लोगों के बच्चों को पढ़ाकर, केशव के कम्पीटीशनों की तीन साल तक बड़ी-बड़ी फ़ीमें दी हैं। इसी बीच में केशव के बाप पर डेढ़ हज़ार का कर्ज़ भी चढ़ गया है। जब कभी उसके बाप को इस डेढ़ हज़ार का विचार आता है, तो उसकी आँखों के आगे अंधेरा छा जाता है। यदि वह ग्वड़ा हां तो गिरते-गिरते बचता है। बैठा हां तो उसका सिर उसकी छाती पर झुक जाता है और चुपचाप वह कितनी देर तक इसी तरह बैठा

रहता है। उन सब की आशाएँ आँखें उठाये केशव की ओर देख रही हैं। उसके आराम के लिए उसे मच्छरदानी भी मिली है। घर में यह किसी और के हिस्से में नहीं आयी। केशव की पढ़ाई में किसी तरह का विघ्न न हो, उसे मच्छर न सतायें ! उन सब को केशव की विद्वत्ता पर पूरा भरोसा है। उन सबको उसका भविष्य उज्ज्वल दिखायी देता है। उसे मच्छरदानी मिलने के कारण इस कमरे के बाकी सोने वालों को बहुत तकलीफ़ होती है। मच्छर मच्छरदानी से टकराकर लौटते हैं और उनसे बदला लेते हैं। लेकिन वे सब कभी इसकी शिकायत नहीं करते।

बाप की चारपाई खाली पड़ी थी। शायद वह भी पूजा के लिए गया हो। मगर दोनों भाई अभी पड़े फ़र्श पर सो रहे थे। कुछ देर तक केशव उन्हें ग़ौर से देखता रहा, बड़ी वात्सल्य-भरी नज़रों से। फिर वह मुस्कराने लगा। चन्द दिनों में उनका भविष्य भी शानदार हो जायगा। तब वे म्यूनिसिपैलिटी के स्कूल में नहीं जायेंगे। आज-कल बड़े भाई को साप्ताहिक जेब-खर्च एक आना मिलता है और छोटे भाई को दो पैसे। छोटा तो अपना हिस्सा कभी-कभी खर्च कर लिया करता है, परन्तु बड़ा हमेशा सप्ताह के अन्त पर अपना हिस्सा वापस लाकर माँ को दे दिया करता है और कहता है—“माँ, मुझे इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ी।” दूसरे लड़के जब खोचे वाले के चारों तरफ़ घेरा डाल देते हैं तो यह नौ साल का बालक पुस्तक लेकर दूर एक वृक्ष के नीचे जा बैठता है। वहाँ उसे खोचे वाले की प्रलोभनमय वस्तुएँ दिखायी नहीं देतीं। उसकी ललचा देने वाली पुकार ‘चटपटा चना, एक पैसे में पुड़िया,’ भी सुनायी नहीं देती। बाकी बच्चे अपनी-अपनी जेब से पैसे निकालते भी दिखायी नहीं देते। अनुभवी बालक है। घर की बातों में ही उसे

यह भी....वह भी

पता चल गया है कि सुशीला का विवाह इसलिए रुका हुआ है कि हमारे पास दहेज़ के लिए पैसे नहीं हैं। सुशीला से उसको बहुत प्यार है। वह हर सप्ताह अपने हिस्से का आना बचाकर, सुशीला के दहेज़ के लिए रुपया इकट्ठा कर रहा है। केशव प्रेम और वात्सल्य से अभिभूत हो आया। उसकी आँखों में अनायास आँसू आ गये। वह उठा, आहिस्ता से उनके पास गया, झुका और उसने हौले से दोनों बच्चों के माथों को चूम लिया।

केशव नहा-धोकर तैयार हुआ। उस वक्त तक घर के बाकी लोग भी पूजा से वापस आ गये थे। रोज़ की तरह उसने चाय पीना शुरू किया और साथ-ही-साथ उस दिन का अखबार भी देखने लगा।

उस दिन अखबार में आई० सी० एम० का नतीजा भी निकला था।

केशव की नज़र नतीजे पर पड़ी। उसका दिल धड़कने लगा। पाँच नाम थे। कालेलकर का नाम भी था। पर उसे अपना नाम कहीं न मिला। काँपते हुए हाथों से उसने चाय का प्याला फ़र्श पर रख दिया। फिर से नतीजे को पढ़ा। शायद उसने पढ़ने में ग़लती की हो। नहीं, उसका नाम नहीं था। यमई प्रान्त से केवल उसका मित्र कालेलकर ही पास हुआ था। साधारण विद्यार्थी था। शेष दो मद्रास के थे। एक बंगाल का और एक पंजाब का। उसका दिल बैठने लगा। उसको अपने गले में कोई चीज़ अटकती-सी महसूस हुई। उसके चेहरे की कान्ति तो पहले ही कम्पीटीशनों के अर्पण हो चुकी थी। अब उसका चेहरा और भी पीला पड़ गया। माँ और वहनें उस पर आशा लगाये बैठी थीं। वह उनकी दूरी हुई महत्वाकांक्षाओं का सहारा था। माँ ने केशव को चाय का प्याला बिना पिये ही फ़र्श पर रखते देखा। उसने केशव के चेहरे का रंग भी बदलते हुए देखा। उसने हौले से पूछा—

“केशव क्या बात है ?” लेकिन अब तक केशव सम्हल चुका था—“कुल नहीं,” उसने कहा, “यह देखो आई० सी० एस० का नतीजा निकल आया है। मैंने कहा न था, कालेलकर पास हो जायगा। उसके सफल होने की आशा भी थी।” केशव ने एक गवांखला-मा कड़कड़ा लगाया, जिससे उसकी माँ और वहनों का कलेजा धक्-धक् करने लगा। केशव कहता गया, “जो पढ़ेंगे, वही पास होंगे। मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मेरे पास होने की कोई उम्मीद नहीं है। जो काम करेगा वही सफल होगा। ठीक हाँ तो है.....”

केशव ने फिर एक जोर का ठहाका लगाया और कालेलकर को बधाई देने के लिए घर से चल पड़ा।

*

कालेलकर के नाम शाम ही को दिल्ली से तार पहुँच गया था कि तुम पास हो गये हो। कल तक समाचार-पत्रों में नतीजा निकल जायगा। सब को भालूम हो जायगा कि शाहूनाथ कालेलकर अब विद्यार्थी नहीं रहा। बम्बई से दिल्ली और दिल्ली से बम्बई भटकने वाला नवयुवक नहीं रहा। अब वह हिन्दुस्तान की सब से अच्छी सर्विस में है, जहाँ ऐश्वर्य होगा, अधिकार होगा, आतंक होगा। लेकिन यह सब बातें तो धीरे-धीरे होती रहेंगी। पहला काम तो यह है कि मुझे नाच सीखना होगा। यह अत्यावश्यक है। अभी न सीखा तो योंही बहुत-सा कीमती समय नष्ट हो जायगा। और मैंने सुना है कि क्लबों में सप्ताह में दो-चार बार तो नाच ज़रूर होता है। क्या वहाँ बूढ़ों की तरह कुर्सी पर बैठकर उन सब को चुपचाप देखा करूँगा? और अब तो विलायत का चक्कर भी लग जायगा। पहले ही इन अँग्रेजों के दिल में हमारे लिए कोई इज़्ज़त

यह भी....वह भी

नहीं है। और हो भी कैसे सकती है ? हम उनसे मिलते-जुलते ही कब हैं। दूर से ही उन्हें देखकर उनके बारे में अपनी राय कायम कर लेते हैं। इनको हमने कितना बदचलन समझ रखा है। जब शाम को उनकी औरतें सायकाल की पोशाक पहनकर निकलती हैं, जिनसे उनके शरीर का आधे से ज्यादा हिस्सा नंगा रहता है तो हम सोचते हैं कि ऐसे कपड़े पहनकर भी कभी किसी का चाल-चलन ठीक रह सकता है ! मानो लोगों का चाल-चलन उनके कपड़ों में ही छिपा बैठा है। जब अंग्रेज़-स्त्रियाँ और पुरुष इकट्ठे बैठकर शराब पीते हैं तो हम सोचते हैं कि क्या उनके मनोभावों में विकार उत्पन्न न होता होगा ? यह सब हमारी अनभिज्ञता का मुफल है। खूब ! हमारे भी उनके बारे में कितने उल्टे-सीधे विचार हैं। मुझे तो अब पक्का विश्वास होने लगा है कि हम अभी तक भूल ही में रहे हैं। उनके देश में तो रिवाज ही ऐसा है। विलायत में इतनी सदी पड़ती है कि शराब तो पीनी ही पड़ती होगी। थोड़ी-बहुत पी भी ली तो उससे कौन-सी बुराई आ जायगी। लन्दन की सदी में केवल दूध पीने से थोड़े ही काम चलेगा। दो ही बातें हैं, या तो लन्दन जाकर भी लिहाफ़ ओढ़कर अपने कमरे में पड़ रहूँ, न किसी से बात करूँ, न किसी से मिलूँ। तब न तो ब्राण्डी की आवश्यकता महसूस होगी न सिगरेट की। लेकिन सरकार हमें इसलिए तो विलायत भेजती नहीं कि हम वहाँ जाकर भी कुएँ के मेढक ही बने रहें। वहाँ तो नाचना भी पड़ेगा, पीनी भी पड़ेगी। सरकार की मंशा तो यह होती है कि हम अंग्रेज़ों से मिल-जुलकर अच्छी सोसाइटी में उठना-बैठना सीख जायँ। जब मुझसे कोई मित्र आकर कहेगा—‘चलो आज नाच का निमन्त्रण है’—तो क्या मैं उससे कहूँगा—‘मुझे नाच नहीं आता।’ यह कहते हुए शर्म से मर न जाऊँगा। आई० सी० एस० और अंग्रेज़ी

नाच की कला से अनभिज्ञ ! मुझे जानवरों पर तो शासन करना नहीं, अँग्रेजों की सोसाइटी में उठना-बैठना है । किसी दूसरे की पत्नी को, किसी नवयुवती को, अपनी बाहों में थामकर नाच-घर में नाचने से तो मुझमें कोई बुराई आ नहीं जायगी और न ही उनके मनोभावों में कोई दोष । यह सब तो हिन्दुस्तानी गँवारों की बातें हैं । ज़रा-ज़रा-सी बात पर हमारा धर्म बिगड़ता है । ज़रा-ज़रा-सी बात पर हमारी पशु-वृत्ति भड़कती है । हम भी अच्छे आदमी हैं । हम सब को तो दूर जंगल में ले जाकर गुफाओं में बन्द कर देना चाहिए । वहाँ हम न किसी से मिलें न जुलें । आँखें बन्द किये ईश्वर का नाम जपते रहे । हमारे देश में भी तो पुरातन समय में नाच-गाना विद्या का एक आवश्यक अंग समझा जाता

था इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है । सारे शरीर में एक नयी रफ़ूति की लहर दौड़ने लगती है । ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिए कि भारत-वासियों की रुचि पुनः नृत्य-कला की ओर आकृष्ट होने लगी है । बीस वर्ष पहले उदयशंकर, मेनका और साधना बोस की हँसी उड़ायी जाती थी । आज उन्हीं की प्रतिष्ठा होती है । वास्तव में नाच व्यायाम का एक सहज-सुलभ ढंग है । थोड़ा-सा मन बहलाव हो जाता है, समय भी कट जाता है और शारीरिक कसरत भी हो जाती है । मैंने अभी तक यह कला नहीं सीखी तो कोई हर्ज नहीं । बम्बई तो नाच सिखाने वाले स्कूलों से भरा पड़ा है । रीगल है । एक्सेलसियर है । हेडन इन्स्टिट्यूट है । किसी में सीख आऊँगा । किसी को बताने की आवश्यकता भी न होगी । अँग्रेजों के साथ क्लब में बैठकर शराब पीने से कैसे इन्कार करूँगा । पेश की हुई सिगरेट को कैसे न लूँगा । सारी पार्टी की चहल-पहल में बाधा डालूँगा ? सभी आँखें उठा-उठाकर देखेंगे । अपने लए न सही, सोसाइटी के लिए तो मुझे इन बातों में भाग लेना

ही पड़ेगा ।

कालेलकर को उस रात भला नींद कहाँ? उसने करवट बदलते हुए सोचा, अब मुझे लोगों के बीच अपनी बोल-चाल और उठने-बैठने के ढंग में बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ेगा । सभी एक जैसे हैं, सभी में हिल-मिलकर बैठना चाहिए, बड़ी नौकरा ने तो कोई बड़ा नहीं बन जाता—ये सब बातें अब पुरानी हो गयीं । सब लोगों में तुल-मिल गया तो अफसरी कहाँ रही ? दुभाग्य से मुझे सब से हँसकर बोलने का आदत है । इस तुरी आदत को छुड़ाना पड़ेगा । दो-तीन बार मुझे क्लब जाने का अवसर मिला है । क्लब में पाँच-सात आई० सी० एस० हैं । कभी मैंने वहाँ न उनमें से किसी का हँसते देखा है, न कभी उन्हें ठहाके लगाते सुना है और न कभी एक-दूसरे से हास-परिहास करते पाया है । इन सब बातों से मनुष्य के बड़प्पन में धक्का लगता है । कैसे चुपचाप अपने सामने शराब का गिलास रख बैठे रहते हैं । आई० सी० एस० वाले क्लब में भी आई० सी० एस० हैं । क्लब में भी उनका अपना ही ग्रुप है । उनकी सम्यता, उनका सांच-विचार का तरीका, उनका बोल-चाल का ढंग—सब दूसरों से भिन्न हैं । वे आपस में भी अधिक बात-चीत नहीं करते । कभी-कभी बिना किसी को मुखातिव किये उनमें से एक कह उठता है—‘असलम का तबादला नासिक हो गया है । उसके स्थान पर रावर्ट्स आ रहा है ।’ कोई उत्तर नहीं देता । सभी चुप रहते हैं । शराब पीते रहते हैं । सिगरेट के कश लगाते रहते हैं । एक दूसरे की तरफ देखते रहते हैं । थोड़ी देर बाद फिर कोई कह उठता है ‘मैं बीस तारीख को दौरे पर जा रहा हूँ । बड़ी गन्दी सड़कें हैं ।’ अपने पर कितना संयम है ! उनकी हर बात में कितना आतंक है ! मुझे तो सबसे उछल-उछलकर बातें करने को

आदत है। कितना गँवार लगूँगा। मुझे अपनी आदतें सुधारनी पड़ेंगी।

यह जो दो साल हुए मेरी मँगनी हो गयी थी, इसका भी अब तोड़ना ही पड़ेगा। एक तो वह लड़की कुछ अधिक पढ़ी-लिखी नहीं और दूसरे वह एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार की है। उससे शादी करके तो अखबार में फ़ोटो देते भी शर्म आयेगी। अब तो कोई 'संसाइटी वेडिंग' करनी पड़ेगी। खैर, इसके लिए मुझे जल्दी करने की आवश्यकता नहीं है। अभी तो मेरा नाम भी कुछ मित्रों को छोड़ किसी और को मालूम नहीं। विलायत से हो आऊँ। तब तक अमीर नवयुवतियों के माँ-बाप को भी मेरी बात कुछ ज्ञात हो जायगा। आश्चर्य की बात है कि कैसे और कितनी जल्दी कुँवारी लड़कियों के माता-पिता को अच्छे विवाह-योग्य लड़कों के बारे में पता चल जाता है। शायद वे हर वर्ष कम्पीटीशनों के नतीजों की फ़ेहरिस्तें बड़े ध्यान से देखते हैं।.....

लेकिन यह तो दूर की बातें हैं, कालेलकर ने ज़म्माई लेते हुए सोचा। पहले तो मुझे कल का प्रबन्ध करना चाहिए। कल सुबह सब को समाचार-पत्रों द्वारा पता लग जायगा कि मैं आई० सी० एस० हो गया हूँ। रिश्तेदारों की तो कोई बात नहीं है। उनसे मैं निबट लूँगा। वे बधाई देंगे, मैं चुपचाप ज़रा-सा मुस्करा दूँगा। वे कहेंगे “शाहू परिवार का नाम रौशन कर दिया!” मैं सिर नीचा करके कहूँगा, “आप ही का आशीर्वाद है।” पिता जी आज रात को ही घर-घर जाकर लोगों को मेरी सफलता के बारे में बताते फिर रहे हैं। बहनें खुशी के मारे फूली नहीं समातीं। छोटी बहन तो खुशी से इतनी देर तक रोती रही कि मैं भी घबरा गया।

यह भी....वह भी

परन्तु कठिनाई तो मित्रों से पीछा छुड़ाने में होगी। मुझे हर बात सोच-समझकर नपी-तुला कहनी पड़ेगी। जिससे मेरा गँवारपन न जाहिर हो। मैं अपनी सफलता पर इतनी प्रसन्नता का प्रदर्शन भी न करूँ कि उनका दिल दुखे। बेचारों के पास अब रह ही क्या गया है। अभी केशव आपटे का पता नहीं चला कि वह पास है कि नहीं। उसने बहुत परिश्रम किया था। काबिल भी बहुत है। ईश्वर करे सफल हो जाय। यह उसका अन्तिम अवसर था। कहीं बेचारे का सारा जीवन ही बर्बाद न हो जाय। और गोखले ! खैर, यदि गोखले पास न भी हो सका तो वह इस चोट को सह लेगा। काफ़ी अमीर का लड़का है।

शाहूनाथ कालेलकर बहुत सवेरे उठा। सात बजते-बजते नहा-धो बैठा। अब दसवीं बार वह अखबार में अपने नाम को देख रहा था। सारे बम्बई सूबे में से केवल वही इस वर्ष सफल हुआ। उसके सभी मित्र रह गये थे। केशव आपटे का नाम नहीं था। नरसिंह ताम्बे का भी नहीं। उसकी छाती अभिमान से फूलने लगी। प्रान्त भर में केवल एक विद्यार्थी सफल, और वह शाहूनाथ कालेलकर !

वह सोचने लगा मुझे लोगों से बधाई कैसे लेनी चाहिए। वह और उसके माँ-बाप ऊपर की मंज़िल में रहते हैं, परन्तु उनका ड्राइंग-रूम नीचे है। शाहू नीचे ड्राइंग-रूम में आ बैठा। कौन बार-बार उठकर ऊपर से नीचे आयेगा। कुछ देर तक बैठा रहा। उसे अपना वहाँ बैठना बड़ा अजीब-सा लगने लगा। जो आयेगा, सोचेगा कि बधाई देने के लिए ही बैठक में आ बैठा है। वह ड्राइंग-रूम को खुला छोड़, फिर ऊपर चला गया। थोड़ी देर समाचार-पत्र के पन्ने उलटता रहा। उसे ऊपर बैठे रहना भी उचित न लगा। लोग यह न समझ

लें कि अभिमानी हो गया है। आवाजें दे-देकर ऊपर से बुलाना पड़ता है। वह फिर नीचे आ गया। वह सूट-बूट पहने था। कुछ देर सोचने के बाद उसने ऊपर जाकर वे कपड़े उतार दिये। नेकटई लगी रहने दी। पाजामा और चप्पल पहनकर नीचे आ बैठा। रात ही को बैठक की सफाई कर दी गयी थी और किताबें क़रीने से चुन दी गयी थीं। उसने दो-तीन किताबें मेज़ पर इधर-उधर बिखेरकर रख दीं। एक को खोलकर रख दिया और आप आराम कुर्सी पर बैठ, टाँगें सामने मेज़ पर जमाकर अखबार पढ़ने का प्रयत्न करने लगा।

*

सेठना सीधा ड्राइंग-रूम में चला आया। उसने भी इस बार परीक्षा दी थी, पर पास न हो सका था। अभी आयु में छोटा है। वह परीक्षा में दो बार और बैठ सकता है। इसलिए अभी उसका उत्साह वैसा ही बना हुआ है। उसकी आवाज़ में अभी असफलता की शिथिलता नहीं आयी। वह आते ही शाहूनाथ की पीठ पर थपकी देकर बोला—“मान गये भई, हम तुम्हें। नहीं तो कहाँ तुम और कहाँ आई० सी० एस० ! भाग्य के धनी हो। पाँसा सीधा पड़ गया।”

शाहू को सेठना की बात की सचाई से तो इन्कार न था, पर उसको अपने मित्र के भद्देपन पर क्रोध आ गया। अपने को समझता क्या है ! ईश्वर ने खोपड़ी में दिमाग़ दिया है, भूसा नहीं। प्रकट बोला—“हाँ भई, किस्मत लड़ गयी, नहीं तो हम-जैसों का इस मैदान में क्या काम। कुछ पात्रांगे!” सेठना बोला—“आज तुम्हारे सिर से न पीयेंगे तो कब पीयेंगे। पर पार्टी कब दे रहे हो ?”—“जब चाहो”—

●● यह भी....वह भी

शाहू ने कहा—“पर देखो”—सेठना कुछ व्यंग्य और कुछ संजीदगी से कहने लगा—“अब यह पाजामा आदि पहनना छोड़ दो। हमेशा घर पर भी पतलून पहनकर बैठा करो। मैं एक बात सोच रहा हूँ। अब तक तो तुम थर्ड-क्लास में यात्रा करने के पक्षपाती रहे हो, क्योंकि भारतवर्ष का यथार्थरूप तुम्हें वहीं देखने को मिलता था। पर अब अपने इस शगल को कैसे जारी रख सकोगे।”

कालेलकर ने सोचते हुए उत्तर दिया—“बात तो ठीक है, पर क्या मुझे अब भी उसी क्लास में सफ़र करना चाहिए? मैं भूटे बड़प्पन में विश्वास नहीं रखता तो भी.....”

“मैं भी तो यही कहता हूँ”—सेठना ने व्यंग्य से बात काटते हुए कहा—“तुम गाँवारों में मिलकर अपनी इज्जत गाँवा बैठोगे। तुम्हें अपनी पोजीशन, अपने सोशल दर्जे का ध्यान रखना है। कोई रेलवे स्टेशन पर ही मिल जाता है। किसी अंग्रेज़ या उसकी पत्नी ने तुम्हें आई० सी० एस० होते हुए भी थर्ड-क्लास में देख लिया तो अपने सब सुनहरी सपनों का अन्त समझो। उम्र भर असिस्टेंट कलेक्टर ही बने एड़ियाँ रगड़ते रहोगे।”

शाहूनाथ कालेलकर को भी इस बात की सचाई जँचने लगी। हल्की-सी सहमति-सूचना मुस्कान उसके ओठों पर फैल गयी।

सेठना कहता गया—“और फिर यदि उसी गाड़ी में तुम्हारे महकमे का कोई छोटा-मोटा आदमी भी बैठा हुआ मिल गया तो सारे महकमे में बदनाम हो जाओगे। क्लब में भी कोई न पूछेगा।”

शाहूनाथ उसी तरह मुस्कराता रहा।

सेठना ने कहा—“अब तो तुम्हें कुछ नृत्य आदि भी सीखना चाहिए।”

शाहूनाथ कालेलकर बोला—“मैं भी यही सोच रहा था। मेरा विचार रीगल इन्स्टिट्यूट से नाच के कुछ सबक लेने का है। तुम्हारी क्या राय है?”

सेठना ने सिर हिलाकर कहा—“नेकी और पूछ-पूछ।”

सेठना को गये बहुत देर नहीं हुई थी कि शाहू से कुछ नसीहत लेने गोपाल आ पहुँचा।

गोपाल ने इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा दी है। अपने जीवन के अगले तीन-चार साल वह कम्पोटीशनों में लगायेगा। चूँकि शाहूनाथ कालेलकर सफल हो गया है, उसकी राय का मूल्य एकदम बहुत बढ़ गया है। जो उसकी नसीहत पर अमल करेगा, ज़रूर कामयाब होगा। इसी को हम विद्वत्ता की प्रतिष्ठा कहते हैं। जो पास हो गया, वह विद्वान्। जो रह गया, वह खर-दिमाग। इसी बात ने, कि अब उसकी राय की भी कद्र होने लगी है, शाहूनाथ को एक और ही मनुष्य बना दिया है। उसका अपने पर भरोसा बढ़ गया है। वह गोपाल को नहीं जानता, पर इससे क्या अंतर पड़ता है। अपनी बातों के हमेशा सत्य होने की भावना में शाहू का विश्वास बढ़ता जाता है। यह आने वाली शक्ति की पहली निशानी है। यह अफसर-मिज़ाजी की पहली किस्त है।

“नहीं, बहुत अधिक पढ़ने से परीक्षा में सफलता नहीं मिलती”— वह गोपाल को बता रहा है—“मैंने स्वयं कभी दिन में छः घंटे से ज्यादा नहीं पढ़ा। परन्तु मेरे कई मित्र हैं। केशव आपटे है। चौबीस-चौबीस घंटे पढ़ता रहता है। विद्वान् भी ग़ज़ब का है। मगर बेचारा नहीं पास हुआ। बहुत पढ़ने से दिमाग मन्द हो जाता है। मेरी राय तो हमेशा से यही रही है कि जब पढ़ते-पढ़ते थक जाओ तो एकदम

●● यह भी....वह भी

पुस्तकों को छोड़ दो। बाहर घूमने चले जाओ। सिनेमा देखने चले जाओ। तुम शायद अभी किसी बड़ी परीक्षा में नहीं बैठे। तुम नहीं समझ सकते कि इस्तहान में एक तरोताज़ा दिमाग़ कितनी अमूल्य वस्तु है। हाँ, नियमानुसार कार्य करो। कभी शक्ति से अधिक काम करने का यत्न न करना। मुझे डर है कि बेचारा केशव इसी भूल के कारण रगड़ में आ गया। मैं उन विद्यार्थियों में से नहीं हूँ जो चारपाई छोड़कर फ़र्श पर सोते हैं ताकि सुबह जल्दी उठ सकें, जो रात को तीन-तीन बार कौफ़ी पीते हैं कि नींद न आ जाय, जो बार-बार आँखों पर ठंडे पानी के छींटे मारते हैं ताकि जागते रहें।”

“मैं क्या बताऊँ कि अँग्रेज़ी में निबन्ध लिखने के लिए तुम्हें कौन-कौन-सी पुस्तकें पढ़नी चाहिएँ। अच्छा निबन्ध लिखना तो गूढ़ और विस्तृत ज्ञान से ही आता है। ख़ूब उपन्यास पढ़ो। हाँ, शैली के लिए गाल्ज़वर्दी पढ़ सकते हो। टामस हाडॉ भी अच्छा है। इन दोनों की लेखनी में जोर है, प्रभाव है। तुमने गाल्ज़वर्दी की कहानी ‘सेब का वृक्ष’ पढ़ी है? नहीं? बड़े आश्चर्य की बात है! कमाल की चीज़ है। मैं तो शैली के लिए सभी से इसी कहानी को पढ़ने के लिए कहता हूँ।”

“नहीं, ‘टाऊट’ के लिखे हुए इतिहास को पढ़ने से तो नम्बर आ चुके। हाँ, ‘मुक़र्जी’ का खुलासा अच्छा है। पर उसके साथ-साथ तुम्हें और भी अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़नी पड़ेंगी। ‘केम्ब्रिज हिस्ट्री’ में जो ‘वाल पोल की विदेश-पालिसी’ पर अध्याय है, वह अच्छा लिखा हुआ है। ‘जी० एन० क्लार्क’ की ‘हिस्ट्री ऑफ़ दि लेट स्टूअर्ट्स’ भी तुम्हें पढ़नी पड़ेगी। ‘राबर्ट्स’ की ‘दि हैनोवेरियन्ज़’ खास अच्छी नहीं, पर बीच-बीच में से पढ़ जाओ। ‘ट्रैविलियन’ को अवश्य पढ़ना। उसका

लिखने का तरीका बड़ा रोचक है ।”

“इन्टरव्यू के लिए मैं अधिक क्या कह सकता हूँ । मगर घबराते की कोई आवश्यकता नहीं है । आखिर परीक्षक भी तो मनुष्य ही होते हैं । खूब डटकर और अपने पर भरोसा रखकर उत्तर दो । इसी से तुम्हारे व्यक्तित्व का उन पर प्रभाव पड़ेगा । हाँ देखो, उन्हें कभी धोखा देने का प्रयत्न न करना । बड़े हज़रत हांते हैं । भट ताड़ जाते हैं । यदि कोई बात न आती हो तो स्पष्ट कह दो कि नहीं आती । परीक्षकों को भी पता है कि प्रतियोगी कोई ‘इनसाइक्लोपीडिया’ नहीं होते ।”

गोपाल भी चला गया । कुछ समय ऐसे ही गुज़र गया ।

केशव दरवाज़े पर आकर रुक गया । शाहूनाथ दरवाज़े की ओर पीठ किये बैठा था । उसने केशव को आते नहीं देखा । केशव एक मिनट तक शाहू को खड़ा टकटकी लगाये देखता रहा । फिर जोर से हँसने का यत्न करते हुए कहने लगा ‘बधाई ! बधाई !’ और आगे बढ़कर शाहूनाथ की पीठ पर थपकी देने लगा । शाहू उठा । वह हँसा नहीं । केशव की थपकी ने उसके सारे शरीर में एक ठंडी सनसनी दौड़ा दी । इस थपकी में उसे एक जीवन की निराशा, एक जवानी की बुभुकी हुई आग मालूम हुई । उसने मुस्कराने का यत्न करते हुए कहा—“आओ, बैठो ।” और केशव का हाथ पकड़कर उसे सामने की कुर्सी पर बैठा दिया । अपनी कुर्सी की गद्दी भी उठाकर उसे पीछे रखने को दी ।

दोनों बिना कुछ कहे कितनी ही देर एक दूसरे की ओर देखते रहे । फिर आहिस्ता-आहिस्ता दोनों के मुख पर मुस्कराहट की हल्की-सी झलक दिखायी देने लगी । दोनों की मुस्कान में आकाश-पाताल का अंतर था । शाहू की मुस्कराहट विजय की मुस्कराहट थी । स्वयंमेव फूटी

यह भी....वह भी

पड़ती थी। केशव की मुस्कराहट और तरह की थी। नारी असफल होने पर रो दिया करती है। पुरुष ऐसी हालतों में मुस्कराया करता है। पर यह मुस्कान उन आँसुओं से कहीं अधिक आर्द्र, कहीं अधिक करुण होती है। यह मुस्कराहट पुरुष अपने रक्त को जलाकर पैदा करता है। इसमें जीवन की आकांक्षाओं की राग्व भरी होती है।

शाहू ने पहले बात आरम्भ की। “तुम्हारा नाम अखबार में न देग्वकर मैं तो दंग रह गया। किमी को सपने में भी खयाल आ सकता था कि तुम-जैसा काबिल भी रह जायगा !”

केशव ने कुछ नहीं कहा। बैठा शाहू की आंर देखता रहा।

“और मेरी ? मेरी किसे उम्मीद थी। पर सच जानो जब मैं परचे करके ही आया तभी से मुझे अपने सफल होने का पूरा विश्वास हो गया था। भई, सच बात तो यह है कि बहुत पढ़ने से अधिक लाभ नहीं होता। आगे पुस्तक रखे रहने से क्या लाभ, जब दिमाग इतना थक गया हो कि उसमें कोई बात ठहरे ही नहीं। तुम ही बताओ कि ज्यादा पढ़ने से तुम्हारा क्या बन गया। मुझे तुमसे हार्दिक सहानुभूति है। यह परीक्षक बिलकुल गंधे होते हैं। पढ़ाई की कद्र करना तो जानते ही नहीं। नहीं तो तुम्हारा नाम फ्रेहरिस्त में सब से ऊपर होता।”

“ऐसे ही होता है !”—केशवराव आपटे ने मुस्कराने का प्रयास करते हुए कहा।

“इन्टरव्यू में भी मैं बड़े आत्मविश्वास से गया था। मैंने कहा यदि नम्बर नहीं देते तो जहन्नुम में जायँ। तुम-जैसे अधिक पढ़ने वालों में एक बड़ा दोष होता है, तुम बहुत डर-डरकर बात करते हो। केशव क्षमा करना, पर देखो तुमने पढ़-पढ़कर अपना क्या हाल बना लिया है। कौन तुम्हारे व्यक्तित्व से प्रभावित होगा। खैर, मुझे पूरी आशा है

किं अगली बार तुम अवश्य सफल हो जाओगे। तुम्हारा अभी एक और अवसर शेष है न ?”

“और अवसर नहीं है ? आंफो ! तब तो बड़ी बुरी बात है। भविष्य बड़ा अनिश्चित है, खासकर हिन्दुओं के लिए। उनके पास अब कम्पीटीशनों के अतिरिक्त रखा ही क्या है। आ गये तो पाँच-सौ रुपया महीना से वेतन शुरू और शासन। न आये तो दर-दर भटककर चालीस रुपये की क्लर्की भी नहीं मिलती। यह हमारी शिक्षा-प्रणाली का दांप है। हमारे युवकों की आत्मा नियत समय से पहले ही मार दी जाती है। वे समय से पहले ही बूढ़े हो जाते हैं। पच्चीस वर्ष की आयु तक तो वे अँधेरे में भटकते फिरते हैं। दो-चार को तो रोशनी दिखायी दे जाती है। शेष पच्चीस साल की आयु तक पहुँचते-पहुँचते शारीरिक और मानसिक खरडहर बनकर रह जाते हैं, अपने से बेज़ार.....अब क्या करने का इरादा है ?”

“देखो। अभी तो कुछ नहीं साँचा”—केशव ने अपने दिल पर जोर देते हुए कहा।

“मैं भी ध्यान रखूँगा”—शाहूनाथ कालेलकर ने केशव की ओर महानुभूति भरी नज़र डालते हुए कहा—“शायद पिता जी के दफ़्तर में ही जगह खाली हो। पूछूँगा उनसे।”

“धन्यवाद !”—केशव ने किसी-न-किसी तरह उत्तर दिया।

केशवराव आपटे घर को वापस चला। उसके पाँव डगमगा नहीं रहे थे, वह अपने होश में था। बाहर से वह भी और हज़ारों लोगों की तरह था जो इधर-से-उधर अपने काम पर आ-जा रहे थे। हो सकता है कुछ थोड़ा बहुत अंतर भी हो, क्योंकि वह बार-बार अपने दाँतों को दृढ़ता से भींच रहा था, बार-बार मुट्टियों को बन्द कर रहा और खोल

०० यह भी....वह भी

रहा था, जैसे अपने अन्दर किसी चीज़ को दबाने का प्रयत्न कर रहा हो ! वह सीधा चला जा रहा था । दो-तीन बार सामने से आते हुए लोगों से उसकी टक्कर भी हुई, पर उसको यह बात मालूम न हुई और न उसने किसी से क्षमा माँगी ।

घर पहुँचकर वह अपने छुज्जे पर जा खड़ा हुआ और नीचे सड़क पर बहते हुए जन-समूह को देखने लगा ? ऐसे ही कुछ समय गुज़र गया । घर के सब लोग बाहर अपने काम पर गये हुए थे । परीक्षा के नतीजे का पता चल जाने के बाद वे केशव के पास रहकर उसका और दिल दुखाना नहीं चाहते थे । उनका विचार था कि थोड़ी देर रो-धोकर केशव अपने दिल का गुबार हल्का कर लेगा । माँ फिर पूजा करने चली गयी थी । शायद ईश्वर से इस सद्मे को सहने के लिए मामर्थ्य माँगने गयी हो ! एक बहन बाहर बच्चों को पढ़ाने गयी हुई थी, बाकी दोनों बाहर खेलने । दोनों भाई माँ के साथ मन्दिर में गये हुए थे । बाप आज रविवार को भी दफ़्तर में कागज़ों पर झुका बैठा था ।

केशवराव आपटे के हाथ में एक कागज़ का टुकड़ा था । अनजाने ही वह इस कागज़ के छोंटे-छोटे टुकड़े कर, उनकी गोलियाँ बना, नीचे फेंक रहा था ? नीचे शोर था— सब तरह का । सब किस्म के लोग थे—महाराष्ट्री, पंजाबी, गुजराती, बंगाली । मोटरें थीं, लारियाँ थीं, बसें थीं, ट्रामें थीं । हर चीज़ मानो बही जा रही थी । जीवन का संघर्ष था । ईश्वर की महिमा थी । और ऊपर छुज्जे पर खड़ा केशव कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों को अनजाने मसल-मसलकर नीचे फेंक रहा था ।

केशवराव आपटे सिर के बल नीचे पत्थर की पटरी पर आ गिरा । एकदम लोगों का जमघट उसके चारों ओर इकट्ठा हो गया । ऐम्बुलेन्स

के लिए टेलीफोन किया गया। नीचे की दुकान वाला जो केशव के घर वालों को थोड़ा-बहुत जानता था, उसकी माँ को मन्दिर से बुलाने दौड़ा। वहाँ पूजा हो रही थी। मन्दिर के घंटे, पूरे ज़ोर से बज रहे थे। और इधर लोग खड़े पूछ रहे थे—क्यों गिरा ? कैसे गिरा ? सिर में चक्कर आ गया था ? किसी लड़की से मुहब्बत थी ? आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया था ? सच बात किसी को मालूम नहीं। उस समय भी मालूम नहीं थी, अब भी नहीं। इस कहानी के लेखक को भी नहीं।



रामी

कल इसी रास्ते से वे रामा की अर्थी लिये श्मशान-भूमि की ओर गये थे। गाँव के बहुत-से लोग साथ थे। रामी की माँ थोड़ा-सा रोयी भी थी।

अच्छा हुआ, जो उसने थोड़ा-सा रो लिया। रामी के जीते-जी तो उसे कभी रोने की इच्छा नहीं हुई थी। इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। रामी जन्म से ही पंगु थी न !

रामी मरने से पहले बीमार नहीं हुई। शायद ईश्वर उसे उतना देय न समझता हो। वह बीमार पड़ जाती तो घर वालों के पास अवहेलना और तिरस्कार के सिवा और कोई इलाज न होता। पानी तक को तरस जाती। पंगुओं को भी बीमार होने का कोई अधिकार है ?

वह चक्की पीस रही थी जब उसके प्राण छूट गये। शायद वह मरना चाहती थी। शायद उसका दिल कमजोर था। आश्चर्य तो यह है कि पंगुओं के भी दिल होता है। जब कभी रामी के दिल के बारे में

बात चलती तो उसके घर वाले हँस दिया करते। उस दिन रोज़ की तरह जब उसकी माँ सोने से पहले थोड़े-से और गेहूँ लेकर कोठरी में आयी कि मुबह होते-होते रामी सब पीस डाले तो उसने रामी को चक्की पर झुकी हुई पाया। वह मर चुकी थी।

रामी की माँ को दुःख हुआ कि गेहूँ बिना पीसे ही रह गये हैं। अब चक्की को भी गंगाजल से धोना पड़ेगा। तब विचार आया कि रामी तो मेरी अपनी बेटा है। उसको आश्चर्य हुआ कि उसे आज तक यह खयाल पहले क्यों नहीं आया। उसने धीरे से रामी का सिर उठाकर उसे भूमि पर लिटा दिया और उसकी आँखें, जो कुछ-कुछ खुली थीं, बन्द कर दीं। फिर वहीं बैठकर थोड़ा-सा रो ली और उठकर बाहर खबर देने चली गयी कि रामी मर गयी है।

अभी मरने से कुछ ही दिन पहले रामी ने अपनी माँ से फिर वही पूछा था, जो वह पहले भी कई बार पूछ चुकी थी—“दिल्ली कैसी है? माँ, रेलगाड़ी कैसे चलती है?”

माँ ने कुछ कठोर बातें कहकर दुत्कार दिया था कि तुझ पंगु को इन बातों से क्या? तब रामी ने यही प्रश्न अपनी बहन नन्ही और भाई मुन्ने के सामने दोहराया था। वे हँस पड़े और बोले—“तू जब घर से बाहर हिल तक नहीं सकती तो यह जानकर क्या करेगी?”

बच्चे तब खेलने में लग गये। वे शायद रुक जाते, यदि वे देख लेते कि रामी के गालों पर दो नन्हें-से आँसू टुलक आये हैं, जिन्हें उसने अपने दुपट्टे से पोंछ लिया है।

मालूम होता है, रामी का हृदय भी और बच्चों के हृदय की तरह ही था। तभी तो उसे देहली और रेलगाड़ी देखने का इतना शौक था। उनका गाँव स्टेशन से एक मील की दूरी पर था तो भी कई बार

गाड़ी की सीटी की आवाज़ रामी के कानों तक पहुँच जाती थी। रामी के लिए इस आवाज़ में वह मिठास भरी थी, जो साधारण लोगों की समझ से परे है। यह उसकी समस्त उठती हुई उमंगों का स्वरूप थी। वह घंटों मूक बैठी इस आवाज़ की प्रतीक्षा करती। सीटी की आवाज़ सुनते ही रामी अपना हृदय मसोसकर रह जाती। उसके भीतर एक अद्भुत सनसनी पैदा हो जाती। उसका मन अनायास ही हिलोरें लेने लगता और उसके सारे सुख-स्वप्न एक इसी अनुभूति में केन्द्रित हो जाते कि देखूँ यह सीटी देने वाली वस्तु है क्या! देहली का विचार रामी को इतना न सताता। शायद इसलिए कि वह गाड़ी की आवाज़ तो रोज़ सुनती थी, पर उसकी माँ, बहन और भाई देहली वर्ष में केवल एक बार ही जाते। यदि वह थोड़ा-सा भी चल सकती तो उन्हें स्टेशन तक तो ज़रूर पहुँचाने जाती, पर चलना दूर रहा, वह खड़ी भी न हो सकती थी! हाँ, रेंगकर कुछ दूर तक चली जाती, पर इतना भर देहली देखने की प्यास को बुझाने के लिए तो पर्याप्त न था।

प्यास पानी देखने से और तेज़ हो जाती है। देहली से लौटकर नन्हीं और मुन्ना एक सप्ताह भर तो 'दिल्ली वाले चचा' का गुण-गान करते। रामी मूक बैठी सुनती। कभी आँखों-आँखों से ही कोई प्रश्न पूछ लेती। मुन्ना अपनी शान जमाता—“चचा की कोठी बड़ी है, बड़ी भारी। फ़र्श पर संगमरमर है। वहाँ गोबर से लेप नहीं होता और दीवारों पर हरे रंग की पालिश है। हाँ, हाँ, बड़ी सुन्दर लगती है, ठीक हमारे खेतों की हरियाली की तरह। और वहाँ बिजली है। तू तो पंगु है, तुझे बिजली के गुण क्या मालूम! एक बटन-सा होता है, दबाया और रोशनी-ही-रोशनी हो गयी। और दिल्ली में गर्मी भी नहीं लगती, उसके लिए भी बटन दबाओ तो एक पंखा फ़र्र से घूमने लगता है। और

यहाँ मोटरें हैं और कनाट प्लेस बड़ा बाज़ार, जहाँ शीशों वाली बड़ी दुकानें हैं। मैं और नहीं वहाँ 'मेमें' देखने जाया करते थे। वे वहाँ चीज़ें खरीदने आती हैं। कैसी हांती हैं ? तू तो काली-कलूटी है, तुझे देखकर तो वे डर ही जायँगी। उनका रंग बड़ा सफ़ेद होता है। वे गालों और ओंठों पर कुछ अजीब-सा रंग और पालिश लगाती हैं। और बड़ी अजीब-सी लगती हैं वे। तुझे मालूम है कि दिल्ली में देसी औरतें भी मुँह पर ऐसा ही रंग लगाती हैं और ओंठों पर वैसा ही पालिश और तुझे मालूम है कि वे सिर के बाल भी कटवाती हैं। अरी तू क्या जाने पूरी मेमें लगती हैं मेमें।”

कुछ दिन तक तो रामी का मन दिल्ली के सपनों से ओत-प्रोत रहता; परन्तु ऐसे सपनों के लिए कल्पना की ऊँची उड़ान चाहिए। रामी का दृष्टि-क्षेत्र सीमित था। देहली के विचारों को बहुत दिन तक वह अपने अन्दर न ठहरा सकती। लेकिन गाड़ी की सीटी, गाड़ी की सीटी तो केवल एक मील की दूरी पर ही थी, कहीं वह रेंगकर वहाँ तक जा सकती.....



शायद रामी की माँ रामी के इन सुख-सपनों को समझने की योग्यता न रखती थी। उसके लिए रामी विमूढ़ थी, अनुभवहीन और शुष्क। घर के सारे बर्तन माँजना, चक्की पीसना और समय मिले तो चर्खा काटना रामी की दिनचर्या थी। बर्तन माँजते-माँजते कभी-कभी रामी भुकी बैठी रह जाती। फिर वही सीटी ! कल्पना के घोड़े पर सवार होकर रामी गाड़ी पर पहुँचती। वह दुनिया को भूल जाती, घर वालों का तिरस्कार, संसार की उदासीनता, गाँव वालों का परिहास,

सब पीछे छूट जाते। गाड़ी और सपनों की दुनिया—उस दुनिया में अवज्ञा करने वाले न होते; पंगु-पंगु कहकर चिल्लाने वाले न होते; दुत्कारकर रलाने वाले न होते। तब तक सहसा उसकी माँ का कठोर शब्द सुनायी देता और गालियों की बौछार। सपने अस्त-व्यस्त होकर रह जाते। माँ के कठोर शब्दों का उत्तर रामी के पास केवल मर्म-भरी एकटक दृष्टि से माँ को देखना और अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू भर लाना ही होता। पंगुओं के पास और उत्तर भी क्या होगा ?

गयी रात तक रामी चक्की पीसती। उसने चक्की की घर्-घर् में अपने दुःखों का भूलना सीख लिया था। कोठरी में संसार की उपेक्षिता रामी को अपने विचारों की दुनिया बनाने और उसमें खो जाने का अवसर मिलता। जब रामी भागते, कूदते, खेलते, नाचते बच्चों को न देखती तो उसे अपनी हीनता का ध्यान न रहता। वास्तविकता स्वप्न बन जाती और स्वप्न वास्तविक-से दिखायी देने लगते। ऐसी घड़ियों में रामी सुख का अनुभव करती और ईश्वर में कुछ-कुछ विश्वास करने लगती। प्रायः वह अपनी माँ को मन-ही-मन धन्यवाद देती कि उसे कुछ काम देकर उसकी माँ ने उसे गाँव के बच्चों के परिहास से परे रखा है। यह अच्छा था कि रामी अपनी माँ के प्रति ऐसे विचार रखती थी, उसकी माँ ने तो कभी उसे मनुष्य समझा ही नहीं। वह तो उसे एक प्रेरित मशीन समझती थी। रामी चल-फिर नहीं सकती, बुरा-भला कहने पर भी चुप रहती है, उसे किसी ने रोते नहीं देखा तो फिर उसे चक्की पीसने में ही क्यों न लगाया जाय !

अपने भाई और बहन से प्रायः रामी की अनबन रहती। उसने उन्हें कभी भला-बुरा नहीं कहा, साहस भी नहीं था और न इच्छा ही थी। बच्चों ने अपना व्यवहार माँ से सीखा था। योही रामी को कोसना, उसकी

हीनता को उसे बार-बार जतलाना—ऐसी बातों में उन्हें रस मिलता था । जब कभी वे रामी से सीधे मुँह बात भी करते तो ऐसे ढंग से मानो उस पर बड़ा अहसान कर रहे हों । माँ स्वयं ही रामी को उनसे जुदा रखती, रामी की रक्षा के लिए नहीं, नन्हीं और मुन्ना की भलाई के लिए ।

✱

गाँव ही तो था । सब को शौचादि के लिए बाहर खेतों में जाना पड़ता । रामी रेंगकर घर से बाहर निकलती तो गाँव के बच्चों का खिलौना बन जाती । दो-एक रामी के साथ रेंगने का अभिनय करते । रामी की विवशता आँसू बहाती, पर आँसू आँखों तक पहुँचते-पहुँचते अपनी बेबसी में ही सूख जाते । बच्चों से बचने के लिए रामी बहुत सवरे उठती और डर-डरकर खेतों में जाती । सर्दियों में लोग अभी सोये ही पड़ें होते । भूमि पर कुहरे की चादर बिछी होती । मुँह-अँधेरे रामी अपने को घसीटती हुई अपनी उसी पुरानी कमीज़ और सलवार में निकलती । सर्दी से हाथ-पाँव जम जाते, शरीर सन्न होकर रह जाता । पर बच्चों के उपहास का डर रामी को अत्यन्त शीत में भी रेंगने की शक्ति देता ।

दिन चढ़ता तो रामी अपनी अँधेरी कोठरी में शरण लेती । बाहर धूप खिलतो, पीपल के नीचे बच्चों के झुण्ड इकट्ठे होने लगते तो रामी छिप-छिपकर देखती । जब बच्चों की खेल-कूद और उनकी हँसी उसके लिए असह्य हो उठती तो आँखें बन्द करके खाट पर लेट जाती । पंगु अपना दिल ऐसे ही बहलाया करते हैं ।

शायद रामी का पंगुपन ठीक हो जाता । रामी के गाँव में ही राम-गोपाल नाम का एक बूढ़ा बढ़ई रहता था । उसने अपने सिद्ध वैद्य होने की

*** रामी

दावा कभी नहीं किया, पर सभी को मालूम था कि बूढ़े रामगोपाल को दवाओं के कुछ टोटे आते हैं, जो ठीक बैठते हैं। जब दमे के कारण माँ की साँस उखड़ जाया करती थी तो रामगोपाल ने उसको दो ही सप्ताह में भली-चंगी कर दिया था। चरणसिंह के लड़के की टाँग टूटने पर रामगोपाल ही धन्वन्तरि बनकर आया था। फिर रामी की माँ ने रामगोपाल को सहायता के लिए क्यों न बुलाया? बुलाया तो था, पर बात ठीक न हो सकी थी। रामगोपाल ग़रीब था। उसमें अपने पास से दूसरों की चिकित्सा के लिए पैसे खर्च करने की सामर्थ्य न थी। रामी की माँ से उसने बीस रुपये माँगे थे और कहा था कि मैं यह नहीं कहता कि रामी निश्चित रूप से ठीक हो जायगी; पर मुझे आशा बहुत है और यदि ईश्वर ने चाहा तो रामी एक महीने में चलने-फिरने लगेगी। रामी की माँ को यह बात ज़ँची नहीं। ईश्वर की बातों का किसी को पता नहीं। और यदि पता ही नहीं तो विश्वास कैसा? अगर रामी अच्छी न हुई तो यह बीस रुपये योही बेकार जायेंगे और रामी की माँ पैसों के योही बेकार जाने से डरती थी।

यह डर लोगों की समझ में आ जाता, यदि रामी का परिवार बहुत ग़रीब होता। परन्तु उनके पास तो अच्छी-खासी ज़मीन थी। दो कुएँ अपने थे। एक बाग़ भी था। कटाई के समय पर खेतों के लिए तीस से अधिक मज़दूरों की आवश्यकता भी आ पड़ती थी। फिर भी यह बीस रुपयों का खर्च रामी की माँ को चुभता था। रामी सब से बड़ी लड़की थी और अपनी माँ की सब से बड़ी सन्तान। उसके जन्म के पहले रामी की माँ को पूरी आशा थी कि लड़का होगा; पर जनमते ही रामी ने सब आशाओं पर पानी फेर दिया था। एक तो लड़की, दूसरे पंगु! रामी की माँ को कुछ दिन तो दुख अवश्य हुआ था, पर फिर उसने अपने-आपको

टाढ़स दे ली थी कि इस पंगु को कोई ब्याहने से रहा और इसलिए माँ के दिल से एक भारी बोझ उतर गया था। पंगु के लिए यह थोड़ा है कि उसे जीवित रहने के लिए दो जून - रोटी मिल जाये !

‘दिल्ली वाले चचा’ के पास भी एक बार रामी की चर्चा चली थी। बस, एक बार ही। वे दुखी लोगों की कथा सुनने के शौकीन नहीं थे। उन्हें अपने दफ्तर का काम ही काफ़ी था। शाम को वे सिनेमा जाना पसन्द करते या क्लब में टेनिस और ब्रिज खेलते। पर उन दिनों उनका अपना छोटा बच्चा बीमार था। तब उन्होंने रामी की माँ से पूछा था कि उसने रामी का क्या इलाज करवाया है। पहले तो माँ ने बात टाल दी थी कि उस पंगु का जीवन तो ऐसे ही कट जायगा। फिर उसके हृदय में ममता की बड़ी हल्की-सी एक टीस उठी थी और उसने रामगोपाल और उन बीस रुपयों का ज़िक्र कर दिया था। चचा ने कहा था कि यदि इस खर्च से रामी अच्छी हो जाय तो बीस रुपये दे देने चाहिएँ। फिर आप ही कहने लगे थे कि इन गँवार हकीमों पर ज़्यादा भरोसा नहीं रखना चाहिए। हो सकता है कि इस दवा से लाभ के स्थान पर हानि पहुँच जाय। जो अब थोड़ा-सा रेंग सकती है, कहीं उससे भी हाथ-धो बैठे। फिर रामी को अपना पंगुपन अखरता भी तो नहीं। उसे रोते किसी ने नहीं देखा। उस बेचारी को अपनी अवस्था में मस्त रहने देना चाहिए। हजार रुपया मासिक वेतन लेने वाले ऐसी बातें खूब कर सकते हैं।

पर उनको एक और भी डर था। वे सोचते थे कि यदि मैंने इलाज करवाने के लिए ज़ोर दिया तो कहीं बात बढ़ न जाय। हो सकता है कि रामगोपाल का टोटका ठीक न बैठे। इन मूढ़ वैद्यों के इलाज अँधेरे में निशाना लगाने की तरह हैं। अगर इलाज ठीक न बैठा और रामी

की माँ ने कह दिया कि अब रामी को देहली लाकर भी दिखा दिया जाय तो फिर ? चचा की आँखों के सामने रामी की रेंगती हुई पंगु मूर्ति घूम गयी । वे काँप-से गये । गाँव की और बात हैं । गाँव के लोग सीधे-सादे हैं । वे रामी को सह सकते हैं । यहाँ कोठी में उसका ठहरना मुश्किल होगा । कमरे-कमरे में घिसटती फिरेगी । फर्श और दरियाँ खराब होंगी । रोज़ कितने ही मिलने वाले आते हैं । वे देखेंगे तो क्या कहेंगे ? रामी गाँव में ही अच्छी है ।

जब रामी मरी तो वह २४ वर्ष की थी । उसे अपना छोटी-सी दुनिया देखने के लिए बहुत समय चाहिए भी नहीं था । सुबह जब अँधेरे में ही उठकर वह शौच के लिए खेतों में जाती तो बड़ी सहमी-सी रहती । सूर्य उदय होने से पहले ही वह वापस लौट आती । गिलती धूप में लहलहाते खेत, जामुन और आम के भुरमट में पड़े भूले, सीटी दे-देकर निमन्त्रित करती गाड़ी—यह सब उसकी पकड़ से परे थे । उसका सारा दिन अपनी कोठरी में कटता । उसकी चारों दीवारों में वह भली-भाँति परिचित हो गयी थी । उन पर में गोबर का लेप उतर चुका था । पहले तो वर्ष में एक बार नया लेप हुआ करता था, पर कुछ वर्षों से घर के सब लोग मुस्त पड़ गये थे । दालान में जो दरवाज़ा खुलता था, वह प्रायः बन्द रहता । सुबह अँधेरे ही शौच जाने के लिए रामी दरवाज़ा खोलती, फिर भोजन के समय किवाड़ खुलता, घिसटकर रामी दालान में आती । उस समय सब रोटी खा चुके होते । एक थाली में जो सब का बचा-खुचा रहता, उसके आगे रख दिया जाता । सामने सारे घर के माँजने वाले बर्तन रखे रहते । रामी कभी एक की ओर देखती, कभी दूसरे की । फिर भोजन पाकर बर्तन माँजने में जुट जाती । उसी समय नन्हों या मुन्ना कातने के लिए रुई अन्दर कोठरी में रख आते ।

साँभ होती। अँधेरा पड़ता। रामी डरी-डरी अँधेरे में मूक बैठी माँ के आने का इन्तज़ार करती। माँ दरवाज़ा खोलकर अन्दर आती। जब तक वह अन्दर रहती दरवाज़ा खुला रहता। वह एक ओर टूटी हुई तिपाई पर पड़ दिये का जलाती। दिये की काँपती लौ की मद्धिम रोशनी में रामी का ऐसे मालूम होता, जैसे उसके चिर-परिचित साथी—चक्की के पत्थर और लकड़ी का हत्था, छत पर लगा हुआ मकड़ी का जाला और मिट्टी की दीवारें, जिन पर अब गोबर का लेप नहीं रहा था—जो उसे अकेली छोड़कर अँधेरे में ग्वा गयी थीं उसे फिर मिल गयी हों। उसे कुछ सान्त्वना मिलती। रामी की माँ चक्की के पास ही गेहूँ की टोकरी पीसने के लिए रख देती। सोने से पहले वह एक बार गेहूँ लेकर फिर आती, जिससे रामी सुबह से पहले-पहले उन सब को पीस डाले।

तीन दीवारें तो बिलकुल ठोस थीं। चौथी में एक छोटी-सी खिड़की थी, जिसमें छड़ें लगी हुई थीं। सुबह-सुबह रामी रेंगकर अपने-आपको खिड़की के पास ले आती और नये सूरज की किरणों से चमकते हुए दूर वृक्षों और खेतों को देखती। ठंडी वायु रामी के मुख को चूमती तो वह कुछ समय के लिए अपने अभावों को भूल जाती। उसका चेहरा खिल उठता और वह मन-ही-मन कुछ गुनगुनाने-सी लगती। फिर ज्योंही गाँव के लोग घरों से बाहर निकलने लगते, रामी घिसटकर कोने में चक्की या चर्वे के पास जा बैठती। वह लोगों की 'सहानुभूति-भरी' निगाहों से बचना चाहती थी। जब काम करते-करते थक जाती तो छत पर मकड़ियों को अपने जाल में फँसी हुई मक्खियों का खून चूसते देखा करती। दोपहर को जब बाहर शोर होता तो चुपके-चुपके खिड़की में से बच्चों के खेल देखा करती। संध्या की निस्तब्धता में आकाश पर के बुझते-जगते तारों का अवलोकन किया करती और फिर जब मन

घबराने लगता तो खाट पर लेटकर रो लेती ।

रोज़ यही हुआ करता । रामी की दुनिया इतनी ही थी । चौबीस साल इसी सीमित दुनिया में रहते-रहते वह अब थकने-सी लगी थी और एक दिन जब चक्की पीसते-पीसने गाड़ी की सीटी सुनने के लिए वह ज़रा थमी तो सीटी की आवाज़ के साथ ही, जैसे उसका पीछा करती हुई, उसकी आत्मा उसके पंगु शरीर को छोड़कर चली गयी !



लारी में

जब सवारियों के बहुत भगड़ा-भमेला करने पर लारी अड्डे से चली तो थोड़ी ही दूर जाकर फिर रुक गयी, इसलिए नहीं कि उसका पेट्रोल खत्म हो गया था, बल्कि इसलिए कि अभी सारी लारी सवारियों से खचाखच भरी नहीं थी। फिर एक बार बीच में बैठे हुए मुसाफ़िरों ने बेसब्री से बड़बड़ाना शुरू कर दिया था। उनमें से अधिकांश को लारी में बैठे दो घंटे से अधिक हो चले थे, पर ड्राइवर यही कहकर कि 'जी, बस अब चला।' फिर अपने साथी से इस बात पर बहस करने लगता कि जालन्धर की औरतें खूबसूरत होती हैं अथवा अमृतसर की। तब सहसा एक बुढ़िया का गुनगुनाना विपत्ति-सूचक धमकियों में परिणत हो गया था, "उतार दे भाई, मुझे उतार दे" कहकर उसने अपनी लकड़ी और मैले कपड़ों की गठरी सम्हाली थी और "नहीं, सबेरे से बैठी हूँ; मुआ, सिर फटा, चलता ही नहीं" के साथ लारी के दरवाज़े की ओर बढ़ी थी। उसे देख, दो-चार और मुसाफ़िरों ने भी अपने-अपने

थैलों की ओर हाथ बढ़ाया था। तब क्लीनर ने लाल-लाल आँखें निकालकर “बैठ माई, बैठ, अब चलने ही वाले हैं।” डाँटते हुए जोर से लारी का दरवाज़ा बन्द कर दिया था और ड्राइवर से बड़बड़ाते हुए कहा था, “चलो !”

थोड़ी दूर जाकर चिरूँ-चिरूँ की आवाज़ करती हुई लारी फिर रुक गयी थी। ड्राइवर को सड़क के किनारे जाते हुए तीन महानुभावों की हिलती हुई लाल पगडियाँ दिखायी दी थीं। शायद मुसाफ़िर ही हों। लारी वालों का अतिथि-सत्कार तो जगत्-प्रसिद्ध है। जहाँ बीस आदमियों के बैठने की जगह हो, वहाँ पचास को आश्रय और विश्राम देना उनके लिए उतना ही आसान है, जितना रुई से भरे बोरे में और रुई का ठूसना, और फिर आज तो ईश्वर की कृपा से संतरी मेलाराम भी घर में बीमार पड़ा राम-राम कर रहा है; आज चैकिंग का भी डर नहीं। आज तो दुनिया भर को लारी में लादा जा सकता है। और ड्राइवर ने उल्लास से लारी के हॉर्न को बड़े जोर से दो-चार बार बजाया। क्लीनर ने आवाज़ लगाते हुए कहा, “आ जाओ, आ जाओ, तुम जितने पैसे कहोगे, उतने ही ले लेंगे। आओ तो सही। कहाँ जाना है ?” उनका अगुआ बोला, “जंडयाला जायेंगे, कितने पैसे लोगे” क्लीनर कहने लगा “औरों से ६ आने लेते हैं, तुमसे पाँच आने ही ले लेंगे। चलो आओ !” दो पिछले आदमी कुछ रुके, मानो उनकी मज़ीं बैठने की हो गयी हो। लेकिन उनके अगुए ने अपने मुँह से हुक्के की नली भी न निकाली और वैसे ही चलता गया। उसे देख शेष दोनों भी मुँह लटकाये उसके पीछे-पीछे हो लिये। क्लीनर चिल्लाया, “अरे, बात तो सुनो।” पर उन लाल पगड़ी वालों ने, जिनके अगुए के मुँह में हुक्के की नली थी, अपनी चाल भी धीमी नहीं की। “ठहरो तो सही,” क्लीनर ने गला फाड़कर, उनके पीछे भागते

हुए कहा, “तुम कितने पैसे दोगे ?” कोई उत्तर न मिला, पर चिलम में मे एकवारगी कुछ अधिक धुएँ की भभक उठी। क्लीनर समझ गया कि अगुए ने एक लम्बा कश लगाया है, अतः उसकी बात पर गौर किया जा रहा है। पिछ्लों के पाँव फिर कुछ रुकते हुए दिखायी दिये। अगुए ने मुड़कर कहा, “तीन आने।” फिर अपना रास्ता पकड़ा। “तीन आने !” क्लीनर ने खोखला क़हक़हा लगाते हुए कहा. “पाँच रुपये का पेट्रोल फूँककर अमृतसर पहुँचना है। हमारे बाप के नातेदार हों। चार आने दांगे ?” तीनों ने न तो रिश्ते का जवाब दिया, न ही पैसों का। क्लीनर ने भागकर उन लाल पगड़ी वालों के अगुए को पकड़ते हुए कहा, “कुछ बोलोगे भी या शेख के चचा ही बने रहोगे। अच्छा चलो, साढ़े तीन आने देना।....अच्छा सवा तीन आने दांगे ?” हुक्के की नली मुँह से बाहर आ गयी। अगुआ बोला, “अच्छा भाई, तुम ही कमा लो।” और मुड़कर तीनों लारी में सवार हो गये।

*

तीनों नीचे फ़र्श पर ही बैठ गये। सीटें सब रुकी थीं, पर वे यदि उन पर बैठना चाहते तो क्लीनर उनके लिए स्थान खाली करवा सकता था। यही तो लारियों की खूबी है। सब पंडे के पेट में खीर की तरह समा जाता है।

“हम ग़रीब ज़तों में ही अच्छे !” चिलम के कोयलों को अगुए ने हाथ से हिलाते हुए कहा, “हम ज़ात के साहंसी* हैं। हमारा नाम ही बदनाम हो गया है। कहीं चोरी हो, कहीं डाका पड़े, पुलिस सब से पहले

* साहंसी पंजाब की एक ज़रायम-पेशा कौम है।

लारी में

हमारे घरों पर ही धावा बोलती है। अभी उस दिन हमारे गाँव के 'सफेदपोश' की गाय गुम हो गयी थी। थानेदार ने मुझे ही बाँध लिया। कहने लगा, 'बता किसके पास बेचकर आया है?' न भाई, हम तो न किसी के लेने में, न किसी के देने में। लां अपने पैसे!"

यह कहकर अगुए ने अपने तहमद के एक पल्ले में से दस आने निकाले और क्लीनर की ओर हाथ बढ़ाया, "हम पर लोंगों को ऐसे ही शक हो जाता है। अभी थोड़ी देर में तुम्हीं पलट जाओ कि हमने तुम्हारे पैसे नहीं दिये!"

क्लीनर ने कहा, 'आप बेफ़िक्र रहिए, पैसे कहीं भाग नहीं जाते।'।

"पर ज़माना बड़ा खराब है" मुँह से धुआँ निकालता हुआ लाल पगड़ी वालों का अगुआ बोला, दयानतदारी की तो क़दर ही नहीं होती। अभी से अपने पैसे ले लो। किसी और का हक़ अपने पास रखना मुझे चुभता है। हम ग़रीब हैं, ठग नहीं।"

क्लीनर ने मुस्कराकर किराया ले लिया। एक मुसाफ़िर ने आवाज़ दी, "मैंने टांगरा जाना है।"

क्लीनर ने ज़ोर से पुकारकर ड्राइवर को कहा, "टांगरा के मोड़ पर ज़रा रुकना, एक सवारी उतरेगी।"

अगुए ने अपने साथियों से बात करते हुए कहा, "देखा रणिये, अभी तक क्लीनर ने बाक़ा पैसे वापस नहीं किये। उसका दोष नहीं। मुल्क की हवा ही ऐसी बिगड़ चली है। कोई किसी पर भरोसा करे तो क्योंकर?"

फिर क्लीनर से एक पैसा वापस लेते हुए बोला, "भाइयो हम साहंसी हैं, हमारा काम जूतों में बैठना है। आप अपने-अपने जूतों का ध्यान रखें। हम वैसे ही बहुत बदनाम हैं। कहीं मुफ़्त में हमें और

मुसीबत न उठानी पड़े।”

सरदार साहब जो पास ही जूता उतारे, टाँगें अपने नीचे दबाये बैठे थे और एक पुरानी ‘लण्डन लाइफ़’ पत्रिका की तसवीरें देख रहे थे, झुककर हाथ से अपने जूते टटोलने लगे। उन्हें अपनी जगह पर ही पड़ा पाकर सन्तुष्ट हुए और साहसियों से बोले—“ऐसी फ़िक्र की क्या बात है। कौन मुफ्त में किसी की चोरी करता है। जैसे हम वैसे तुम। तुम निश्चिन्त रहो.....”

पास ही दिल्ली की ओर के एक सज्जन बैठे थे। उन्होंने एड़ी से टटोलकर अपनी तसल्ली कर ली कि उनकी गठरी भी सीट के नीचे सही-सलामत पड़ी है। उधर से सन्तुष्ट होकर उन्होंने सिर हिलाकर सरदार साहब की बात का समर्थन किया, “आप ठीक फ़रमाते हैं।” फिर वे पलटकर अपने साथी से कहने लगे, “ड्राइवर नया लगता है, ज़रा मीटर में देखो क्या रफ़्तार है। मुझे तो २५ मील से अधिक नहीं लगती। इस रफ़्तार से तो हम पहुँच चुके।”

साथी ने मीटर देखकर कहा, “हाँ, है तो २५ ही।”

सज्जन पान थूकते हुए बोले, “हम तो सड़क देखकर ही बता देते हैं कि मोटर किस रफ़्तार से जा रही है। कई बार दिल्ली से बुलन्दशहर और मेरठ से सहारनपुर गये हैं। ड्राइवर को ज़रा धमकी दो, तेज़ चले।”

साथी ने कहा, “कौन-सी जल्दी है। रात तो होने लगी। जाकर क्या पापड़ बेलने हैं।”

सज्जन फिर थूककर बोले, “अबे कल के लौंडे, सब को अपनी तरह ही निकम्मा समझता है? अभी तो जाकर हाथ-मुँह धोना है। रोटी भी नहीं खायी।.. यह पिछली मोटर भी आगे निकल गयी... अरे भई ड्राइवर,

लारी नयी है तो क्या, एक दिन तो इस पर छींटे पड़ेंगे ही। ऐसे ही बाकी लारियों को आगे निकल जाने दोगे.....।”

एक मिनट बाद अपने साथी को संकेत से सड़क दिखाते हुए बोले, “अब ३५ मील से क्या कम जा रही होगी ! ज़रा देखो....”

साथी ने फिर मीटर पढ़कर कहा, “अब भी २५ मील ही है।”

सज्जन रुष्ट होकर बाहर थूकते हुए बोले, “३५ है। मैं तो सड़क देखकर ही बतला सकता हूँ।”

आगे एक बैलगाड़ी आ जाने से ड्राइवर ने सहसा ब्रेक लगाकर लारी रोक ली। सज्जन महोदय उछल पड़े और सिर के बल गिरते-गिरते बचे। फिर अपने-आप बड़बड़ाने लगे, “ठीक है ड्राइवर, ठीक है। धीरे-धीरे चलाओ, कौन-सी जल्दी है.....”

सरदार साहब ‘लण्डन लाइफ़’ बन्द करते हुए साहंसियों से कहने लगे, “अब जूतों में बैठने का ज़माना लद गया। अब तो सब बराबर हैं। यह अब खाली कहने की बातें ही नहीं हैं भाई, अब तो सरकार भी ध्यान रखती है कि कहीं कोई ग़ैरज़रूरी ऊँच-नीच न आने पाये।”

सामने डीज़ल-रेल-कार जा रही थी। सरदार साहब उधर संकेत करते हुए बोले, “उसी को देख लो। सरकार की हिम्मत नहीं पड़ी कि इसमें एक से अधिक क्लासें रखे। सभी चाहे फ़र्स्ट क्लास समझ लो, चाहे थर्ड क्लास।”

“चलती ख़ूब है।” एक महाशय बोले।

सरदार साहब ने दाढ़ी को सड़क की धूल से बचाने के लिए उस पर रुमाल बाँधते हुए कहा, “घंटे में एक सौ दस मील जाती है। और खर्च, खर्च इस पर आता ही क्या है। एक सौ पच्चीस मील चलने के लिए इसे केवल एक गैलन पेट्रोल चाहिए और एक डिब्बा पानी।”

“पानी !” दूसरे महाशय गले अटके गोले को साफ़ करते हुए बोले, “यह रेल-कार पानी से चलती है ?”

“हाँ साहब पानी से,” सरदार साहब ने छाती फुलाते हुए कहा, “आजकल तो पानी से ‘हाइड्रोजन बम्ब’ बनने लगे हैं, ज़रा-सी रेल-कार न चल सकेगी ?”

महाशय जी प्रभावित होकर चुप हो गये। तीनों साहसियों ने बहुत देर तक सिर हिला-हिलाकर सरदार साहब की बुद्धि की दाद दी। सरदार साहब और उत्साहित होकर बोले, “प्रजातन्त्र का ज़माना है प्रजातन्त्र का, तुम देखना,” सरदार जी ने ज़ोर से अन्दर की बलग़म को बाहर सड़क पर फेंकते हुए कहा, “कुछ दिनों या कुछ महीनों बाद रेलगाड़ियों में भी एक ही क्लास रह जायगी। हम ज़त्था तैयार कर रहे हैं जो अमृतसर स्टेशन पर धरना देगा। हम भूख-हड़ताल करेंगे। हम सत्याग्रह की शरण लेंगे। हम ‘एक गाड़ी एक क्लास’ के नारे लगायेंगे। सरकार को पसीजना पड़ेगा। सरकार को झुकना पड़ेगा। अब समाजवाद का बोलवाला है, अमीरों को उसी क्लास में बैठना पड़ेगा, जिसमें हम बैठेंगे। प्रजातन्त्र में सब बराबर हैं, सब दयानतदार, सब एक-दूसरे पर विश्वास करने वाले, उठो....” सरदार साहब अपने दोनों हाथों को नाटकीय ढंग से आगे को पसारते हुए बोले, “ऊपर उठो। क्यों जूतों में पड़े हो ? मुझे इंसान को यह दुर्दशा देखकर क्रोध आता है और मैं शर्म से पसीना-पसीना हो जाता हूँ।”

सरदार साहब के इन मार्मिक शब्दों से सभी उनकी बुद्धि और खरेपन के कायल हो गये, पर साहसी अपनी जगह से न टले। वहीं मिट्टी के माथो बने निर्निमेष आँखों से सरदार साहब की ओर देखते रहे। फिर उनका अगुआ हुक्के का एक लम्बा कश लगाकर, जिससे

उसे पूरे दो मिनट तक खाँसी ने अपना शिकार बनाये रखा, बोला “यह एक-दूसरे पर विश्वास करने की आप ने खूब कही। इसी सिलसिले में मुझे भी गुज़रे हुए ज़माने की एक बात याद हो आयी है, जब लोग एक-दूसरे पर ज़रूरत से ज़्यादा विश्वास कर लिया करते थे। मेरा मतलब पठानकोट वाले लाला जी से है। लाला जी दो लारियों के मालिक थे और मुसाफ़ि़रों को बैजनाथ पहुँचाने का कारवार किया करते थे। ड्राइवरो की शरारत कहिए या लाला जी का भाग्य, मोटरों में कोई-न-कोई दोष सदा बना रहता, जिस कारण उन्हें कमाई से अधिक खर्च करना पड़ता है। लाला जी की ड्राइवरों में हमेशा खटपट रही, जब तक कि उनका नत्थू से पाला न पड़ा। नत्थू काम करने में बड़ा होशियार था। उसने आते ही लाला जी पर अपनी पटुता का आतंक जमा लिया। ‘मोटरें खराब कैसे न हों’ वह कहने लगा, ‘आप किस पेट्रोल का प्रयोग करते हैं?’ ‘शेल और क्या?’ लाला जी बोले। ‘बस! उसमें और कुछ नहीं डालते?’ नत्थू ने अचम्भे का प्रदर्शन करते हुए कहा। ‘और?’ अब लाला जी के चकित होने की बारी थी, ‘पेट्रोल में और भी कुछ डाला जाता है?’ ‘और नहीं तो क्या,’ नत्थू बोला, बैजनाथ जाना पड़ता है, अमृतसर नहीं। पहाड़ पर सर्दी से आदमी सन्न हो जाते हैं, यह तो बेचारी फिर मोटर है।’ लाला जी को मुँह खोले खड़े रहने के सिवा और कुछ न सूझा। ‘इसे भी आराम की ज़रूरत है, गरमाई की आवश्यकता है’ नत्थू ने सीधे लाला जी की आँखों में देखते हुए कहा, ‘यह भी सर्दी को दूर रखने के लिए नशा चाहती है।’ ‘नशा?’ लाला जी ने आँखें फाड़कर नत्थू की ओर देखते हुए कहा। ‘जी हाँ, नशा!’ नत्थू बोला— ‘एक गैलन पेट्रोल और एक गैलन शराब। दोनों की मिलावट। फिर देखिए मोटर के इंजन के पुर्जे किस कुर्ती से काम करते हैं।’

अब लाला जी की लारियाँ पहाड़ी सड़कों पर ऐसे निर्विघ्न दौड़ने लगीं जैसे रेल की पटरी पर तूफ़ान मेल। जब नशे में झूमता नत्थू लाला जी के पास आया और बड़ी डींग से लड़खड़ाती आवाज़ में बोला “क्यों ! देखा लाला जी !” तो लाला जी का पूर्ण विश्वास हो गया कि बारह साल तक मोटरें चलवाने पर भी वे गधे से आदमी न बन सके। यह भी न पता चला कि मोटर को भी सुगमता से काम करने के लिए नशा चाहिए। इतनी सीधी बात।” उन लाल पगड़ी वाले साहंसियों के अग्रगण्य ने छींककर कहा, “बस नत्थू की एक बात और है।”

मरदार साहब सिर के बाल ठीक कर रहे थे। उन्हें वैसे ही छोड़ उल्टुकता से बोले—“बो क्या ?”

साहंसियों का अग्रगण्य बोला, “बो यही कि लाला जी की मोटर ठीक तो हां गयी, पर एक महीने के बाद बैजनाथ से बीस मील इस तरफ़ फिर अड़ने लगी। लाला जी ने नत्थू से पूछा, ‘अब क्या नुक्स पड़ गया है।’ नत्थू ने उत्तर दिया, ‘ऐसा लगता है कि मोटर सामने के मन्दिर को देवा से डरती है।’ फिर नीचे ४०० फुट की खाई की ओर संकेत करके बोला, ‘यदि देवी को प्रसन्न न रखा गया तो किसी दिन सारी सवारियाँ उस नाले में लुढ़कती नज़र आयेंगी।’ सवारियाँ घबराकर नीचे उतरने लगीं। लाला जी भी सहम गये। नत्थू ने आश्वासन दिया, ‘धीरज से काम लेना चाहिए। सब ठीक हो जायगा। यदि आप कहें तो मैं हर मंगल एक बकरे की बलि मोटर की ओर से देवी माता पर चढ़वाने का प्रबन्ध कर दूँ।’ लाला जी, जो आगे ही नत्थू की प्रखर बुद्धि से प्रभावित हो चुके थे, मुँह लम्बा करके कहने लगे, ‘जो ठीक समझते हो कर लो।’ उस दिन से नत्थू को हर हफ़्ते एक बकरा बलि देने के लिए भी मिलने लगा। मोटर भी सुभीते से चलने लगी, नत्थू के घर में भी खूब कबाब

बनने लगे ।”

सरदार साहब बड़े ज़ोर का ठहाका लगाकर बोले, “भई, क्या खूब गप्पें हाँकते हो । भले आदमियों से भी कोई ऐसा विश्वासघात करता है ? हम तो भाई सब को ईमानदार समझते हैं ।”

“आप बहुत अच्छा करते हैं सरदार साहब ।” साहंसियों के अग्रगुण ने हुक्के का लम्बा कश लगाते हुए कहा.... “संसार आप जैसे भले आदमियों के सिर पर ही तो चलता है.... कर्लानर जी, जंडयाला आ गया, ज़रा गाड़ी रोकना.... अच्छा भाइयों नमस्ते. हम तो चले ।” और तीनों साहंसी लारी में उतर गये ।

अमृतसर के अड्डे पर लागी आकर रुकी तो सवारियाँ उतरकर अपनी-अपनी राह लेने लगीं । पर सरदार साहब, जूता पहने, सीट के नीचे झुके हड़बड़ा रहे थे ‘मेरा थैला किधर है ?’ और पास में ही, अपनी गठरी बगल में दबाये, दिल्ली वाले सज्जन टाँग फैलाकर सीट के नीचे दूर तक पाँव में कुछ टटोल रहे थे और धबराई आवाज़ में अपने-आप से पूछ रहे थे ‘कम्बख्त जूता कहाँ गया ? कम्बख्त जूता कहाँ गया ।’



पति-पत्नी

पाँच वर्ष पहले की बात को अबकी बात जानकर कहता हूँ ।

#

यह तो अपने-अपने भाग्य की बात है । कुछ लोगों को बिना ढूँढ़े ही पत्नी मिल जाती है । दूसरों को सात-सात वर्ष आदर्श पत्नी की तलाश में बाल सफ़ेद करने पड़ते हैं । उमेश का विवाह भी सात साल की दौड़-धूप के बाद अब होने जा रहा है ।

उमेश डिप्टी कमिश्नर है । प्रान्त का कोई ही अच्छा खाता-पीता आदमी होगा जिसने उमेश से अपनी लड़की की शादी के बारे में बात न चलायी हो । लेकिन उमेश ने अपनी खोज जारी रखी है । उसे अभी अपने सपनों की लड़की नहीं मिली है । निराश होकर लोगों ने अफ़वाह उड़ा दी है कि उमेश लालची है, वह दहेज में एक मोटी रकम चाहता है । पर यह सब झूठ है । बिलकुल झूठ !

सुनीता ही एक लड़की है जिसमें उमेश को कोई कर्मा नज़र नहीं आयी। जब से उसने अपने मामा के साथ शिमला जाकर अपनी भावी पत्नी को देखा है तभी से उसमें कुछ अजीब-सा परिवर्तन आ गया है। हर एक वस्तु, जो सुनीता की याद दिलाती है, प्यारी हो गयी है। आती बार सुनीता के पिता ने उमेश को एक अशर्फी और कुछ छांहारे शगुन-स्वरूप दिये थे। उमेश ने अशर्फी को एक लिफाफे में बन्द करके, उस पर मुहर लगाकर और ६ जून लिखकर अपने स्पेशल अटैचीकेस में बन्द कर दिया है। छांहारों को रखने के लिए मखमल की एक लाल रंग की थैली बनवायी गयी है। उसे उसके उस कीमती ट्रंक में स्थान मिला है जिसे वह जर्मनी से लाया था। उमेश सुनीता को ६ तारीख का देखने गया था। तभी से उसने '६' को अपना 'लक्की' नम्बर समझ लिया है। उस दिन उमेश ने अपने चचा को एक पत्र भी लिखा है, जिसमें उसने बड़े विस्तार से बयान किया है कि कैसे उसके जीवन की समस्त शुभ घटनाएँ किसी-न-किसी तरह '६' से ही सम्बन्ध रखती हैं। उदाहरणार्थ, उसने लिखा है, उसको सरकारी नौकरी ६ तारीख को मिली थी। उसका जन्म-दिन ५ अप्रैल है। अप्रैल साल का चौथा महीना है और ५ और ४ तो ६ होते ही हैं। उसका विवाह २७ को होना तय पाया है। अचम्भे की बात है कि ७ और २ भी ६ होते हैं। एक डिप्टी कमिश्नर के दिल में अलौकिक शक्तियों के लिए श्रद्धा उत्पन्न हुई है। उमेश ऐसे-वैसे अंधविश्वासों का कायल नहीं, पर अब 'लक्की' नम्बरों में कुछ-कुछ विश्वास रखने लगा है।

आज विवाह हुए दो दिन हो गये हैं। परसों उमेश अपनी नव-विवाहिता पत्नी को लेकर भाँसी वापस चला जायगा। नयी दुल्हन घर आयी है। उसको कपड़े-लत्ते का शौक है। अभी कल ही

सास की अनुमति से, उसने फूलों के गजरे मँगाकर बाल गूँथे थे। उसको देखकर और उसको दिखाने के लिए सास, सुधा और अनुराधा के कपड़ों में भी काफ़ी परिवर्तन आ गया है। सुधा ने मामूली खदर के अतिरिक्त कभी और कुछ नहीं पहना। आज खास त्रिपुरा की हाथ की बनी हुई शुद्ध खादी सिल्क की साड़ी पहनी है। अनुराधा तो दिन में दो-दो बार कपड़े बदलने लगी है। शौक पूरा करने के लिए उसने सुनीता के कपड़ों के ट्रंक को बार बार खोलकर कपड़े ठीक करने का काम अपने ज़िम्मे ले लिया है। उमेश परसों अपनी नव-विवाहिता पत्नी के साथ भाँसी चला जायगा। उमेश की माँ और उसकी दोनों बहनें कई दिनों से प्रोग्राम बनाये बैठी हैं कि अबकी गर्मी की छुट्टियाँ भाँसी में ही गुज़ारेंगी। खूब रौनक रहेगी। सास सुनाता को घर की थोड़ी-बहुत देख-भाल सिखा देगी। सुनीता की वेप-भूषा में भड़कीलापन बिलकुल नहीं, तो भी सुधा उसे सादगी के गुण बता देगी और यह भी समझा देगी कि इस घर में लड़कियों का नंगे सिर घूमना-फिरना अच्छा नहीं समझा जाता। सुनीता दहेज में एक हारमोनियम भी लाया है। इस घर में फ़िल्मी गाने नहीं चलेंगे। अनुराधा ने अपनी ओर से उसे एक तान-पूरा भेंट करने की सोच ली है। वह इन छुट्टियों में सुनीता को तानपूरे पर शास्त्रीय संगीत के कुछ अलाप और तानें सिखा देगी। गर्मियों की छुट्टियों के बाद एक संगीत-मास्टर रखा जा सकता है। लेकिन माँ, सुधा, अनुराधा, तीनों के सुनीता को सुघड़ पत्नी बनाने के मनसूखे ताश के घर की तरह धराशयी हो गये हैं जब से उमेश ने इशारे-इशारे में ही स्पष्ट कर दिया है कि विवाह के पहले दो-एक वर्षों में उसे किसी भी हितैषी की सलाह की ज़रूरत नहीं। उसके विवाहित जीवन का महल तो उसके और सुनीता के अपने सपनों, आकांक्षाओं और आदर्शों पर खड़ा होना

है। उसकी नींव किसी और की सलाह या हस्ताक्षर को एक भी टेढ़ी ईंट सारे महल को डोँवाँडोल कर सकती है। उमेश का अपने माँ-बाप, भाई-बहनों से प्रेम तो बहुत है। लेकिन वह इस ठोस सत्य से भी मुँह नहीं मोड़ सकता कि इससे पहले उसके घर का कोई आदमी डिप्टी कमिश्नर नहीं बना। उसके घर वालों के विचार ऊँचे सही, अच्छे सही, लेकिन पुराने और सीमित हैं, आधुनिक और उदार नहीं। उमेश के घर वाले समझते हैं कि हो न हो इसमें सुनीता की शरारत है। या शायद उमेश ही नये उल्लास में अपनी समझ खो बैठा है।

कल भाँसी जाने की तैयारियाँ हैं। आज उमेश और सुनीता कनाट प्लेस में 'शॉपिंग' करने निकले हैं। उमेश ने अपने छोटे भाई सुबोध को भी साथ ले लिया है। यों तो सुबोध अक्सर उमेश के साथ रहता है, पर आज उसको संग लेने का एक और भी कारण है। नयी बीवी आयी है। उस पर आतंक जमाने की आवश्यकता है। सुनीता को आते ही इस बात का पता चल जाना चाहिए कि उमेश के घर में छोटों के लिए बड़ों का कहना मानना कितना स्वाभाविक है। उमेश अपनी पुरानी मोटर भाँसी से नहीं लाया। यहाँ चचा की नयी कार माँग ली है। उमेश और उसकी पत्नी मोटर में आगे बैठे हैं। छोटे भाई को पीछे की सीट पर स्थान मिला है। प्रभाव तो छोटी-छोटी बातों ही से पड़ा करता है। गर्मियों के दिन हैं, इसलिए उमेश ने 'विण्ड-स्क्रीन' को थोड़ा-सा खोल दिया है और मुस्कराकर सुनीता की ओर देखा है। मोटर 'बैक' करते हुए उमेश स्वयं सिर बाहर निकालकर पीछे की ओर देखा करता है, पर आज उसने अपने छोटे भाई से कहा है 'ज़रा देखना'। मोटर स्टार्ट करने से पहले उमेश जेब में से चार-पाँच पत्र निकाल, उन पर एक दृष्टि डालकर सुनीता के हाथ में दे देता है और

कहता है, 'ऊपर का खत सम्हालकर रख लो, बाक़ी को फाड़कर फेंक दो।' उमेश चाहता है कि सुनीता को अपने नये कर्तव्य और उत्तरदायित्व का जितनी जल्दी हो सके, ज्ञान हो जाये। यह उन कर्तव्यों की पहली किस्त है। धीरे-धीरे वह उसे सिखा देगा कि धोबी से वापस आये कपड़ों के बटन, कॉलर, पायँचे देखना डिप्टी कमिश्नर की बीवी का एक प्रमुख कर्तव्य है। और यह देखना भी कि रात को साहब के सोने से पहले नौकर 'बेडरूम' में पीने का पानी रख गया है कि नहीं। तसरे पहर उमेश साहब दो अंडों का आमलेट खाने के शौकीन हैं। सुनीता को ध्यान रखना होगा कि उसमें एक लाल मिर्च से ज़्यादा न पड़े और वह भी बहुत बारीक न कटी हो। ऐसी और भी कई छोटी-छोटी बातें हैं जिनकी देख-भाल सुनीता का करनी होगी। लेकिन उमेश यह भी अच्छी तरह समझता है कि रथ दो पहियों से ही चल सकता है। विवाहित जीवन को सुखमय बनाने के लिए उसके भी कुछ कर्तव्य हैं। जैसे रोज़ दफ़्तर जाने के लिए मोटर में बैठते वक्त पोर्च में खड़ी सुनीता को हाथ हिलाकर 'टा टा' करना। और रोज़ दफ़्तर से दो-एक बार सुनीता का टेलीफ़ोन करना—'खाना खा चुकीं?' 'आज दोपहर मेम साहब ने आराम फ़रमाया कि नहीं?' 'नीते, बहुत याद आ रही हो!' सुनीता को बालों में फूल लगाने का शौक है। घर पर माली और बगीचा होते हुए भी रोज़ शाम को दफ़्तर से लौटते वक्त खुद खास फूल लाना। और....और....। उमेश की धारणा कि विवाहित जीवन का सुख और शान्ति ज़िन्दगी की इन्हीं रोज़-रोज़ होने वाली छोटी-छोटी बातों पर निर्भर है। विवाहित जीवन एक अपूर्व आनन्द, एक सतत उल्लास है, उनके लिए जो एक-दूसरे को समझते हैं, एक-दूसरे को समझने का यत्न करते हैं। और उमेश सुनीता को समझता है, उसे

समझने का यत्न करता है

कनाट प्लेस के एक कोने में मोटर ठहरा दी गयी। उमेश और सुनीता उतरे नहीं। सुनीता अच्छे घरों के तौर-तरीके समझती है। वह इस प्रतीक्षा में है कि उसका पति उतरे तो वह भी नीचे आये। उमेश सोच रहा है कि सुबोध को उतरकर सुनीता के लिए दरवाज़ा खोलना चाहिए, इस से सुनीता प्रभावित होगी। सुबोध संकेत समझकर उतर आया है और उसने सुनीता के लिए दरवाज़ा खोल दिया है.....

दोनों भाइयों में बड़ा प्रेम है। उमेश हमेशा सुबोध को अपने साथ रखता है और उसे गाहे-बगाहे उपदेश दिया करता है। अभी एक सप्ताह पहले ही की बात है। उस समय तक सुनीता श्रीमती उमेश नहीं बनी थी। उमेश और सुबोध नहर को सैर का निकले थे और सारी सैर में उमेश विवाह के लाभों का ही बखान करता रहा था। सुबोध उमेश के दृष्टिकोण के इस आकस्मिक परिवर्तन से चकित नहीं हुआ। यह सच है कि उमेश आज तक विवाह के विरुद्ध रहा है। इसके सिवा चारा भी क्या था। कोई काम की लड़की मिलती तब तो। उसके दो चचा शादीशुदा हैं। दोनों ही अब अपनी अधाङ्गिनियों से तंग आकर वानप्रस्थी-से बन गये हैं और अवकाश का सारा समय क्लब में ब्रिज खेलने अथवा औरों की वीवियों का दिल बहलाने में गुज़ारते हैं। अभी तक तो उमेश ने विवाह के बारे में जब भी कोई बात की है, उसका यही सार रहा है कि यदि तुम्हें आराम और आज़ादी से प्यार है, यदि तुम्हें जीवन में सफलता प्राप्त करनी है तो विवाह से दूर ही रहो। पर यह तो सुनीता का देखने के लिए शिमला जाने से पहले की बातें हैं। अब उमेश का मत बदल गया है। उसका कहना है कि प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य को शादी करनी ही चाहिए। सुबोध उमेश से उम्र में

केवल दो ही वर्ष छोटा है। उसे अभी अपने सपनों की लड़की नहीं मिली। इसलिए वह अभी तक जोरदार शब्दों में कह सकता है कि विवाह तो अपने व्यक्तित्व से विश्वासघात है। पर उमेश अब इस बात का कायल हो गया है कि विवाह से जीवन में स्थिरता आ जाती है। विवाह तो अवश्यम्भावी है। और जब विवाह होना ही है तो जितनी जल्दी हो जाये उतना ही अच्छा। सुबोध की इस आपत्ति पर कि जिस-जिस ने विवाह किया, बाद में सिर धुनता ही नज़र आया, उमेश ने उत्तर दिया है, वे लोग अपनी पत्नियों को समझ नहीं सके। मनुष्य में खुद समझ हो तो विवाह शाप नहीं, वरदान है। सुबोध सोच रहा है कि आखिर उमेश भी औरों की तरह साधारण व्यक्ति है, पर अपने-आपको उनसे भिन्न समझता है। उमेश सोच रहा है, बाकी लोगों की शादियाँ असफल होती हैं, पर मैं उनसे बहुत भिन्न हूँ, उनसे कहीं ज्यादा समझदार। मेरा विवाह कामयाब होगा, निहायत कामयाब.....

पर आज कनाट प्लेस में उमेश और सुबोध साथ-साथ नहीं चल रहे हैं। एक तीसरे व्यक्ति का उनके जीवन में आगमन हुआ है। उमेश और सुनीता आगे-आगे हैं। सुबोध बैत की छड़ी घुमाता हुआ उनसे दो गज़ पीछे।

सड़क पार करते हुए मोटर की आवाज़ सुनकर सुनीता स्वयं ही एक ओर हटने लगी है, पर उमेश ने अनायास ही बड़ी कोमलता से सुनीता की कमर में हाथ डालकर उसे अपनी ओर खींच लिया है। सुनीता का सारा मुँह लाल हो उठा है और वह संकुचित होकर रह गयी है। सुबोध मुस्कराकर बायीं तरफ़ घड़ियों की दुकान की ओर देखने लगा है। उमेश स्वयं अचम्भे में है कि उसके जीवन में यह रूमान की नयी लहर कहाँ से दौड़ने लगी है। अब उसके मन में किसी

अबला को आश्रय देने की इच्छा प्रबल होने लगी है। हाथ बीवी के कन्धे पर ही जाता है। कल सुनीता अपनी सहेलियों से मिलने गयी थी। उमेश उसे छोड़ने गया था। उनकी मोटर को आते देखकर दोनों सहेलियाँ मोटर तक अपनी सखी का स्वागत करने आयी थीं। उमेश ने सुनीता को हाथ का सहारा देकर उसे मोटर से उतरने में सहायता दी थी और फिर कोमलता से उसके कन्धे पर हाथ रखकर उसे उसकी सहेलियों के सुपुर्द कर दिया था। सहेलियों के मुख पर मुस्कराहट की एक क्षीण-सी रेखा दौड़ गयी थी।

बलूजा की दुकान जूतों की प्रसिद्ध दुकान है। वे दुकान के पिछले भाग में, जहाँ स्त्रियों के जूते मिलते हैं, पहुँच गये। जूतों के इतने बड़े ढेर में से कोई जूता चुनना कठिन है। सभी कुछ ले लेने को जी चाहता है। सुनीता के मन को वह सफ़ेद चप्पल भा गयी है जिस पर हल्का-सा सुनहरी काम है। वह ललचायी हुई निगाहों से चप्पल को बार-बार देखती है, फिर शर्माकर उमेश की अनुमति पाने के लिए उसकी ओर आँख उठाती है, फिर नीचे जूते की ओर देखने लग जाती है।

ज्यों ही तीनों दुकान में प्रविष्ट होते हैं और दुकानदार जूते दिखाता है, उमेश कहता है, 'मुझे ज़नाने जूतों की क्या पहचान ! तुम जो अच्छा समझो, लो। पर भड़कीला न हो। तुम्हें अफ़सरों की सोसाइटी में घूमना है। वह चीज़ लो जो बढ़िया हो पर हो सादी।' अन्त में सुनीता साहस बटोरकर फूल वाली चप्पल को हाथ में लेकर कहती है, 'मुझे तो यही पसन्द है। आपका क्या खयाल है।' उमेश अपनी पत्नी की गति में एक लोच, एक मस्ती देखना चाहता है। वह सिर हिलाकर कहता है, 'नहीं, यह नहीं चलेगी। रंग-

वंग तो अच्छा है, पर इन बगैर एड़ी की चप्पलों से चाल खराब हो जाती है। कोई एड़ी वाली अच्छी सेन्डल छाँट लो’

उमेश और सुनीता कई और दुकानों पर भी घूमे हैं। नागपाल की दुकान से एक सुन्दर और कीमती धूप का चश्मा भी सुनीता को ले दिया गया है। सुनीता की आँख को तेज़ धूप से बचाने की बड़ी आवश्यकता है। उमेश को इसी बात का अचरज है कि आज तक सुनीता की आँखें ऐसा चश्मा न लगाने पर भी कैसे इतनी सुन्दर और सरस बनी रही हैं। उसे अपनी सास और ससुर पर बड़ा क्रोध आता है कि उन्हें अपने बच्चों की परवरिश का भी ठीक ध्यान नहीं। चलते-चलते उमेश ने सुनीता को किरपा राम की दुकान से एक ‘ड्रेसिंग गाऊन’ भी ले दिया है। कोई सुबह मिलने ही आ जाता है.....शॉपिंग करके मोटर की तरफ़ लौटते वक्त भी सुबोध, उमेश और सुनीता से दो गज़ पीछे चल रहा है। अब उसके हाथ में अपनी छड़ी के अलावा कई और बंडल भी हैं। तीनों ही अपनी-अपनी कर्तव्य-परायणता से खुश हैं।

उमेश उन लोगों को मुँह-तोड़ जवाब देना चाहता है ज़ां विवाह से पहले उसके बारे में तरह-तरह की बातें कहा करते थे।—‘हमारी लड़की छोड़ दी है। पैसे का भूखा है। छोटे घर का जो हुआ,’ ‘बड़े खानदान का क्या हुआ, ज़मीन पर पाँव ही नहीं रखता। डिप्टी कमिश्नर बना फिरता है। देखेंगे कौन-सी अप्सरा ले आता है।’ ‘देख लेंगे जब विवाह होगा। ऐसे कौवे गन्दी चीज़ पर ही गिरा करते हैं।’ इसीलिए उमेश ने एक बड़ी चाय-पार्टी का आयोजन किया है जिसमें उसने उन सब परिचित लोगों को भी आमंत्रित किया है जो उसके सुसर होने के अभिलाषी थे। सुनीता से मिलकर उन्हें खुद-ब-खुद

ही मालूम हो जायगा कि उनकी अपनी लड़की में क्या कमी थी ।

*

पर यह तो सब पाँच वर्ष पहले की बातें हैं । इनको दोहराने से क्या लाभ । इन पाँच वर्षों में उमेश की जीवन-कहानी भी अन्य लोगों की रामकहानी होकर रह गयी है । ज़िन्दगी की वह रोज़ होने वाली छोटी-छोटी बातें, जिनसे उमेश ने अपने प्यार में इन्द्रधनुष की रंगीनियाँ भरनी चाही थीं, जीवन की राह में कब और कहाँ भटक गयीं, उसे खुद मालूम नहीं । विवाह की पहली साल-गिरह पर तो उमेश ने छुट्टी ली थी, मित्रों को पार्टी दी थी, सुनीता को उपहार में सोने का हार दिया था । अगले वर्ष उमेश ने छुट्टी तो नहीं ली, पर हाँ, मित्रों को छोटी-सी चाय-पार्टी अवश्य दी । और अब, अब तो.....

*

क्लब में टेनिस का खेल खत्म होता है तो उमेश 'ब्रिज रूम' में चला जाता है । वह पाँच साल पहले वाली बातें कहाँ जब अधेरा होते ही उमेश घर को भागता था । कभी यार-दोस्तों में बात चलती । कोई कहता, 'आज उमेश दिखायी नहीं देता,' तो दूसरों के पास सदा एक ही उत्तर होता, 'अपनी बीवी के पास बैठा होगा और क्या ।'

अब तो उमेश को क्लब में ही दस बज जाते हैं । कमरा सिगरेट और सिगार के धुँएँ से भर जाता है । एक खामोशी-सी छायी रहती है । सभी ऐसे लगते हैं जैसे घर-बार त्यागकर समाधि लगाये बैठे हों । ब्रिज खेलने में बड़ी एकाग्रता चाहिए । खिलाड़ी या तो ताश के पत्तों पर आँखें गाड़े, रखते हैं या एक-दूसरे का मुँह ताका करते हैं या धीरे-धीरे

सिगरेट के कश लगाते हुए छत की ओर देखते रहते हैं। दस बजे के करीब ब्रिज रूम खाली होने लगता है। जब उमेश की टेबल से कोई उठकर चलने को तैयार होता है तो उमेश उसे एक क्षण के लिए टक-टकी बाँधकर देखता है। फिर कहता है, 'अभी जल्दी क्या है?' उठने वाला भी शायद बहाना ही ढूँढ़ रहा है। 'अब तो चलना चाहिए,' ऐसा कुछ बड़बड़ाता है। फिर कलाई पर लगी घड़ी की आंग देखता है, फिर उमेश की ओर। तब हल्के-से मुस्कराता है और 'अच्छा चलो, एक 'रबर' और सही,' कहते हुए बैठ जाता है। P. G. H 5844

पर कभी-कभी ब्रिज को मेज़ पर चार खिलाड़ी पूरे नहीं हाँ पाते। ऐसे समय उमेश मिसेज़ शर्मा से बातें करने का शौकीन है। यदि मिस्टर शर्मा कहीं इधर-उधर ही टँगे बैठे हों तो उमेश मिसेज़ शर्मा से ऐसी बातें पूछता है—'बच्चे तो अच्छे हैं न।' 'शर्मा साहब तो अब डी० आई० जी० होने वाले हैं।' ब्रिज के खूब खिलाड़ी हैं।' 'आपके भाई कलकत्ते से वापस आ गये या नहीं।' इत्यादि इत्यादि.... । और खुद ही बात-बात पर जोर से हँसता है। पर अगर मि० शर्मा कहीं नज़रो से ओझल हों तो उमेश गम्भीर हो जाया करता है और बात भी बंद धीमे से करता है। आहिस्ता से पूछता है—'उन कानों के बुन्दों पर शर्मा को सन्देह तो नहीं हुआ।' 'शर्मा तो दस दिन के लिए दरे पर जा रहे हैं, आप तो उनके साथ नहीं जा रही हैं न।' 'यह आपके ओठों की लाली कितनी भली मालूम देती है।' 'ईश्वर के लिए इन नाचती आँखों से मुस्कराया न कीजिए।' और कभी-कभी उमेश मिसेज़ शर्मा को क्लब की लाइब्रेरी में, जो प्रायः सूनी-सी रहती है, किताबें दिखाते जाया है, या उनके साथ टेनिस कोर्ट के एकान्त में खिलती हुई ठंडी चाँदनी में घूमा करता है।

अब वह दिन नहीं रहे जब अपने नाम का टेलीफोन सुनने के लिए उमेश ब्रिज का खेल बीच ही में छोड़ दिया करता था और पन्द्रह-पन्द्रह मिनट तक फोन पर सुनीता से बातें होती रहती थीं। अब नीचे से बैरा आकर कहता है, 'साहब, आपका टेलीफोन है?'

उमेश बिना ऊपर देखे ही कहता है, 'पूछो कौन है?'

'घर से है,' बैरा कहता है, 'ज़रूरी बात है। एक मिनट के लिए फोन पर बुलाया है।'

'उनसे कहो, पाँच-दस मिनट ठहरकर फोन करें। अभी 'रबर' खत्म होने वाला है।'

उमेश खेलने में व्यस्त रहता है। दस मिनट बाद बैरा फिर आता है, 'साहब आपको फोन पर बुलाया है।'

'पूछो क्या काम है?'

बैरा नीचे फोन पर पूछकर आता है, 'मेम साहब पूछती हैं कि आप अभी तक स्टेशन पर उनके भाई को गाड़ी से लिवाने गये हैं या नहीं? गाड़ी का समय हो चला।'

'उनसे कह दो अभी जाते हैं।'

आध घंटे बाद बैरा फिर आता है 'साहब घर से फोन.....'

उमेश जोर से चिल्लाता है, 'कमबख्त कहीं का?' और क्रोध से ताश के पत्ते मेज़ पर दे मारता है 'जहन्नुम है यह रोज़ की भूक-भूक!' वह मेज़ को परे धकेलता हुआ कहता है, 'ज़रा चैन नहीं। पता नहीं किस मनहूस ने मुझसे शादी करने को कहा था!'

पास बैठा हुआ राजेन्द्र सिंह व्यंग्य से कहता है, 'तो क्या खा जायगी तुम्हारी मिसेज़ तुम्हें? बैठो, रबर तो खत्म कर लें।'

'खायेगी क्या?' उमेश क्षीण-सी मुस्कराहट को ओठों पर लाने

का प्रयास करते हुए कहता है, 'जो ढोल गले पड़ गया, उसको तो अब बजाना ही पड़ेगा। आज बच्चा बीमार है, आज नौकर भाग गया है। आज बाज़ार में 'शॉपिंग' के लिए जाना है। जब देखो, अपना ही रोना। मुझको न वह समझ सकी है, न समझ सकेगी। मेरी परेशानी का ज़रा खयाल नहीं। वह तो अपने में मस्त है या अपने बच्चों में।'

पास बैठा हुआ उपेन्द्र बड़े ज़ोर से ठहाका लगाता है। उमेश जाते-जाते रुककर उसकी ओर हसरत भरी नज़रों से देखता है और यह कहता हुआ 'यदि यही ठहाका कायम रखना चाहते हो तो भूलकर भी शादी के जंजाल में न फँसना,' तेज़ी से बाहर निकल जाता है.....।

*

मिसेज़ पटेल ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "लेटी हुई हो, क्या कुछ तबीयत खराब है?"

सुनीता बोली, "ऐसे ही सिर कुछ भारी-भारी हो रहा है।"

मिसेज़ पटेल इधर-उधर देखकर कहने लगीं, "अभी उमेश साहब घर नहीं आये? नौ बजने को हुए। मैं तो समझी थी, केवल हमारे मि० पटेल को ही क्लब और ब्रिज नहीं छोड़ता।"

सुनीता ने मुस्कराने का प्रयास करते हुए कहा, "कभी पुरुष भी एक-दूसरे से भिन्न हुए हैं। सब एक ही साँचे के ढले हैं। इनकी ओर से हम चूल्हे में जायें। इनका तो बस क्लब और ताश सलामत चाहिए।"

"बस तब तो वह दूसरे मि० पटेल हो गये।"

*** पति-पत्नी

“घर का कुछ ध्यान नहीं। बच्चों की परवाह नहीं। दफ्तर से सीधे क्लब का भागतें हैं। लाख कहूँ कि बच्चों के कपड़े लाने हैं, सन्तोष के विवाह के लिए उपहार खरीदना है, ज़रा बाज़ार हो आर्यें। पर साहब को फ़ुर्सत ही नहीं है। घर आर्येंगे तो चुप, न किसी से बात, न किसी से हँसी-खेल। बच्चा बोले या रंगे तो डाँट-पटकार। सारा दिन घर पर रहती हूँ। सब की देख-भाल करती हूँ, फिर भी आप हैं कि सन्तुष्ट नहीं। इससे तो मैं भी यदि चार बजे ही क्लब में जाकर बैठ जाती और ब्रिज खेलती, बच्चे आया को सौंपे रखती, तो शायद हमारे उमेश साहब खुश हो जाते।”

मिसेज़ पटेल ने उत्तर दिया, “फिर भी वही ढाक के तीन पात रहते। और शायद घर में लड़ाई-भगड़ा इससे भी अधिक बढ़ जाता। ये पुरुष तो अजीब मिट्टी के बने होते हैं। ये स्वयं दूसरी स्त्रियों से धुल-मिलकर बातें करने को तो सभ्यता और आधुनिकता कहते हैं, पर अपनी पत्नी को क्लब में किसी दूसरे से हँसते देख लें तो ईर्ष्या से जल-भुन जाते हैं। मैंने ही रोज़ क्लब में जा-जाकर कौन-सा अपना जीवन सफल बना लिया है। हमारे पटेल साहब तो हर समय म्यान में तलवार बाहर निकाले रखते हैं।”

दोनों ने खोखली-सी हँसी हँसने का प्रयास किया.....

मिसेज़ पटेल उठकर चली गयीं तां बेडरूम के दरवाज़े के बाहर से बैरे ने कहा, “मेम साहब, खाना मेज़ पर लगा दूँ?”

सुनीता ने अपनी कलाई पर लगी सुनहरी घड़ी की तरफ़ देखा। यह उमेश का पहला उपहार था। इन पाँच वर्षों में यह घड़ी की सुइयाँ न मालूम कितनी बार, ऐसे बेकार ही अपने धुरे के गिर्द घूम चुकी हैं, सुनीता के मन में एक उड़ता-सा खयाल गुज़रा। नौ बज रहे थे। वह

बोली, “अभी नहीं । जब साहब आयेंगे तो साथ ही खाना लगाना ।”

सुनीता अपने पलंग से सटे छोटे पलंग पर सोयी ‘बेबी’ को देखने लगी । बेबी के चेहरे पर एक मन्द मुस्कान छिटक आयी थी । शायद कोई मीठा सपना देख रही थी । सुनीता का बरबस जी चाहा कि उसे अपनी गोद में उठाकर भीचे । अब उसके जीवन में केवल ‘बेबी’ और ‘बौबी’ की ही रंगीनी थी । उमेश की रंगीनी तो धुल-धुलकर एक मटियाला-सा रंग मात्र रह गयी थी । सुनीता ने बेबी के छल्लेदार बालों को प्यार से थपथपाया । वह सिहर उठी । उसने ज़रा झुककर बेबी के माथे को हल्के-से चूम लिया और एक दीर्घ निःवास छोड़कर अपने पलंग पर लेट गयी । सामने बच्चों के कमरे के दरवाज़े से लगा, रात का धारोदार कुर्ता-पाजामा पहने रुआँसा ‘बौबी’ खड़ा था ।

“बौबी, तू अभी तक सोया नहीं ?” सुनीता ने कुहनी पर ज़रा उठते हुए आश्चर्य से पूछा ।

‘बौबी’ भागकर सुनीता के पास आ गया और पलंग पर उसके शरीर से चिमट गया ।

“बौबी, बात क्या है,” सुनीता ने स्नेह से उसके शरीर को अपने बाजू के घेरे में लेते हुए कहा ।

‘बौबी’ सिसकने लगा, “मम्मी मुझे उस कमरे में अकेले डर लगता है ।.....पापा अभी तक क्यों नहीं आये ? वह हमें प्यार नहीं करते ?”

“करते क्यों नहीं,” सुनीता ने ‘बौबी’ को अपने शरीर से भींचते हुए कहा, “पर उन्हें काम बहुत रहता है, इसलिए जल्दी घर नहीं आ सकते ।”

“तो मम्मी, फिर पापा तुमसे इतना भगड़ा क्यों करते हैं ?” बौबी ने बड़े भोलेपन से पूछा, “कल चॉकलेट माँगने पर मुझे भी डाँटा था ।”

और सुनीता के चेहरे की तरफ़ उठी हुई बौबी की भीगी-भीगी आँखें सुनीता की आँखों के सामने झिलमिलाने लगीं ।

सुनीता का गला सूख रहा था । वह सूखे गले को ही घूँट बनाकर पी गयी जिससे उसके आते-आते आँसू थम गये ।

“बेटा, पति-पत्नी में ऐसी बातें हुआ ही करती हैं,” सुनीता ने ‘बौबी’ को और जोर से भींचते और उसकी भीगी पलकों को चूमते हुए कहा, “पर....पर भला, तुझे उन्होंने क्यों डाँटा ?”

और दो बड़े-बड़े आँसू सुनीता के गालों पर छुदक आये ।



दिल ही तो है....

यह तुम्हारी सौन्दर्य की खोज आत्म-प्रवंचना है । यह तुम्हारी व्यर्थ की दौड़-धूप, तुम्हारी पराजय का प्रतिबिम्ब ।

मैं कॉफ़ी हाउस के एक कोने में बैठा हुआ बूँद-बूँद करके ज़हर को पीता हूँ और सोचता हूँ कि दफ़्तर का सारा काम छोड़कर आज फिर कॉफ़ी हाउस क्यों चला आया हूँ ?

यह कॉफ़ी बुखार की दवा की तरह कड़वी और बदमज़ा है । मेरे दिमाग़ में खुशकी-सी फैलने लगी है, लेकिन मैं बराबर पिये जा रहा हूँ, यह जानते हुए भी कि इससे नींद हराम हो जायगी ।

अकेला बैठता हूँ ? नहीं, बिलकुल अकेला नहीं, राव है, गोपाल है, कभी-कभी वेंकट भी आ बैठता है और तब मैं बूँद-बूँद नहीं, घँट-घूँट कॉफ़ी पीने लगता हूँ, कड़वी, बदमज़ा, खुशक कॉफ़ी !

और मैं राव से पूछता हूँ, “राव, तुम शादी क्यों नहीं करते ?” राव एक बैंक में नौकर है । अच्छी तनखाह पाता है । बत्तीस-तैंतीस साल

का है। कुंवारा है।

“राव, यह न कहो कि तुम्हें बीवी नहीं मिलती। तुम चाहो तो कल ही ब्याह रचा लो। लेकिन तुम उन लोगों में से हो जो नारी की कल्पना से तो प्रेम करते हैं, किन्तु नारी के अस्तित्व से भयभीत रहते हैं। तुम बीवी नहीं, अपने आपको ढूँढ़ रहे हो। तुम उसे कभी न ढूँढ़ पाओगे। तुम्हारी शादी कभी न होगी.....वह देखो, एक और लड़की कॉफ़ी हाउस में दाखिल हो रही है। दरवाज़े पर रुक गयी है। गोपाल गहरी नज़रों से उसके शरीर के आकर्षक उतार-चढ़ाव देख रहा है, और लड़की यह देख रही है कि जिसको वह ढूँढ़ने आयी है, वह कॉफ़ी हाउस में है या नहीं।

“गोपाल, उधर मत देखो। दोस्त, इससे कोई फ़ायदा नहीं। अगर किसी भरे हुए शरीर वाली लड़की से मुहब्बत करनी है तो तुम्हें ऐसी बहुत-सी लड़कियाँ मिल जायँगी। ऊर्मि से मिले हो? उसके शरीर का निखार देखा है? हाँ, तुम कुछ दिन तो उसके प्रेम में फँसे रहे थे, लेकिन मुझे मालूम था तुम लौट आओगे। ऊर्मि का तुम्हें तीन-चार मुलाकातों तक ही नशा रहा, बहुत काफ़ी है। शरीर के आकर्षक उतार-चढ़ाव के बावजूद ऊर्मि तुम्हें जँची नहीं। जँचेगी भी नहीं। उसमें कुछ कमी है। मिलने के बाद तुम्हें हर लड़की में कुछ-न-कुछ कमी दिखायी देने लगती हैं। उन कमियों को बताओगे? क्या करोगे बताकर? तुम घूम-फिरकर इसी मेज़ पर आ जाओगे और घूँट-घूँट करके कड़वी कॉफ़ी पियोगे और कहोगे, ‘कोई खूबसूरत लड़की नहीं मिलती?’ तुम लड़की की रंगीन कल्पना को उसके भौतिक अस्तित्व में खोजते हो। इसका फल निराशा के अतिरिक्त और क्या होगा?

“राव, यह बात-बात में अपने विचारों का विश्लेषण करने की

आदत तुम्हारे लिए बहुत बुरी है। तुम हर समय अपने आप से पूछते रहते हो कि ऐसा क्यों हुआ। तुम अपनी पराजय का कारण यौन लुधा में ढूँढ़ते हो। तुम्हारा खयाल है कि अगर तुम्हारी ज़िन्दगी में कुछ ऐसी लड़कियाँ आयी होतीं, जिन्होंने अपना शरीर तुम्हें सौंप दिया होता तो तुम्हारी मनोदशा सुधर गयी होती और तुम इतने परेशान न घूमते। लेकिन तुम यह इसलिए कहते हो, क्योंकि तुमने अभी तक किसी लड़की के शरीर को छुआ तक नहीं। तुम समझते हो कि तुम बीमार हो और तुम्हारी बीमारी का एकमात्र इलाज स्त्री का संग है। लेकिन मेरी बात मानो। तुम्हारा यह खयाल ग़लत है। सिर हिला रहे हो तुम ? यही कहना चाहते हो न कि मैं ग़लती पर हूँ। यही कहना चाहते हो न कि अगर तुम किसी औरत के पास से भी होकर गुज़र जाओ तो तुम्हारे शरीर में एक सुखद सनसनी और तुम्हारे दिल में एक मीठी हलचल पैदा हो जाती है। क्या फिर कुन्दा से कॉफ़ी हाउस में होने वाली भेंट की बात सुनाने लगे हाँ ? वेंकट, राव फिर पुरानी कहानी ले बैठा है। अच्छा, सुना लेने दो। बीमार की दवा तो हमारे पास नहीं है, लेकिन यह घटना सुना देने से इसके दिल को थोड़ी-सी सान्त्वना ज़रूर मिल जाती है।

“राव, तुमने कहानी अभी शुरू भी नहीं की और तुम्हारा मुँह लाल होने लगा है। तुम्हें आदमी किसने बनाया है ? तुम तो कच्ची मिट्टी के घड़े हो जो पानी के परस से बिखर जाता है, तूफ़ान का सामना क्या करेगा ? सुनाओ, सुनाओ ! हम सुन रहे हैं।”

हाँ, तो हम सभी मेज़ के गिर्द बैठे कॉफ़ी पी रहे थे। वही बातें हो रही थीं, जो रोज़ हुआ करती हैं। वेंकट (जिसका चेहरा उसके बालों से भी काला है) कह रहा था, ‘यार, कोई आर्ट सर्कल बनायें। कोई

दिव्य ही तो है....

म्यूजिक सांसाइटी कायम करें। मैं अपने आपको पब्लिसिटी इंचार्ज की हैसियत से पेश करता हूँ। लेकिन पब्लिसिटी के इन कारनामों को कॉलेज की लड़कियों तक कौन पहुँचायेगा? गोपाल, तुम यह काम करोगे? गोपाल भला क्यों करने लगा? उसे क्या पड़ी है कि दूसरों की दोस्ती के लिए लड़कियाँ जुटाता फिरे? खुद उसकी बहुत-सी दोस्त हैं। बम्बई में पहले-पहल उसकी दोस्ती एक मरहठी लड़की से हुई थी। वह बी० ए० में पढ़ती थी। पहली मुलाकात में गोपाल ने उसके चेहरे की तारीफ़ की। उससे कहा, 'तुम्हारी शबल मुझे लाहौर की एक लड़की की याद दिलाती है जो हर इतवार को मेरे घर आकर मेरी किताबों को बड़े करीने से मेज़ पर सजा दिया करती थी। मैं एक पत्र का सम्पादक हूँ।' दूसरी मुलाकात में गोपाल ने उस लड़की के शरीर की प्रशंसा की और कहा, 'मैं बम्बई में अकेला हूँ, बिलकुल अकेला। अपने अकेलेपन को मिटाने के लिए मैं शराब पीने लगा हूँ।' और यह कहकर अपने चेहरे पर एक बड़ी विवशता का भाव लाकर सिगरेट सुलगाने लगा। लड़की उसके झुके हुए चेहरे को देखती रही। गोपाल सिगरेट का कश लगाता हुआ कुर्सी में आराम से बैठ गया। छत की तरफ़ देखता हुआ धुँएँ के छल्ले बनाने लगा। और उसका बायाँ हाथ लड़की के हाथ को ढूँढ़कर उसे धीरे-धीरे सहलाने लगा। तीसरी मुलाकात में गोपाल उस लड़की को अपने घर ले गया और कहने लगा, 'तुम्हें देखकर मुझे कुछ हो जाता है। तेरे मन में खलबली-सी मच जाती है। मैं और भी बहुत-सी लड़कियों से मिला हूँ, लेकिन ऐसा प्रभाव पहले कभी भी मुझ पर नहीं हुआ। तुम पास होती हो तो मैं अपने आपको भूलने लगता हूँ।' और यह कहकर गोपाल ने लड़की के उस सतीत्व को छीन लिया जिसे वह इतने दिनों से अन्तुण रखे हुए थी, जिस पर उसके माता-पिता

को गर्व था और जिसके कारण समाज उसे भले घर की बेटी समझता था। लड़की ने कहा, 'तुम जंगली हो, जानवर हो, कमीने हो !' और लड़कर चली गयी। लेकिन दस-पन्द्रह दिन बाद खुद ही गोपाल से टेलीफोन पर कहने लगी, 'क्यों, नाराज़ हो क्या ? बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई। कब मिलोगे ?' और तब आहिस्ता-आहिस्ता गोपाल ने उस लड़की के माध्यम से उसकी कई सहेलियों से दोस्ती कर ली। और अब वेंकट आर्ट सर्कल बनाने की सोच रहा है और गोपाल से मदद लेना चाहता है। गोपाल अपने सौभाग्य में किसी को साझेदार क्यों बनाये ? उसका जवाब ठीक हो तो था, 'होश की दवा करो, दोस्त ! तुम्हारे तो बीबी है, बच्चे हैं।'।

....इससे क्या होता है। बच्चे होना सौभाग्य की निशानी थोड़े ही है। यह तो शादी का अनिवार्य फल है। और जिस स्त्री से विवाह हो, उससे प्रेम हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। और प्रेम तो सन्तोष का दूसरा नाम है। उसका सार यही है कि मुझे मेरी चीज़ मिल गयी है, मैं इसी में रम जाना चाहता हूँ, मस्त हो जाना चाहता हूँ, मेरे लिए इसके आगे और कुछ नहीं। किन्तु वेंकट कैसे सन्तोष करे। एक वेंकट ही क्यों, कोई भी कैसे सन्तोष करे। वास्तव में मानव के व्यक्तित्व के प्रकाशन का आधार ही काल्पनिक है। मैं जिस धुन में मस्त हूँ, मेरी प्रसन्नता के लिए मुझे उस समय उस धुन का, उस मानसिक या हार्दिक स्थिति का प्रतिबिम्ब मिलना चाहिए। आदमों की मनोदशा दिन के पलटते पहरों की तरह है, जिसमें विभिन्न राग चाहिएँ। एक सूरत तो प्रेम के पहले उफ़ान में एक ही ज़रूरत पूरी कर सकती है और एक ही मनोदशा को सन्तुष्ट। वह बहुत-सी मनोदशाओं को सन्तुष्ट किया करती थी—किन्तु उस समय दुल्हन एक स्त्री तो नहीं हंती,

*** दिल हो तो है....

पृथ्वी और आकाश की समस्त स्त्रियों का योग होती है। एक वातावरण होती है जो आदमी के रोम-रोम पर छा जाता है। लेकिन जो एक स्त्री है वह कब तक समस्त स्त्रियों का योग बनी रह सकती है ! बहुत से लोगों को यह बात शादी के कुछ ही महीनों बाद मालूम हो जाती है, कुछ को कई वर्ष बाद। और तब वे लोग, जो जीवन के दूसरे भंभटों में उलझकर नहीं रह गये, फिर दूसरी स्त्रियों की तलाश शुरू कर देते हैं—दूसरी धुनों के बिम्ब की ! वेंकट, तुम्हारे दाँत नकली हैं, लेकिन तुम्हारा जवाब बड़ा उपयुक्त था। हाँ, तुमने कहा था, बीबी है, बच्चे हैं और...हसरतें हैं।

....वह देखो, कौन आयी हैं। बातें बन्द करो भई, ज़रा देख लेने दो। दरवाज़े में दो लड़कियाँ खड़ी हैं। उनकी निगाहें इधर-उधर कुछ दूँद रही हैं। वे मुस्कराने लगीं। एक मेज़ खाली दिखायी दी है। साँवली को नहीं, दूसरी को देखो। सिर का एक हल्का-सा झटका, आँठों पर मादक मुस्कान, बाजू के सहारे छाती सेलगी किताबों पर ज़रा-सा दबाव, हाथ में थमे हुए बैग की हल्की-सी जुम्बिश, और वह खाली मेज़ की ओर बढ़ी है, अपनी साँवली सहेली के साथ।

“राव, तुम्हारे आँठों में दबा सिगरेट काँपने लगा है; राव, तुम्हारे हाथ काँपने लगे हैं। यह देखा दियासलाई बुझी जा रही है। हाथ को मज़बूत रखो, नहीं तो सिगरेट नहीं सुलगेगा। तुम्हारी तो आवाज़ भी काँप रही है। ज़रा ऊँचा बोला दाँस्त। इन लड़कियों में से एक को जानते हो ? किसको ? वह जिसकी दाँतों चोटियाँ कन्धों पर से हाँती हुई उन बाहों को चूम रही हैं, जिन्होंने किताबों को थाम रखा है; उसको जिसकी आँखों में एक अजीब-सी चमक है, जैसे किसी ने दर्पण में से सूर्य का प्रतिबिम्ब डाल दिया हो; उसको जिसके गालों में मुस्कराते

समय दो छोटे-छोटे खूबसूरत गढ़े पड़ जाते हैं ? बड़े खुशकिस्मत हो, कमबख्त ! कुन्दा ? क्या प्यारा नाम है ! मतलब क्या है इसका ? एक सफ़ेद फूल जो पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर उगता है । देखो वह तुम्हारी ओर देख रही है । मुस्कराओ, गंधे कहीं के, मुस्कराओ । अञ्छा रहने दो, वह तुम्हारी ओर नहीं देख रही थी । उसकी निगाहें दूर खड़े हुए बैरे को अपनी ओर आकृष्ट करने में लगी थीं । जाओ उससे मिल लो । बातों-बातों में उसे कल या परसों अपने साथ कॉफ़ी पीने की दावत दे आना । नहीं, भगवान कसम हम में से कोई उस समय तुम्हारी बातों में खलल नहीं डालेगा । हाँ एक बात, हम जब किसी खाली मंज़ की तलाश करते हुए वहाँ से गुज़रें, तो हमें देखकर मुस्करा देना, जैसे तुमने हमें पहचान लिया हो । उस समय हम कनखियों से कुन्दा को देख रहे होंगे । वह भी तुम्हारी निगाह का पाँछा करती हुई एक उचटती-सी निगाह हम पर डालेगी । हमें मालूम है कि जिस समय वह हमें देखेगी हमारी निगाहें उस पर से हटकर शून्य में खो जायँगी । लेकिन उसे यह तो मालूम हो जायगा कि हम तुम्हारे दोस्त हैं । गोपाल, तुम आंठों-ही-आंठों में मुस्कराने लगे । दोस्त, तुम हमें मूर्ख समझते हो न । पर तुम्हें मालूम है, कुन्दा के हमें एक निगाह देख लेने से क्या होगा ? हमें महसूस होने लगेगा कि हम उसके तनिक और समीप आ गये हैं । अब हम कॉफ़ी हाउस में आने वाली आम भीड़ के अंग नहीं रहे, बल्कि किसी अदृश्य शक्ति से खिचकर एक ऐसे विशिष्ट मंडल के विशेष सदस्य बन गये हैं जिसके एक कार्यकर्ता का कुन्दा से परिचय है । और इस तरह कुन्दा को करीब से न जानते हुए भी उसमें और हममें एक अपनापन-सा पैदा हो जायगा ।

“राव, तुम कुन्दा के पास जाने लगे हो ? आज तो बड़ी हिम्मत

दिव ही तो है....

दिखा रहे हो दोस्त । अच्छा जाओ, जाओ । बेंकट, यह राव क्या आज कुछ पीकर आया है कि इतनी दिलेरी दिखा रहा है ? बेंकट, राव अब परले कोने में क्या भाँक रहा है ? जानता है कि उस कोने में उसका कोई परिचित नहीं, फिर भी भाँक रहा है । शायद कुछ तो अपने आपको धोखा देना चाहता है और कुछ बाकी लोगों को, कि वह वाकई किसी की तलाश में है । खुदा-खुदा करके अब उस मेज़ की तरफ़ चला तो है, जहाँ वह दोनों लड़कियाँ बैठी हैं । भई वाह, वहाँ तो वह रुका ही नहीं, हवा में मुँह उठाये, शून्य में आँखें गड़ाये दरवाज़े पर जा पहुँचा है । अब भाँक-भाँककर बाहर देख रहा है । शायद किसी की प्रतीक्षा का अभिनय कर रहा है । कभी-कभी कनखियों से कुन्दा की ओर भी देख लेता है कि कहीं वह तो उसकी ओर नहीं देख रही । बार-बार कलाई पर बँधी घड़ी की तरफ़ देखता है और सिर हिलाता है मानो कह रहा हो कि अब आने वाला नहीं आयेगा । अब तक राव ने अपने दिल को तसल्ली दे ली है कि अब वह बिना हिचकिचाये कुन्दा से बातचीत कर सकता है । उसकी मेज़ के पास से होकर गुज़रते हुए वह यकायक ठहर जायगा और हैरानी के साथ कहेगा, हलो, आज तुम कॉफ़ी हाउस में कहाँ ? तब वह अपनी घड़ी देखेगा और बड़-बड़ायेगा, 'कहता था, डेढ़ बजे आऊँगा, पौने दो होने को आये, कम्बख्त अभी तक नहीं आया ।' आखिर....आखिर वह कुन्दा के पास पहुँच ही गया है । कुन्दा मुस्कराया है । उसकी सहेली ने भी प्रश्नात्मक दृष्टि से उसकी ओर देखा है । और राव के मुँह से बात भी नहीं निकली, उसका मुँह लाल हो उठा है । उसने अपने दोनों हाथ मेज़ पर टेक दिये हैं और थोड़ा-सा आगे को झुक गया है । उसके एक हाथ में सिगरेट है । सिगरेट का धुआँ काँपता हुआ हवा में उठ रहा है । ज़रूर उसका सारा

शरीर काँप रहा होगा। वह कभी एक पाँव के पंजे पर ज़ोर डालकर खड़ा होता है, कभी दूसरे पंजे पर। उसने जेब से रुमाल निकाला है और हथेली को पोंछने लगा है। ज़रूर उसे पसीना आ रहा होगा। आखिर हौसला करके काँपती हुई आवाज़ में उसने पूछ ही लिया है, 'तुम्हारे पिता बम्बई ही में हैं क्या?' 'हाँ,' कुन्दा ने जवाब दिया। 'बहुत दिनों से उनसे भेंट नहीं हुई,' राव कह रहा है, 'शायद इस इतवार को उनसे मिलने आऊँगा।' कुन्दा मुस्कराया है। उसके कपोलों के आकर्षक गढ़े और गहरे हो गये हैं। वह कह रही है, 'मैं पिता जी से कह दूँगी।' बस और कुछ नहीं। राव और कुछ नहीं बोला। उससे और कुछ बोला ही नहीं गया। उसने कुन्दा को अगले दिन या उससे अगले दिन अपने साथ कॉफ़ी पीने को भी नहीं कहा। उसने ठीक तरह से उसकी ओर देखा ही नहीं। उसका बदन काँपता रहा। उसके दिल की धड़कन तेज़ होती रही। उसकी आवाज़ लरज़ती रही। वह वापस आ गया। अब उसके माथे पर पसीना है। उसका चेहरा लाल है। उसके ओठ सूखे हैं और उन पर एक फीकी-सी मुस्कराहट है। उसका जिस्म गर्म है।"

"भई, इस सारे किस्स का मतलब क्या है? आखिर तुम साबित क्या करना चाहते हो? कोल्हू के बैल की तरह एक ही केन्द्र पर उसी ज़मीन को घिसे जा रहे हो।"

"मैं कुछ नहीं साबित करना चाहता। हम सब यहाँ बैठे हैं। हम सब एक ही लड़की को कॉफ़ी हाउस के अन्दर आते देखते हैं। किन्तु इसी सत्य के आधार पर हमारे दृष्टिकोण अलग-अलग हो जाते हैं। इसीलिए मुझे कॉफ़ी हाउस पसन्द है। इसमें न सिर्फ़ खूबसूरत लड़कियाँ ही आती हैं, बल्कि यहाँ बैठे हुए लोगों के दिल व दिमाग़ पर उनका

*** दिन ही तो है....

क्या प्रभाव पड़ता है, इसका विश्लेषण करने का भी मौका मिलता है।
 वेंकट, गोपाल, राव, मैं—हम सब केवल एक-एक व्यक्ति ही नहीं, हम
 में से हर एक एक नमूना है जो समाज के किसी वर्ग विशेष के दृष्टि-
 कोण का प्रतिनिधित्व करता है। वेंकट व्यापारी है। पन्द्रह वर्ष हुए
 वह तीस रुपये महीने पर एक दफ्तर में टाइपिस्ट था। आज वह अपना
 मालिक आप है। बम्बई में विज्ञापन की एक मशहूर कम्पनी उसके
 हाथ में है। महीने में दस हजार की आमदनी उसके लिए मामूली
 बात है। तीस रुपये मासिक से दस हजार रुपये प्रति मास और पन्द्रह
 वर्ष की अवधि। तीस से पचास हुए होंगे, पचास से सौ, सौ से हजार,
 पग-पग पर वेंकट ने सोचा होगा कि और ज़्यादा पैसे बनाने का कौन-
 सा तरीका है। उसकी जो कल्पना-शक्ति थी, जो भावुकता थी, उनको
 उसने अपने पर काबू नहीं पाने दिया, बल्कि उनको अपना दास बना-
 कर रखा। वह जीवन की भौतिक वास्तविकताओं में रम गया है।
 उसके लिए गायकों के राग, कवियों की कविता, चित्रकारों की कला
 खन्ती लांगों के ढीले दिमागों का नतीजा हैं, जो स्वयं तो कोई खूबसूरत
 चीज़ नहीं, सिर्फ़ उस जैसे ठोस आदमियों का बेकार समय में जी
 बहलाने के साधन हैं। वेंकट किसी चीज़ को देखते ही जान लेता है
 कि उसका उसके अपने जीवन में क्या महत्व है। वह अपने दिमाग पर
 किसी प्रकार की अलौकिक रंगोनी का आवरण नहीं पड़ने देता।
 उसने नारी के अस्तित्व का भी तत्व निकाल लिया है। उसके लिए
 नारी एक आकर्षक मांस पिंड है जिसके शरीर के उतार-चढ़ाव से,
 जिसके व्यक्तित्व की विशेष अभिव्यक्ति से, दिल में एक दिलचस्प
 सनसनी पैदा होती है। उस आकर्षक मांस-पिंड का छूने को जी चाहता
 है। यह स्पर्श मनुष्य के शरीर में एक तूफ़ान और दिमाग में एक

हलचल पैदा कर देता है—एक तूफान जिससे आँखें चमकने लगती हैं, नथुने फूलने लगते हैं, शरीर से चिनगारियाँ छूटने लगती हैं; एक हलचल, जिसमें दुनिया की सुध-बुध खो जाती है, जिसमें इन्द्रधनुष की रंगिनी, बिजलियों की कड़क, भूचालों के भटके सब कुछ एक साथ गडमड हो जाते हैं। और फिर आदमी उस मांस-पिंड को बाहों में भींचता है और अपना बनाता है। और फिर उस औरत को, उस आकर्षक मांस-पिंड की, नवीनता खत्म हो जाती है, और वह वास्तविकता का पुजारी फिर अपने असली और ठोस कामों में व्यस्त हो जाता है। वेंकट के लिए नारी के सौन्दर्य की परिभाषा भी वही है जो कवियों के काव्य की, यानी बेकार समय में जी बहलाने का एक साधन !

“क्यों वेंकट, ठीक है न ? तुम्हारे लिए नारी सौन्दर्य को परखने की कसौटी उस तक पहुँचने की सम्भावना है। जिसको नहीं पाया जा सकता, नहीं खरीदा जा सकता (मेरा मतलब जरूरी तौर पर पैसों से नहीं) वही अधिक सुन्दर है। किन्तु उसे पाने की निरर्थक इच्छा में तुम अपना समय बर्बाद करने वाले नहीं। वह गोपाल जैसे सौन्दर्योपासकों के लिए समय और दिमाग बर्बाद करने का साधन है—तुम तो ‘नौ नगद न तेरह उधार’ पर विश्वास रखते हो। जो मिल गयी, जैसी मिल गयी, जहाँ मिल गयी। अगर आसानी से मिल गया तो वही भली।

“गोपाल, तुम मुस्कराना न छोड़ोगे ! तुमने भी कभी आत्म-विश्लेषण का प्रयत्न किया है ? तुम अपने आपको दूसरों से बहुत भिन्न समझते हो, लाखों में एक ! सर्व साधारण से बहुत ऊँचे, बहुत परे। अगर मेरो मुस्कराहट भी उतनी ही अर्थ-पूर्ण हो सकती जितनी तुम्हारी (यद्यपि अधिक पाइप पीने से तुम्हारे दाँत पीले पड़ गये हैं।) तो मैं तुम्हारे

दिल ही तो है....

भोलेपन पर ज़रूर मुस्करा देता कि अन्य सबों को ठीक समझने वाले तुम अपने आपको ठीक नहीं समझ सके। तुम लाखों में एक नहीं हो, लाखों जैसे एक हो। तुम भी समाज के एक वर्ग विशेष के वैसे ही प्रतिनिधि हो जैसे वेंकट। तुम्हारे भाग्य में भटकना लिखा है, तुम मानसिक शान्ति से हमेशा उतनी ही दूर रहोगे जितनी कि अब हो। तुम कभी ब्राज़ील जाने की बात सांचते हो, कभी न्यूज़ीलैण्ड। लेकिन अगर तुम साइबेरिया भी चले जाओ तो वहाँ पहुँचकर तुम उससे भी आगे जाना चाहोगे। तुम कल्पना को साकार देखना चाहते हो। लेकिन यह नहीं हो सकता। यथार्थ और कल्पना दो अलग चीज़ें हैं। यदि तुम कल्पना को साकार करने लगोगे तो तुम्हें निराशा होगी, क्योंकि कल्पना साकार होकर यथार्थ की भाँति ही नीरस हो जायगी। तुम आकाश छूने के मनगूबे बाँधते हो, किन्तु यह नहीं समझते कि यदि तुम उड़कर आकाश तक पहुँच भी गये तो आकाश, हवा और पानी के सिवा और कुछ नहीं होगा और उस आसमान के परे तुम्हें एक और आसमान दिखायी देगा। आखिर मरीचिका के सहारे शाद्वल की खोज में कब तक रेगिस्तानों में भटकते रहोगे।

“या तो वेंकट की भाँति कल्पना को यथार्थ की दासी बना लो और समझ लो कि यथार्थ कल्पना को अन्तिम अमली मंज़िल है या फिर यह जान लो कि यथार्थ कल्पना की पहली सीढ़ी है और उसकी आखिरी सीढ़ी पहुँच से बहुत परे है। लेकिन खैर छोड़ो। तुम तो सौन्दर्य को पकड़ लेना चाहते हो। गोरी बाहों पर सिर रखकर सोना चाहते हो। नर्म लम्बे वालों से खेलना चाहते हो। भावातिरेक में काँपती हुई ठोड़ी को हाथों में लेकर चूमना चाहते हो। लम्बी काली पलकों की छाया में नाचती आँखों में भाँकना चाहते हो। भरे-भरे

रसीले ओठों से अपने प्यासे ओठ पैवस्त करना चाहते हो। यह सब सम्भव है, और तुम यह सब-कुछ करते हो, लेकिन यह करते ही तुम उस लड़की से दूर होने लगते हो। तुम्हारा मन कहता है कि इन गोरी बाहों से भी अधिक गोरी बाहें हो सकती हैं, इन वालों से भी अधिक नर्म और लम्बे बाल हो सकते हैं; इन आँखों से भी अधिक नाचती आँखें, इन ओठों से भी अधिक रसीले ओठ ! और तब तुम उस नयी युवती की तलाश में खो जाते हो। और जब वह मिल जाय तो तुम्हें फिर महसूस होने लगता है। कि इससे आगे, इससे भी सुन्दर एक और युवती है और तुम अपनी इस सान्त्वना की खोज को कुछ आशापूर्ण बनाने के लिए शराब का सहारा लेने लगे हो। तुम्हारी दोपहर कॉफ़ी हाउस में कटती है, लेकिन शाम को तुम्हारा बसेरा मैखाने में होता है। मेरा मतलब साफ़ी और जाम वाले मैखाने से नहीं, बल्कि 'दिनशा दिनशा एण्ड कम्पनी' के शराबखाने से है, जहाँ न साफ़ी है, न जाम, सिर्फ़ तुम्हारे इशारों पर नाचने वाला बैरा है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को उस समय परखता है जब तुम 'हाइट हार्स' व्हिस्की या हैनेसी ब्रान्डी पीकर उसको इनाम देने लगते हो। पीकर कुछ निराशा कम होती है, कुछ शान्ति मिलती है, कुछ आशा बढ़ती है कि अब जो लड़की मिलेगी वह सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति होगी। और दिल को ढाढ़स बँधती है कि अब तुम्हारे सन्तोष की खोज की आखिरी मंज़िल करीब है।—पर दोस्त, इतनी लड़कियों के साथ रमने के बावजूद तुम अभी तक सौन्दर्य की खोज में संलग्न हो ? तुम्हारा इलाज 'दिनशा दिनशा एण्ड कम्पनी' का मदिरालय ही है या वहाँ से भूमते निकलने के बाद किसी बाज़ार का चौवारा।

“रुक जाओ, रुक जाओ, अपने इस मनोविश्लेषण को ज़रा दम

६३
 ** दिख ही तो है....

लेने दो। राव की परिचित सुन्दर लड़की ने सिर और हाथ का बड़ी अदा से एक साथ झटककर बालों की एक चोटी को पीठ पर डाल लिया है। अब वह अपनी सहेली से कुछ कह रही है। शायद पूछ रही है, 'खाने को कुछ और तो नहीं चाहिए।' अब वह बायें हाथ से बैरे को बिल लाने का इशारा कर रही है। क्यों वेंकट, अगर तुम्हें कुन्दा की सहेली मिल जाय (जरा साँवली ज़रूर है) तो कैसी रहे ?

“गोपाल, तुम अपनी अर्थ-पूर्ण मुस्कान (तुम्हारे दाँत पीले ही सही) के अदृश्य दूत उस सुन्दर लड़की की ओर न भेजो, जिसके गालों में बात करते समय छोटे-छोटे आकर्षक गढ़े पड़ जाते हैं। जानते नहीं, राव अभी उससे बातें करके आया है। राव उसके बाप को जानता है।

“राव, क्या कहने हैं तुम्हारी दिलेरी के ! तुम सब खूबसूरत लड़कियों के बापों को जानते हो ! तुम उन लोगों में हो जो समस्या की उपेक्षा में उसका समाधान ढूँढ़ते हैं। तुम हमेशा यही कहते रहोगे कि मैं रमा के बाप को जानता हूँ, मैं कृष्णा के भाई को पहचानता हूँ, कमला के चचा से मेरा परिचय है, किन्तु मैं रमा और कृष्णा और कमला के साथ 'नमस्ते, नमस्ते' से आगे कभी नहीं बढ़ा। राव, तुम कभी आगे बढ़ोगे भी नहीं। तुमने कल्पना और यथार्थ के बीच एक बड़ी ऊँची दीवार बना रखी है। तुम कई बार कल्पना के पंख लगाकर दीवार के उस ओर भाँकते हो, जिधर यथार्थ है, और खाई की गहराई देखकर तुम्हारा दिल काँप उठता है। तुम भाँकने तक से डरते हो, कूदोगे खाक ? तुम नारी का भौतिक अस्तित्व मानने में हिचकिचाते हो। तुम्हारे लिए स्त्री डर की चीज़ है। तुम आत्म-विश्वास खो बैठे हो। तुम हमेशा अपने से यही सवाल पूछते रहते हो, 'क्या मुझे कोई स्त्री पसन्द कर सकती है ? मैं यदि किसी स्त्री से मज़ाक करूँ तो वह मुझे दुत्कार तो नहीं देगी ? अगर भूले से किसी

को मुझसे प्रेम हो भी गया तो मेरा कोई मित्र उसको मुझसे छीनकर तो नहीं ले जायगा ?' तुम मन-ही-मन लड़कियों से मिलने के इरादे बाँधते रहते हो, उनको वश में करने के उपाय सोचते रहते हो । उनको आकर्षित करने के लिए तुम अपने बात करने के ढंग का, अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति को नित नया अन्दाज़ देने के तरीके सोचते रहते हो । किन्तु समय आने पर हिम्मत हार जाते हो कि—कहीं ऐसा न हो जाय ! कहीं ऐसा न हो जाय—तुम नितान्त अभागे हो क्योंकि तुम्हारे इस डर ने तुम्हें ज़िन्दगी की थोड़ी-सी खुशी प्राप्त करने से भी वंचित रखा है । वेंकट को देखो । उसके यथार्थवादी दृष्टिकोण से तुम्हें मतभेद सही, किन्तु जीवन को सुखप्रद बनाने का उसने एक खास ढंग तो अपना रखा है । वह स्त्री को एक भौतिक वस्तु समझता है, ठोस भौतिक पदार्थ । कवियों ने, दार्शनिकों ने, साहित्यिकों ने स्त्री के चारों ओर जो रंगीन, अभौतिक और आकर्षक मंडल-सा बना रखा है, वेंकट के लिए उसका कोई महत्व नहीं । वह जब ऐसी रूमानी बातें सुनता है तो चुपके से मुस्करा देता है और सोचता है कि यह स्त्री, जिसका इतना गुणगान हो रहा है, अगर मेरी बाहों में न आयी तो किसी और पुरुष की बाहों की शोभा होगी । वह शून्य में नहीं विचरेगी और न कवियों का सारा कवित्व उस दूसरे पुरुष को उस स्त्री का वही फायदा उठाने से रोक सकेगा, जो मैं उन स्त्रियों से उठाता हूँ, जो मुझे मिलती हैं । इसी प्रकार यद्यपि गोपाल के जीवन में काफ़ी कटुता, काफ़ी निराशा और काफ़ी अभाव है तो भी वह अपने हाल में मस्त है । यह ठीक है कि उसने जो मार्ग अपना रखा है उसका फल कटुता और निराशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं, फिर भी उसका मार्ग स्पष्ट तो है । और जब वह उन मील-शिलाओं को देखता है, जिनकी

दिल ही तो है....

सहायता से वह उस रास्ते पर आगे बढ़ता है, तो कुछ समय के लिए उसका जीवन बड़ा सुखद हो उठता है। उसमें फिर भरे-भरे ओठ, आकर्षक मुस्कानें, बिखरे केश और चमकीली आँखें घूमने लगती हैं। किन्तु उसकी पराजय उसकी विजय ही में निहित है, क्योंकि वह हर मील के पत्थर को मंज़िल समझने लगता है और जब उस पत्थर पर पहुँचता है तो यकायक महसूस करता है कि मंज़िल अभी और आगे है। लेकिन राव, तुम्हारी यात्रा का न कोई आरम्भ है, न अन्त, तुम यात्रा शुरू ही नहीं करते, इसलिए तुम अपनी जय और पराजय दोनों से अपरिचित हो। तुम आदमी नहीं, शतरुर्ग हां जां रेत में सिर छिपाकर दुनियाँ की रंगीनियों और मुसीबतों दोनों ही से बेनयाज़ हो जाता है—”

“पर भले आदमी, तुम कौन से तीसमारखाँ हो ? तुमने कौन से किले फ़तह किये हैं। आती-जाती लड़कियों को तुम भी ऐसे देखते हो जैसे मजदूर के बाद इश्क तुम्हारी ही बपौती हो गया है।”

“प्रेम तो मैं भी करता हूँ, लेकिन न वेंकट जैसा, न गोपाल जैसा। राव की भाँति कायर भी नहीं हूँ। मेरे लिए स्त्री न तो मांस-पिंड मात्र है, न मुझे यही भ्रम है कि अब जो स्त्री मुझे मिलेगी वह सौन्दर्य की पराकाष्ठा होगी। मैं तो स्त्री को स्त्री भी समझता हूँ और एक सुन्दर वस्तु भी। स्त्री को स्त्री समझकर मैंने कई बार उससे सम्बन्ध बढ़ाया है, किन्तु मैंने इस विचार का अपने आप पर कभी अधिकार नहीं पाने दिया कि मैंने उस स्त्री को पाकर सौन्दर्य की प्रतिमा को पा लिया है। काफ़ी असें पहले मैं भी गोपाल की भाँति हर सुन्दर स्त्री के पीछे लपका करता था, किन्तु जब मैंने देखा कि उस सुन्दर वस्तु को पाकर भी सौन्दर्य-प्राप्ति का प्रलोभन बना रहता है तो मैंने जान लिया कि किसी वस्तु का सौन्दर्य उसको न पाने ही में है। मैंने अपनी

निराशा को कभी मदिरा के प्याले में नहीं डुबोया। मैंने अपने दिल से कहा कि सौन्दर्य की खोज तो क्षितिज-अन्वेषण सरीखी है। उसका आरम्भ मुझसे है और उसका अन्त कोई नहीं। और इसलिए अब जब मैं स्त्री के सौन्दर्य की प्रशंसा करता हूँ तो इसलिए नहीं कि मैं उसे पा सकूँ, बल्कि इसलिए कि इस प्रशंसा से मुझे खुशी मिलती है, मेरी सौन्दर्य की खोज को प्रेरणा मिलती है, मुझे प्रकृति की कला की प्रशंसा का अवसर मिलता है। मैं समझता हूँ कि स्त्री प्रकृति का सुन्दरतम कृतित्व है और उससे भी बढ़कर प्रकृति का कृतित्व है पुरुष, जो इस सौन्दर्य को सराह सकता है। समस्त सृष्टि सुन्दर है। समुद्र-तट से टकराती प्रेम-विभोर लहरों की बेताबी, सोते हुए मकानों पर छिटकी हुई चाँदनी की मदहोशी, सूनी रातों में पवन का पत्तों से प्रेमालाप, बरसात में काली घटाओं से विद्युत की आँख-मिचौनी—कितना सौन्दर्य है इनमें! स्त्री का सौन्दर्य सृष्टि की इस सौन्दर्य-शृंखला की एक कड़ी ही तो है। स्त्री का सौन्दर्य कितना चंचल और निराला है। उसका रंग क्षण-क्षण बदलता रहता है। इसीलिए इस सौन्दर्य की कोई थाह नहीं, कोई किनारा नहीं, कोई अन्त नहीं। मैं तो अब स्त्री से प्रेम नहीं करता। उसके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति से प्रेम करता हूँ।”

“इसीलिए खांसे-खांसे रहते हो शायद?”

“हाँ मेरा जीवन एक न टूटने वाला नशा है। हमेशा सौन्दर्य की खोज में रत रहता हूँ। इसीलिए चाहूँ, न चाहूँ, राह चलती हर लड़की को देखने के लिए मेरी निगाह बरबस ऊपर उठ जाती है। अगर उसकी पीठ मेरी ओर है तो दिल-ही-दिल में उसके बाल बनाने के ढंग की अटकल लगाता हूँ। जूड़ा बना रखा है उसने? पंजाबी ढंग से? गुजराती ढंग से? कितनी खूबसूरती है गुजराती लड़कियों के बाल

दिल ही तो है....

बनाने के अन्दाज़ में। अजन्ता के चित्र याद आ जाते हैं। वे बालों को कसकर जूड़े में नहीं लपेट लेतीं, जैसे बालों से दुश्मनी हो। वे बालों को भी शरीर का एक सजीव अंग समझती हैं। और इस प्यार से जूड़े की शक्ल में गूँथती हैं कि बाल और जूड़े दोनों में जान डाल देती हैं। सौन्दर्य-प्रदर्शन का कितना बोध है उनको। बालों को गर्दन के पीछे कुछ ढीला-ढीला छोड़ देती हैं और जहाँ गर्दन और कंधे मिलते हैं वहाँ बालों को कुछ इस सफ़ाई से जूड़े की शक्ल में समेटती हैं जैसे कोई साँप कुंडली मारे बैठा हो। और जब बात करते समय उनका सिर दायें-बायें या आगे-पीछे हिलता है तो गर्दन की पीठ पर का जूड़ा इधर-उधर सरकता है और खुद बातें करता-सा मालूम होता है। या फिर कोई ऐसी लड़की नज़र आ जाती है जिसने बालों की दाँ चोटियाँ कर रखी हैं। कितने लम्बे बाल हैं उसके। दोनों चोटियों के सिरे कूल्हों को छू रहे हैं। ढीला-ढीला गूँथा है बालों का, और सिरों के पास तो उन्हें स्वतन्त्र ही छोड़ दिया है। पर यह उपद्रवी सिरे उसे चिढ़ाने के लिए कुन्तलाकार-से हो गये हैं। या फिर अगर कोई तरुणी सामने से आ रही हो तो उसकी मस्तानी चाल को देखता हूँ, उसके माथे पर भटक आयी परेशान लट को देखता हूँ जिसे वह अपनी उँगलियों के कोमल स्पर्श से वापस जाने का संकेत करती है, लेकिन वह नटखट लट उसी तेज़ी से फिर माथे पर लपक आता है। आँखों की उल्लास-भरी चमक को देखता हूँ, ओठों पर खिलती मुस्कान का देखता हूँ, साड़ी की कलापूर्ण लपेट से उभरती हुई शरीर की आकर्षक रेखाओं को देखता हूँ। और फिर...”

“हाँ, हाँ और फिर....”

“....और फिर कभी-कभी किसी को बुला लेता हूँ।”

“किसी सौन्दर्य की देवी का ? किसी सौन्दर्य की प्रतिमा को ?”

“नहीं। सौन्दर्य का स्वप्न-जाल मेरे दिमाग से बाहर कोई हस्ती नहीं रखता। यथार्थ सुन्दर नहीं है। उस पर सौन्दर्य का आवरण मैं चढ़ाता हूँ। सौन्दर्य की प्रतिमा मेरी कल्पना के निकुंजों से बाहर पाँव रखते ही समाप्त हो जाती है। मैं नारी को सुन्दर इसलिए कहता हूँ कि वह मेरी सौन्दर्य-पिपासा को और बढ़ाती है। किन्तु कोई भी स्त्री मेरे सपनों का साकार रूप नहीं है। क्योंकि किसी एक स्त्री का सौन्दर्य पूर्ण नहीं है।”

“तो फिर किसको बुलाते हो ?”

“किसी को भी। जो सौन्दर्य मेरी कल्पना में है उसकी झलक, केवल झलक, मुझे किसी लड़की में मिल जाती है। मैं उस झलक को विस्तार देता हूँ, बूँद को समुद्र बना लेता हूँ और उसके ध्यान में खो जाता हूँ। कुछ समय के लिए उसकी और त्रुटियाँ मेरी निगाहों से ओझल हो जाती हैं। दिल में एक बारगी तूफान-सा उठता है, उस लड़की से मिलने की इच्छा पैदा हो जाती है। साहस करता हूँ और उस लड़की को बुला लेता हूँ।”

“अब समझे। पिछले सप्ताह जिस लड़की को कॉफ़ी हाउस में लिये बैठे थे, वह भी सौन्दर्य की एक झलक थी।”

“हाँ, उस लड़की से मुलाकात की भी एक कहानी है। मैं पार साल अगस्त के महीने में पूना से बम्बई आ रहा था। गाड़ी में भीड़ बहुत थी। सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में भी जगह मुश्किल से मिली। एक कोने में दुबककर बैठना पड़ा। उस कोने में बाथरूम था। बाथरूम का दरवाज़ा अच्छी तरह बन्द नहीं होता था। हल्की-हल्की बदबू से दिमाग परेशान था। सोचा कि उस डिब्बे के निकल भागूँ। उठने

दिल ही तो है....

ही लगा था कि दूसरे कोने में बैठी हुई एक लड़की पर नज़र पड़ी । वह किताब पढ़ने में व्यस्त था । उसका सिर किताब पर झुका हुआ था । उसके केश खिड़की से छुनकर आती धूप में सुनहरी लग रहे थे । उसने बालों की दो मोटी चोटियाँ कर रखी थीं जो उसके दोनों कंधों पर से होती हुई उसकी गोद में जाकर एक हो गयी थीं । मेरा हृदय उसके बालों के सौन्दर्य से ओत-प्रोत हो गया । मैं अपने कोने की गन्दगी भूल गया । लड़की की ओर देखता रहा और उसकी केश-राशि के सौन्दर्य में खोया रहा—बालों पर सूर्य-रश्मि के स्पर्श से जो आकर्षण पैदा हो गया था उसके लिए उपमाएँ ढूँढ़ता रहा ।

“कुछ देर बाद लड़की के पास बैठे हुए आदमी ने (जो शायद उसका बाप था) उससे कुछ कहा । लड़की ने किताब पर से नज़र उठायी, चारों ओर देखा, बालों की चोटियों पर हाथ फेरकर उन्हें हल्के-से दबाया, मुस्करायी और फिर सिर झुकाकर पढ़ने में व्यस्त हो गयी । मुझे उसकी मुस्कराहट बहुत भली लगी । अब जब मैं उस घटना पर विचार करता हूँ तो मुझे मालूम होता है कि उस लड़की के चेहरे में कोई ऐसी बात नहीं थी जिसे असाधारण कहा जा सके या जो विशेष रूप से आकर्षक हो । किन्तु मैं उसके सौन्दर्य का अन्दाज़ा उसके बालों के सौन्दर्य से कर रहा था जो वास्तव में सुन्दर थे और इसीलिए मुझे उस समय उसका सब-कुछ बड़ा सुन्दर लगा । मैं इस प्रतीक्षा में बैठा रहा कि वह कब सिर उठाये और मुस्कराये.....

“कुछ समय के बाद मैं उस लड़की को भूल गया, केवल उसके बालों के सौन्दर्य की स्मृति दिल के कोने में घर बनाकर रह गयी ।

“लगभग एक वर्ष बाद, गत सप्ताह मैंने उसी लड़की को कॉफ़ी हाउस में बैठे देखा । वह एक लड़के के साथ बैठी कॉफ़ी पी रही

थी। राव, उस दिन कॉफ़ी हाउस में न तुम थे न वेंकट। सिर्फ़ गोपाल एक कोने में बैठा पाइप पी रहा था और कॉफ़ी हाउस में आती हुई लड़कियों को देख रहा था। मैं भी गोपाल के पास बैठ गया। कॉफ़ी पीते-पीते मैंने कई बार उस लड़की की ओर देखा। उस लड़की की नज़रें भी दो-तीन बार मुझ पर पड़ीं। थोड़ी देर बाद वह और उसका साथी उठकर चले गये और मैं गोपाल से बातें करने लगा।

“जब मैं कॉफ़ी हाउस से बाहर निकला तो देखा कि वही लड़की सामने बस स्टैंड पर खड़ी बस की प्रतीक्षा कर रही है। यकायक मैंने सोचा कि वह न जाने कब तक खड़ी बस की प्रतीक्षा करती रहेगी, क्यों न उसे अपनी मोटर में बिठाकर उसके गन्तव्य स्थान तक पहुँचा आऊँ।

“बस स्टैंड पर पहुँचकर मैंने मोटर रोक दी और उसका दरवाज़ा खोलते हुए लड़की से कहा, ‘आपको कहाँ जाना है?’ उसने जगह का नाम बता दिया। मैं भी उधर ही जा रहा था। न जा रहा हाता तो भी ज़रूर कह देता कि उधर ही जा रहा हूँ। वह धन्यवाद देती हुई मेरे बगल की सीट पर बैठ गयी और इस साहस के लिए क्षमा-याचना करती हुई बोली, ‘आज-कल बस के लिए घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती है और मुझे जल्दी घर पहुँचना है।’ मैंने बात चलाने के लिए कहा, ‘मैं आपसे एक बार पहले भी मिल चुका हूँ।’ और वह बोली, ‘मुझे भी कुछ-कुछ याद पड़ता है।’ मैंने कहा, ‘मैं याद दिलाये देता हूँ।’ पार साल अगस्त की बात है, पूना से बम्बई आते हुए रेलगाड़ी में। वह कहने लगी, ‘ठीक है। उस डिब्बे में कुछ चीनी लोग भी बैठे हुए थे और बहुत शोर-गुल था।’ और मैंने कहा, ‘आप एक कोने में बैठी हुई किताब पढ़ रही थीं, और आप ने अपने बालों की दो चोटियाँ

*** दिला ही तो है....

कर रखी थीं और आपके बालों पर धूप चमक रही थी, जिससे आपके बाल सुनहरे लग रहे थे। मैं उन बालों का सौन्दर्य देख रहा था। आप पढ़ने में मग्न थीं और मैं सोच रहा था कि आपके बाल धूप में सुनहरे लगते हैं तो आपकी मुस्कराहट भी जरूर सूर्य की नर्म धूप की भाँति सुगंध होगी।' वह लड़की मुस्करायी और सामने सड़क की ओर देखते हुए कहने लगी, 'याद नहीं पड़ता मैं उस समय कौन-सी पुस्तक पढ़ रही थी, अँग्रेज़ी की थी या गुजराती की।' मैंने कहा, 'पिछले साल आपको देखने के बाद मैंने एक कहानी में आपका उल्लेख किया था। वह कहानी बहुत पसन्द की गयी। यह सब आप ही के कारण था। मुझे आपका कृतज्ञ होना चाहिए।' लड़की के आँठों पर एक हल्की-सी मुस्कान खेलती रही, लेकिन उसका चेहरा लाल हो उठा। उसका गन्तव्य स्थान पास आ रहा था। मैंने कहा, 'आपका आपत्ति न हो तो कल कॉफ़ी हाउस में मेरे साथ कॉफ़ी पीजिए।' और उसने उत्तर दिया, 'मैं वादा तो नहीं करती, क्योंकि आम तौर पर हम चार-पाँच सहेलियाँ कॉलेज की छुट्टी के बाद इकट्ठी ही कहीं चाय पीने बैठ जाती हैं और मैं उनको छोड़कर नहीं आ सकती। लेकिन मैं काशिश जरूर करूँगी।'

“अगले दिन मुझे वह कॉफ़ी हाउस में मिली। वह बात तुम सब को मालूम है। जब वेंकट और राव मेरे पास बैठने लगे थे तो मैंने कहा था, 'आज मैं अकेला बैठना चाहता हूँ, मुझे किसी का इन्तज़ार है।' राव, तुम काँपने लगे थे और तुमने अपने-आपको सग़्हालने के लिए एक सिगरेट सुलगा लिया था। और वेंकट तुम मेरी पीठ पर हाथ मारकर बोले थे, 'हमें भी याद रखना।'

“नियत समय के पाँच मिनट बाद वह लड़की कॉफ़ी हाउस में आयी। दरवाज़े पर रुककर अपनी गर्दन बढ़ाकर किमी को ढूँढ़ने लगी। उसकी

नजर मुझ पर पड़ी और उसके पतले ओठ एक हल्की मुस्कान में थोड़े-से खुल गये। मैंने बैरे से कॉफ़ी लाने को कहा। वह कहने लगी, 'माफ़ कीजिएगा मुझे थोड़ी देर हो गयी।' फिर वह अपने पतले ओठों से मुस्करायी। मैंने उस लड़की से पूछा, 'आपका नाम क्या है?' वह बोली, 'पद्मा।' मैंने कहा, 'बड़ा प्यारा नाम है। पद्म कमल को कहते हैं। तुम कमल हो।' उसने मुस्कराकर जवाब दिया, 'पद्म कमल को कहते हैं, लेकिन मेरा नाम 'पद्मा' है और पद्मा लक्ष्मी को कहते हैं। मुझे अपना नाम विलकुल पसन्द नहीं। काश मेरा नाम उर्मिला या ऊषा या मृदुला होता।' और मैंने कहा, 'अपना नाम किसी को अच्छा नहीं लगता, लेकिन पद्मा असल में बड़ा प्यारा नाम है।' वह चुप रही और अपने बायें हाथ के नाखूनों को देखने लगी। मैंने कहा, 'पद्मा मैंने तुम्हारे बालों से प्रभावित होकर कुछ लिखा था। सुनोगी?' वह बोली, 'मैं बम्बई में पली हूँ। मेरी भाषा हिन्दी नहीं है। फिर भी मैं समझने की कोशिश करूँगी।' और मैंने पढ़ना शुरू किया। जब मैं कहानी में लड़की के बालों की तारीफ़ कर रहा था तो मैंने देखा कि पद्मा अपने सिर पर हाथ फेर रही है। उसने अपने बालों की दोनों चोटियों को, जो उसकी पीठ पर लटक रही थीं, प्यार से पकड़कर आगे कर लिया है और अब वे उसके कन्धों पर से होती हुई उसकी गोद में खेल रही हैं और वह उन्हें प्यार से थपथपा रही है, और अब उसने एक चोटी के सिरे को हाथों में लेकर उसे खोल डाला है और उसे अनजाने में फिर गूँथने लगी है। और मैंने कहा, 'क्या किसी और ने कभी तुम्हारे बालों की तारीफ़ नहीं की?' और उसने चोटी के सिरे को प्यार से गूँथते हुए कहा, 'मालूम नहीं।'।

“जब वह चली गयी तो वेंकट ने पीछे से आकर मेरे कंधे पर हाथ मारा और कहा, “आज तो चिड़िया को फाँस लिया।” वेंकट, बुरा न

*** दिख ही तो है....

मानना । उस समय मैं पूरी कोशिश करके भी तुम्हारे प्रति अपनी आँखों में उमड़ती धृणा को न छिपा सका था । मुझे ऐसा लगा था कि जैसे किसी ने पूजा के फूलों पर थूक दिया हो । तुम चुपके से खिसक गये थे ।”

“पर तुम्हारी पद्मा कई बार कॉफ़ी हाउस में आती है । उस दिन के बाद तो तुम्हें उससे मिलते नहीं देखा ।”

“मैं फिर उससे मिला भी नहीं । मैं गोपाल होता (गोपाल, तुम्हारे दाँत बहुत पीले हैं । दोस्त तम्बाकू पीना कम कर दो) तो पद्मा से अगले दिन मिलता और फिर उससे अगले दिन, जब तक कि उसके सौन्दर्य से ऊबकर उससे उदासीन न हो जाता । लेकिन मुझे पद्मा की नहीं, उसके बालों के सौन्दर्य की चाह है और वह मैं दूर से देख लेता हूँ ।”

“पास से तो शायद और अच्छी तरह देख पाओ ।”

“नहीं उसके बालों में तो जो है सो है, उनका असली सौन्दर्य मेरी कल्पना में है । और कल्पना दूरी में है । निकटता में यथार्थ है और यथार्थ में निराशा ।”

“अजीब आदमी हो ।”

“हाँ बहुत अजीब.....!”



विदुषी

दिन थे जब कॉलेज के अन्य युवकों की तरह मोहन की दुनिया भी रुमानी सपनों की रंगीन दुनिया थी। वह कल्पना में कई बार उस लड़की की मूर्ति को साकार करता जिसे एक दिन उसकी पत्नी बनने का श्रेय प्राप्त होना था। कल्पना में वह सुन्दरता की प्रतिमा जान पड़ती। झरने के पानी की तरह निर्मल, संगीत की लय की तरह मादक, पूर्णिमा की चाँदनी की तरह स्वच्छ। लेकिन कल्पना की वह रंगीनी देर तक कायम न रही। कॉलेज के जीवन के साथ ही सुन्दर रुमानी सपनों की दुनिया भी खत्म हो गयी। ज़िन्दगी की दौड़-धूप शुरू हुई। जनाब दो बार आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में बैठे। बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर गये थे। हर बार परीक्षा फल ने सब उम्मीदों पर पानी फेर दिया। अपने मस्तिष्क पर जो गर्व और अभिमान था, सब हवा हो गया। अन्त में पेट पालने के लिए एक मामूली दफ़्तर की क्लर्क कर ली। वह नौकरी भी मुश्किल से मिली।

अपने भाग्य को सराहा कि कम-से-कम बेकार तो नहीं रह गये। लेकिन अब लड़कियों की कल्पना में न वह संगीत की लय का माधुर्य रहा, न पूर्णिमा की चाँदनी का सौन्दर्य। मोहन को स्पष्ट होने लगा कि आधे-पेट साहित्यिक और कलात्मक रचनाएँ तो की जा सकती हैं, लेकिन आधे दिन की फ़ाकामस्ती से जाँचे-हरे की रंगत उड़ने लगती है उसको नहीं बचाया जा सकता। कल्पना सुन्दर सही, उदार सही, पर वास्तविकता कठोर और निर्मम है। वह समझती है केवल ठोस चीज़ों को। मोहन का दृष्टिकोण इतना बदल गया कि उठते-बैठते अब यही खयाल रहने लगा कि अगर किसी अमीर आदमी की लड़की को गाँठ लें तो इस क्लर्क की दलदल से मुक्ति मिले। लड़की चाहे अल्हड़ हो या भेंगी, काम चल जायगा। रुपयों की थैली मिल गयी तो लड़की की मानसिक ग़ि़क़त और उसके शरीर का वेदंगापन इतना नहीं खलेगा। और ज़ग़ साँचा जाय तो पत्नी आखिर बच्चे जनने के लिए ही तो है न? इस काम में एक अल्हड़, अपढ़ पत्नी भी उतनी ही सफल हो सकती है—शायद ज़्यादा ही सफल हो—जितनी कि एक रुमान की देवी।

कहते हैं कि जब ईश्वर देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। उसे मोहन को आई० सी० एम० बनाना था, वह आई० सी० एस० बन गया। तीसरी बार जब वह प्रतियोगिता में बैठा तो उसकी तैयारी की कमी, उसकी लापरवाही और उसकी बेदिली भी उसे असफल न कर सकी। समाचार-पत्रों में उसकी सफलता की खबर छपी। उसका फ़ोटो भी निकला। इस खबर और फ़ोटो ने सोये हुए अमीरों को जगा दिया। वे अपनी लड़कियों, बहनों, मालियों के ग़ि़स्ते के लिए सिफ़ारिशें ले-लेकर मोहन के पास आने लगे।

यह सब चमत्कार एक ही रात में हो गया। कल तक वह एक माधारण क्लर्क था। किसी मामूली अफसर को भी मिलने जाता तो बाहर दरवाजे पर दां-दां घंटे प्रतीक्षा करनी पड़ती। और आज बड़ी ऊंची-ऊंची पदवी वाले और अच्छे खाते-पीते लोग उसके घर मिन्नतें करने चले आ रहे हैं। कहते हैं, देखो हमारी कान्ता बी० ए० तक पढ़ी है, सुन्दर है, घर के काम-काज में निपुण है। हम दहेज़ भी अच्छा देंगे। और यह हमारी सुषमा है, बहुत अच्छा गाती है, सौन्दर्य की मूर्ति है, लेकिन फिर भी सादा और सुशील। और ऐसे ही सुधा और कमला और सरोज की तारीफें होतीं। मोहन दिल में सोचता, यह अजीब बात है—क्या मैं अब कोई दूसरा आदमी हो गया हूँ या कि हमारे हिन्दुस्तान में केवल पैसे और नौकरी से ही शादी की जाती है। हम हिन्दुस्तानी तो पैसे को हाथ का मैल समझते हैं। क्या यह सब केवल बातें ही हैं, उनका और महत्व कोई नहीं? कल तक मैं एक क्लर्क था। मालूम होता है कि मुझमें न शराफ़त थी, न काबलियत, न कोई और गुण। किसी को मैंने यह कहते नहीं सुना कि क्या हुआ अगर मोहन गरीब है, कम-से-कम है तो भलामानस और सदाचारी। आओ उससे अपनी कान्ता, कमला या कृष्णा की शादी कर दें। अगर उसे क्लर्की पसन्द नहीं तो उसे अपने पैसे से कोई कारोबार करा देंगे। वह अपनी काबलियत और दयानतदारी से उसे सफल बना लेगा। लेकिन किसी ने ऐसा नहीं किया। किसी को ऐसा करने का शायद खयाल भी नहीं आया। और आज अखबार में मेरा नाम छपा है, मेरा फ़ोटो निकला है और यद्यपि मैंने अभी तक क्लर्की की नौकरी नहीं छोड़ी, एकाएक सब लोग समझने लगे हैं कि मोहन जैसा शरीफ़ और योग्य व्यक्ति मिलना मुश्किल है। शायद अफसरों में ही काबलियत और शराफ़त है।

अगर ऐसा ही है तो यों ही सही। मोहन को महसूस होने लगा कि मैं सचमुच ही बहुत बड़ा हो गया हूँ, बहुत शरीफ़ और बहुत योग्य ! अब मैं अमीर-से-अमीर आदमी से उसकी खूबसूरत-से-खूबसूरत लड़की का रिश्ता माँग सकता हूँ। लेकिन....लेकिन मैं अकेली खूबसूरती को लेकर क्या करूँगा ? मुझे केवल खिलौना तो नहीं चाहिए, और न केवल प्यार करने के लिए खूबसूरत जिस्म। मुझे तो अब एक ऐसे जीवन-साथी की ज़रूरत है जो मेरी पथ-संगिनी होकर मेरे साथ सोसाइटी में घूम सके—उस सोसाइटी में जहाँ मुझे अब अपनी क्रीमती ज़िन्दगी बसर करनी है। अब तो मुझे एक ऐसी पत्नी चाहिए जो शरीर से भी सुन्दर हो और जिसके दिमाग़ पर भी मैं नाज़ कर सकूँ। वह जिधर से गुज़र जाय, सैकड़ों उठती निगाहों का केन्द्र बन जाय। जिस पार्टी में जा बैठे उसी की जान हो जाय। जिसकी मेधा का बोलबाला हो और बुद्धि-चातुर्य का डंका। उसे जो मिले, वाह-वाह ही करे, वाह ! वाह !

और जब किसी लड़की का पिता या मामा या चाचा एक विनीत मुस्कराहट के साथ कहता, 'तो मोहन साहब, क्या हम अपनी कान्ता की बात आगे बढ़ायें ?' तो मोहन एक विजय भरी, लेकिन सुसंस्कृत मुस्कराहट से जवाब देता, 'मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ, लेकिन मुझे अभी एक साल की ट्रेनिंग लेनी है और जब तक मैं यह ट्रेनिंग खत्म न कर लूँ, मैं विवाह का खयाल भी दिल में नहीं ला सकता। आप अभी इस बात को रहने दें। लाला बंशीधर और श्री गणेश भारती ने भी रिश्ते के लिए ज़ोर दिया था, लेकिन उनसे भी मैंने यह निवेदन किया है कि अभी इस मामले पर बातचीत रहने ही देनी चाहिए।' और अगर अभी कोई अपरिचित अमीर आदमी ज़रा मुँह लटकाकर कहता, 'मोहन साहब, आप ही फ़रमाइए हम कैसे अपनी विवाह योग्य

लड़की को एक साल तक इस अनिश्चित उम्मीद पर अविवाहित रख सकते हैं ?' तो मोहन दार्शनिक शब्दों में उत्तर देता, 'महोदय मैं आपकी परेशानी को भली-भाँति समझता हूँ। मेरे अपने घर एक विवाह-योग्य बहन बैठी है। पर मुझे खेद है कि मैं अभी कुछ फैसला नहीं कर सकता। मैं मजबूर हूँ, मुझे मालूम है कि आज-कल अच्छे लड़के मिलने कितने मुश्किल है। मैं नहीं कहता कि आप मेरे लिए इन्तज़ार करें। अगर इस बीच में आपको कोई अच्छा, कमाता-खाता लड़का मिल जाय तो मुझे निश्चय ही बहुत खुशी होगी। लेकिन मैं स्वयं तो इस मामले पर एक साल बाद ही विचार करूँगा। आप जानते ही हैं, मुझे कैसी लड़की चाहिए।'।

ठीक है, सब विवाह-योग्य लड़कियों के पिता, चाचा, मामा जानते हैं कि मोहन साहब को एक विदुषी चाहिए। अब ऐसी लड़की लायें कहाँ से ? दिल में सभी लोग जानते हैं कि आज-कल की लड़कियों में ठोस बुद्धि कुछ कम ही है। हाँ, बनावट है, सजावट है, दिखावा है। दिल्ली के किसी सिनेमा हाल में देख लो, कनाट प्लेस में देख लो, इण्डिया गेट पर देख लो। काश उनमें से कुछ मेधावी भी होतीं। और बिना प्रखर बुद्धि के लड़की तो मोहन साहब पसन्द करने के नहीं। हो सकता है, इतनी दौड़-धूप के बाद भी मोहन साहब उनकी लड़की को पसन्द न करें। लेकिन फिर भी एक बार प्रयत्न तो कर ही देखना चाहिए। प्रतीक्षा में असफलता की सम्भावना तो है, लेकिन अगर सफलता मिली तो इनाम भी कम नहीं है। आई० सी० एस०। आहा, एक आई० सी० एस० दामाद !

आदमी हिम्मत करे तो क्या नहीं हो सकता। लोहे को सोना बनाया जा सकता है। और यहाँ तो उनकी लड़कियाँ काफ़ी पढ़ी-लिखी

विदुषी

थीं। और अभी एक साल की अवधि थी। लड़कियों को प्रखर बुद्धि बनाया जा सकता था। एक आई० सी० एस० से नाता जोड़ने की महत्वाकांक्षा से अमीर माता-पिता ने अपनी खूबसूरत लड़कियों के लिए अध्यापक रख दिये जो उनकी मेधा को चमका सकें। सुन्दरता की वे प्रतिमाएँ, जिनकी खिलती मुस्कराहट से ही लोगों के दिल धक्-धक् करने लगते थे, अब अपनी प्रतिभा की कुन्द और जंग खायी तलवारों को ट्रेनिंग की सान पर चढ़ाने लगीं। जिनके पाँव कभी भूले से भी अजायबघर की ओर नहीं बढ़े थे, वे अब वहाँ जाकर घंटों समय बिताने लगीं। और मोहिजोदङ्ग क्यों मशहूर है, पानीपत की लड़ाई में कौन से हथियारों का प्रयोग हुआ था, मुगल आर्ट और राजपूत आर्ट में क्या अंतर है, आधुनिक शिल्पकला उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है या अवनति की ओर लुढ़क रही है, ऐसी बातों का बड़ी निष्ठा से अध्ययन करने लगीं। न केवल अध्ययन ही करने लगीं, बल्कि हर एक चीज़ को कंठस्थ भी। उन बड़े घरों में जहाँ रेडियो केवल युरोपियन म्यूज़िक और फ़िल्मी गानों के वक्त ही चलाया जाता था, अब खबरों के वक्त भी बजने लगा, और आई० सी० एस० पति पाने की मनोकामना रखने वाली प्रभाएँ और उमाएँ और उषाएँ कागज़-पेंसिल ले-लेकर रेडियो के गिर्द बैठने लगीं और बड़ी एकाग्रता से सुनने लगीं कि कौन-सा देश किसको हड़प करने की कोशिश में है, कौन से नीतिज्ञ ने किस वषय पर कब भाषण दिया है। वही लड़कियाँ, जो समाचार-पत्रों को केवल अपनी साड़ियों का लाण्डरी में भेजने के लिए लपेटने के काम में लाया करती थीं, अब सुबह-सबरे उठकर समाचार-पत्रों पर लाल-नीली पेंसिल से निशान लगाने लगीं ताकि ताज़ा खबरों से परिचित रहें। एक साल के अल्प समय में ही लड़कियाँ इतनी विदुषी हो गयीं कि

कुछ ने ती शीशे के सामने बैठकर अपना शृङ्गार करना छोड़ दिया । जब मन को इतना उन्नत कर लिया, तब साज-शृङ्गार की कौन परवाह करे

आखिर मोहन की ट्रेनिंग की अवधि का एक वर्ष समाप्त हुआ । माता-पिताओं के दिल धड़कने लगे । लड़कियों के दिल धड़कने लगे । देखें किस भाग्यवान लड़की को मोहन पसन्द करता है । देखें किन माँ-बाप की किस्मत चमकती है ।

मोहन ने रत्ना को चुना । कितना सुन्दर नाम था । नाम से ही बुद्धिमत्ता टपकती थी । रत्न की तरह ही सुन्दर—बुद्धि में भी, शरीर में भी ।

मोहन का चुनाव कितना सफल रहा था, इसका सबूत उसे जल्दी ही मिल गया । प्यार का पहला महीना उन्होंने शिमला में गुज़ारने का फ़ैसला किया था । शिमला पहुँचने के दूसरे दिन ही मोहन को विदित हो गया कि उसकी रत्ना कोई साधारण मिट्टी की बनी हुई नहीं है । दोपहर तक की लगातार वर्षा ने उन्हें बाहर नहीं निकलने दिया था, लेकिन बारिश थमते ही वे दोनों सैर को निकले । दूर सामने पहाड़ों पर इन्द्रधनुष किसी रंगराती की अँगड़ाई-सा तना हुआ था । सुन्दर और मनमोहक । दोनों चलते-चलते रुक गये थे और देर तक इन्द्रधनुष की रंगीनी में खोये रहे थे । तब मोहन ने प्यार से रत्ना के कन्धे पर हाथ रखकर कहा था, 'कितनी सौन्दर्य-सम्पन्न है प्रकृति की कला' और रत्ना मोहन की आँखों में देखते हुए बोली थी, 'यह प्रकृति की कला नहीं, हमारी आँख का भ्रम है । आखिर यह इन्द्र-धनुष है क्या ? यही न, हवा में तैरते हुए जलबिन्दुओं में से सूर्य की किरणों का छितरना ! न्यूटन ने प्रकाश-रश्मि को शीशे की तिकोन

में से गुज़ारकर साबित कर दिया था कि लाल रंग की किरणें नीले रंग की किरणों की अपेक्षा अपने रास्ते से ज़्यादा विकृत हो सकती हैं। इसीलिए तो इन्द्रधनुष का बाहर का भाग लाल और अन्दर का नीला दिखायी देता है।' मोहन मुँह खोले रत्ना के चेहरे की ओर ताकता रह गया था। सो ऐसी है मेरी रत्ना! बी० ए० तो इसने अर्थशास्त्र और इतिहास लेकर पास किया है, लेकिन वह विज्ञान से भी अनभिज्ञ नहीं। और एक दिन अजायबघर में पूर्वीय और पश्चिमीय कला की तुलना करते हुए जब रत्ना ने अजंता की चित्रकारी और एलोरा की शिल्पविद्या की ओर संकेत करते हुए कहा था कि हमारे भारत के कलाकारों ने हमेशा अन्दर—आत्मा की ओर—देखा है, केवल बाहर शरीर के ढाँचे की ओर नहीं, तो मोहन प्रेम-विभोर हो उठा था। और जो रही-सही कसर थी वह उस दिन पूरी हो गयी, जिस दिन एक होटल में खाना खाते हुए रत्ना ने मोहन को बताया था कि एक साधारण व्यक्ति को, जिसका वज़न १३५ पाउण्ड के करीब हो, अपनी सेहत कायम रखने के लिए रोज़ाना केवल १०० ग्राम के करीब प्रोटीन, ८० ग्राम के करीब चरबी और ५०० ग्राम के करीब कार्बोहाइड्रेट्स दरकार हैं। और मोहन ने साभिमान रत्ना का हाथ दबा लिया था और अगर वह अकेले होते तो सम्भव है वह उस उमड़ती हुई प्यार की मौज में रत्ना को चूम भी लेता।

काश यह शादी के पहले दिनों का जोश देर तक बना रहता! लेकिन ऐसा न हुआ। मोहन को यह मालूम होते देर न लगी कि विवाहित जीवन का सुख-चैन लेवल पत्नी के साहित्य और राजनीति पर दक्षता से वाद-विवाद कर लेने या सभा-सोसाइटी में अपने पाण्डित्य का आतंक जमा लेने में नहीं। मेधावी पत्नी दूसरों के लिए ईर्ष्या की

नस्तु हो सकती है। दूसरे लोग ऐसी स्त्री से बात करते हैं तो 'वाह-वाह' कर उठते हैं। कहते हैं कि कितना भाग्यशाली है मोहन। कैसी मेधावी पत्नी पायी है। पर मोहन को अब आभास होने लगा है कि घर के काम-काज में मेधा की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी सामान्य समझ-बूझ की। दफ्तर में सारा दिन काम करते-करते मोहन का शरीर शिथिल हो जाता है। उसके सोचने की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। लेकिन वह घर पर आकर क्या देखता है कि काँट और हेगल के दर्शनशास्त्र का अध्ययन हो रहा है, अथवा शेक्सपियर के किसी नाटक के किसी सुवाक्य पर लाल पेंसिल से निशान लगाये जा रहे हैं। मोहन कहता, 'रत्ना देखो मैं आ गया हूँ !' और रत्ना जवाब देती, 'जी बहुत अच्छा। आप ने यह ब्राउनिंग की कविता 'एण्ड्रिया डेल सारटो' पढ़ी है ? खूब लिखी है।' और मोहन सूट-बूट पहने ही चाय की मेज़ के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ जाता है और प्रतीक्षा करने लगता है कि रत्ना आये तो इकट्ठे चाय पियें। और चाय पीते-पीते भी बहुत बातें नहीं होतीं। लेकिन जब होती हैं, तब खूब होती हैं—किसी ठोस विषय पर। दर्शन और तर्कशास्त्र पर, राजनीति और विज्ञान पर। बहुत बातें। बड़ी-बड़ी बातें। शुष्क और नीरस बातें। और अगर बातें नहीं होतीं तो रत्ना अपनी नयी खरीदी पुस्तक के अध्ययन में रमी रहती है और मोहन उसकी ओर देखकर दिल-ही-दिल में सोचता है 'मेरी रत्ना, माना तू जर्मनी के सब दार्शनिकों के दर्शन और तर्कशास्त्र में दक्ष हो गयी है। माना तू साहित्य और कला पर समालोचना करने में सब से आगे है। माना तू सविस्तार अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी चित्रकला के स्कूलों पर वाद-विवाद कर सकती है। लेकिन अब तू ज़रा मेरी ओर देख। मुझे अब तेरी बुद्धि से टक्कर लेने की इच्छा नहीं। देख

मेरा जिस्म और दिमाग कितना थक गया है। तू अपनी प्रखर बुद्धि की बातें अब रहने दे। अपने हृदय के स्वरो को ज़रा जगा। मुझे इस समय तेरी मधुर मुस्कान की आवश्यकता है, तेरी नाचती आँखों की। रत्ना, मेरी दवा तो तेरे पास है, लेकिन तू दवा देने की जगह मुझे चिकित्सा के नियम पढ़ाना चाहती है।’

और ऐसे ही दिन बीतते गये। रत्ना और मोहन में कोई कलह-क्लेश नहीं हुआ। लेकिन न ही उनके जीवन में उन उमंगों और रंगीनियों का निखार हुआ जिनके लिए मोहन ने विवाह से पहले इतनी अग्र-मग्र की थी। मोहन और रत्ना का जीवन भी और लोगों की तरह सामान्य और साधारण होता गया। चाँद और सितारों की बातें पीछे रहती गयीं। और उसकी जगह आता गया एक फीकापन, एक कोल्हू में जुते बैल की-सी खिन्नता। लेकिन फिर भी मोहन का दिल न माना कि रत्ना इतनी विदुषी होते हुए भी यह मामूली-सी बात अभी तक नहीं समझ सकी कि दिमागी कूद-फाँद के लिए ताज़गी और ‘मूड’ की आवश्यकता है और दफ़्तर से आने के बाद सरकारी अफ़सरों के पास न ‘मूड’ रहता है, न ताज़गी। वह कभी-कभी रत्ना से कहता, ‘रत्ना, क्या तुम्हें कभी ऐसा नहीं लगता कि हमारा जीवन बहुत फीका होता जा रहा है, बहुत साधारण। इसकी उड़ान कहाँ गयी, इसकी उमंगें कहाँ गयीं। मैं जब थका-माँदा दफ़्तर से आऊँ तो मुझे कुछ ऐसा वातावरण मिलना चाहिए जिसमें मैं सब-कुछ भूल जाऊँ, सिवाय तुम्हारे और मेरे। लेकिन ऐसा होता नहीं। पर मैं चाहता क्या हूँ, यह भी ठीक से नहीं जानता। लेकिन हाँ किसी चीज़ की कमी है ज़रूर।’ और रत्ना जवाब देती, ‘दफ़्तर की धूल भरी फ़ाइलों की चक्की में सारा दिन पिसते रहने के कारण आपका मन पलायन चाहता है। आप दुनिया के संघर्ष से

दूर भागकर सपनों की दुनिया में रहना चाहते हैं। यह कैसे हो सकता है। आप संसार-सागर की इन महोर्मियों की ओर देखिए। आपके सामने इतिहास का सब से भीषण युद्ध हुआ है। समाज के रूढ़िबद्ध प्रतिष्ठित माप-तोल के प्रमाणों में उथल-पुथल मची हुई है। और आप हैं कि सिनेमा के नायक-नायिका की-सी कल्पित ज़िन्दगी बसर करना चाहते हैं। अब मैं आपसे क्या कहूँ।' और मोहन खिसियाना-सा होकर चुप हो जाता। वह कहता भी क्या। जो रत्ना कहती थी वह बिलकुल सच था। दफ्तर की थकावट के बाद वह सचमुच कल्पना की रंगीन दुनिया में रहना चाहता था। और रत्ना की यह बात कि उसकी वृत्ति पलायनशील हो रही है, कितनी सच थी, उसे उस दिन मालूम हुआ जब कि उसे एक बार सरकारी कार्य-विशेष के कारण पूरे तीन दिन तक बिना सोये, आराम किये घर से बाहर ड्यूटी पर रहना पड़ा। तीन दिन के बाद उसकी ड्यूटी खत्म हुई। वह कुर्सी पर से उठा। इतनी देर में उसका ड्राइवर मोटर दरवाज़े के सामने ले आया था। उसने एक अँगड़ाई ली, एक लम्बी साँस खींची और मोटर की नर्म सीट पर घँस गया।

मोटर की नर्म सीट पर बैठते ही मोहन के शरीर और दिमाग पर वही अव्यक्त-सा आलस्य छा गया, जो ऐसे अवसरों पर मनुष्य को अभिभूत कर लेता है जब सहसा उसकी शारीरिक और मानसिक नसों का तनाव नर्म पड़ जाय—जैसे किसी भारी परीक्षा के बाद। उसने अपने-आपको अन्दर समेट लिया। बाहर की सब चीज़ें उसके दिमाग से ओझल हो गयीं। और इस ग़ानूदगी की-सी अवस्था में उन सब चीज़ों को तस्वीर, एक सुविकसित इन्द्रधनुष की तरह, एक सुन्दर मनोहर सपने की तरह, उसकी अधखुली आँखों के सामने घूम गयी, घर पहुँचते

ही जिनके मिलने की उसे आकाँक्षा थी। इस कल्पना-चित्र में उसने देखा कि रत्ना एक बालारुण रंग की साड़ी पहने, अपने मदमाते यौवन का बोझ उठाये, मोटर की आवाज़ सुनकर उसके स्वागत के लिए दरवाज़े पर आयी है। मोहन को देखकर उसके मुस्कराते ओठों से खुशी की एक हल्की-सी आह निकली है। उसका चेहरा खिल उठा है और उसकी आँखों में चमक आ गयी है। ज्योंही मोहन मोटर से उतरा है, रत्ना ने अपनी नर्म-नर्म गोल बांहें उसके गले में डाल दी हैं और अनायास अपनी साड़ी के पल्लू को अपने बाजू से ज़रा सरका दिया है ताकि उसकी सुन्दर नंगी बाँहों और मोहन के गले के बीच किसी बाह्य चीज़ का व्यवधान न रहे। मोहन सिहर उठा है। रत्ना ने मोहन के कन्धे पर अपना सिर रख दिया है और हँसने की कोशिश कर रही है। और साथ-ही-साथ तीन दिन तक घर में अकेले रहने के कारण प्रेम के आवेश में उसकी आँखें भी आँसुओं से भीगी जा रही हैं। फिर रत्ना ने अपना सुन्दर मुखड़ा ऊपर उठाकर आँसुओं में से देखने का प्रयत्न करते हुए मोहन से कहा है, 'इतने दिन.....' और मोहन बड़े अनुराग से उसके चेहरे को अपने स्वस्थ सबल हाथों में हल्के-से लेकर उसके अधरों को अपने ओठों के पास ले आया है और उसकी आँखों को पीछते हुए बोल उठा है, 'मेरी रत्ना, मेरी अपनी रत्ना,' और रत्ना की आँखें अब भी भीगी-भीगी हैं और वह हल्के-हल्के सिसक भी रही है और हँस भी। और मोहन और रत्ना हाथ-में-हाथ डाले ड्राइंग रूम में आते हैं। मोहन का सारा शरीर थकावट से शिथिल हो रहा है। वह धम से एक सोफ़े में धँस जाता है और आँखें बन्द कर लेता है। रत्ना सोफ़े के पीछे खड़ी उसके कन्धे पर झुकती है और उसके रुखे शुष्क बालों में आहिस्ता-आहिस्ता अपनी कोमल उँगलियाँ फेरने लगती है

और साथ-ही-साथ धीमी आवाज़ में कुछ मीठा स्वर गुनगुनाने लगती है। उसकी सुकोमल पतली उँगलियों के स्पर्श से, उसकी मधुर आवाज़ की लोरी से, मोहन—तीन दिन का थका-माँदा मोहन—ऊँघने लगता है। रत्ना मोफ़े के पीछे से हटकर धीरे से मोहन के पास आ बैठती है। प्यार की धीमी-मीठी लोरी गुनगुनाती रहती है, बड़े प्यार से उसके बालों को सुलभाती रहती है.....।

और ऐसे ही मीठे सपनों में समय गुज़रता गया। मोटर की तेज़ गति के साथ-साथ उसका घर भी समीप आता गया। उसके बँगले के बाहर का फाटक खुला हुआ था। उसे पार करके मोटर पोर्च की सीढ़ियों के पास आकर रुक गयी। ब्रेक लगने के भटके से मोहन का शीशमहल धराशायी हो गया। उसकी नींद-भरी अधखुली आँखों ने देखा कि रत्ना दौड़कर बाहर आयी है। उसका चेहरा आवेग से लाल हो रहा है। उसके हाथ में एक नयी पुस्तक और लाल पेंसिल है। मोहन अब तक मोटर में से निकलकर पोर्च की दो सीढ़ियों चढ़ आया था। वह रत्ना के लाल चेहरे की तरफ़ देखता हुआ वहीं ठिठक गया। उसके कान, जिनमें अभी-अभी प्रेम के गीत गुनगुनाये जा रहे थे, अब सैलाब की तरह उमड़े आते रत्ना के शब्दों को समझने की कोशिश कर रहे थे। रत्ना बिना मोहन की तरफ़ देखे कह रही थी, 'मैं ठीक कहती थी न। लीजिए, देखिए आपका मत शलत निकला। आप कहा करते थे कि रूस में जर्मनी की पराजय जर्मनी की अपनी कमज़ोरी से हुई। लेकिन यह सच नहीं है। मैंने १९१६ से लेकर आज तक के रूस के इतिहास को बहुत ध्यान से पढ़ा है। मैं रूस की ताकत को जानती हूँ। और इस पुस्तक में भी यही लिखा है। मैं इसे कल ही खरीदकर लायी हूँ। यह देखिए मैंने इसमें महत्वपूर्ण

घटनाओं पर लाल पेंसिल से निशान लगा दिये हैं। अगर रूस ने जर्मनी का मुकाबिला डटकर किया तो जर्मन सेना की कमजोरी की वजह से नहीं बल्कि अपने बल पर। रूस का हौसला कभी नहीं टूटा था। रूस....'

रत्ना कहे चली जा रही थी। उसने नहीं देखा कि चाहे रूस का हौसला टूटा हो या नहीं, लेकिन मोहन का हौसला ज़रूर टूट गया है। और वह वहीं दूसरी सीढ़ी पर बैठ गया है। उसका सिर उसकी छाती पर झुक आया है और वह उसे दोनों हाथों में थामे हुए है। उसके सूखे, थके, ओठों में से अस्पष्ट-सी आवाज़ निकलने की कोशिश कर रही है, 'रत्ना, बस रत्ना, बस....।'



दो आने

आखिर यह कमज़ोरी क्यों ? यह कोई पहली बार तो नहीं कि मैं किसी के विरुद्ध रिपोर्ट कर रहा हूँ। लेकिन पहले कभी दिल और दिमाग़ ने इस तरह विद्रोह नहीं किया। रिपोर्ट करते वक्त यह कभी खयाल भी नहीं आया कि इससे किसी की रोटी छिन जायगी, किसी का घर बर्बाद हो जायगा। तो फिर आज यह परेशानी कैसी ? क्या उस आदमी में—उसका नाम पिण्टो है—जिसको मैंने आज दो आने रिश्त लेते देखा है कोई खास बात है जो उसकी सूरत मेरे रोम-रोम को बेचैन कर रही है ? वह कुछ-कुछ बहरा है। उसे ज़रा ऊँचा सुनायी देता है। उसे नौकरी करते बीस साल हो गये हैं। उसकी आँखें लाल हैं, शायद उसे काफ़ी सोने को नहीं मिलता। जब मैं वहाँ पहुँचा तो वह उस दुअन्नो को अपनी जेब में डाल रहा था और मुस्कराता हुआ रिश्त देने वाले की ओर देख रहा था। सहसा उसकी नज़र मुझ पर पड़ी और वह अपनी जगह जड़-सा होकर रह गया। उसका दायाँ हाथ, जो

आधा जेब में जा चुका था, वहीं जम गया। उसका थोड़ा-सा खुला मुँह, उसके ऊपर के नकली दाँत, उसकी फीकी-सी मुस्कराहट—मानो उसका सब-कुछ चेतना-हीन हो गया। मैंने उससे पूछा, 'क्या तुमने इस आदमी से कुछ पैसे लिये हैं?' उसने कहा, 'नहीं।' लेकिन उसके हाथ काँप रहे थे। मैंने कहा, 'तुम्हारे हाथ क्यों काँप रहे हैं।' और वह अपने हाथों को कोट की जेबों पर पोंछने लगा। वे पसीने से तर हो रहे थे। मैंने उसकी उस जेब की तलाशी ली जिसमें मैंने उसे पैसे रखते देखा था। फिर दूसरी जेब की। दोनों में से कुछ चवन्नियाँ कुछ दुअन्नियाँ और कुछ इकन्नियाँ निकलीं। मैंने विजय की हल्की-सी मुस्कराहट से उसकी ओर देखा। अब वह अपनी अन्दर की जेबें टटोल रहा था। उसने मुझसे आँख मिलाने की कोशिश नहीं की। मैंने उसे अन्दर की जेबें टटोलने के लिए नहीं कहा। मैंने यह भी कहा कि इसकी कोई ज़रूरत नहीं। लेकिन वह अन्दर की जेबें टटोल-टटोलकर इकन्नियाँ और दुअन्नियाँ बाहर निकालता रहा। साथ-साथ यह भी कहता गया 'नहीं साहब, आज पहली तारीख है। मुझे तनख्वाह मिली है। कुछ दिनों में मेरी बेटी की शादी है। उसके लिए मैंने अपनी पगार से कुछ रुपयों की रेज़गारी ले ली है। ब्याह-शादी में इधर-उधर के कामों के लिए छुट्टे पैसे चाहिएँ। वह ऐसे ही और भी बहुत कुछ बड़बड़ाता रहा। मैंने देखा कि जब वह जेबों से निकाले हुए पैसे दिखा रहा था तो उसके हाथ और भी तेज़ी से काँपने लगे थे। और तभी जैसे पहली बार मैंने देखा कि उसकी उँगलियाँ लम्बी और नोकदार हैं, जैसे किसी लड़की की। और उसकी हथेली गहरी है, मेरी अपनी हथेली की तरह। और मुझे एक ज्योतिषि का कथन याद हो आया कि जिस व्यक्ति की हथेली गहरी हो, उसके भाग्य में बहुत धन-दौलत लिखी होती है। 'बहरा पिएटो खूब धन दौलत

कमा रहा है,' मैंने मन में सोचा। ओठों में मुस्कराते हुए मैंने उसके चेहरे की ओर देखा। उसकी आँखें और भी लाल हो गयी थीं। उसके ओठ सूख रहे थे, लेकिन उनके कोनों पर कुछ भाग जमा हो गयी थी। मैंने तेवर चढ़ाते हुए कहा, 'तुम मरासर झूठ बोल रहे हो। मैंने खुद तुम्हें रिश्वत लेते देखा है।' वहीरे पिण्डो का दायाँ हाथ ऊपर उठा। उसे अपने दायाँ कान के पीछे रखकर और थोड़ा-सा आगे को झुककर उसने कहा, 'जी मुझे कुछ ऊँचा सुनायी देता है, आप ने क्या कहा?' मैंने चिल्लाकर कहा, 'तुमने रिश्वत के पैसे नहीं लिये?' और वह कहने लगा, 'जी नहीं। कई बार यह लोग मुझे पैसे देने की कोशिश करते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ—मैं नहीं लूँगा, मैं नहीं लूँगा—और मैं नहीं लेता।'।

मैं वहाँ से चला गया। मुझे एक और जगह जाना था। थोड़ी देर बाद, मैं दूसरी तरफ़ से वापस आया। वहीरा पिण्डो मेरी तरफ़ पीठ किये खिड़की के पास खड़ा था। उसके दोनों हाथ उसकी पीठ पर एक दूसरे को थामे थे। वह अनजाने अपनी मुट्ठियों को कभी खोलता, कभी बन्द करता। ऐसा लगता था कि शायद वह अभी तक उधर ही देख रहा है जिधर से मैं गया था। उसके कोट का कॉलर और पतलून के पायँचे फटे हुए थे और उनमें से फूसड़े झाँक रहे थे। सुबह ज़ोर की वर्षा होने के कारण उसकी पतलून पर जगह-जगह कीचड़ के छींटे पड़े थे। उसने मुझे वापस आते हुए नहीं देखा। मेरी मोटर के रुकने की आवाज़ भी नहीं सुनी। वह वहीरा है। उसे कुछ ऊँचा सुनायी देता है। मैंने पीछे से उसके बहुत करीब आकर चिल्लाते हुए कहा, 'तुम यहाँ खड़े क्या कर रहे हो?' वह धबकाकर मेरी ओर मुड़ा। उसकी लाल आँखों की बेबसी से मेरा दिल द्रवित हो उठा। वह 'गिड़गिड़ाने लगा,

‘जी....जी....ऐसे ही ।’ उसका सारा जिस्म थर-थर काँप रहा था ।

*

रिपोर्ट तो मैंने आज की है । लेकिन यह घटना हुई थी कल । रात भर मुझे नींद नहीं आयी । करवटें बदलता रहा । दिमाग में एक खलबली-सी मचती रही । मैंने दो-तीन बार उठकर पास में पड़े हुए गिलास से पानी भी पिया ताकि यह परेशानी कुछ कम हो । लेकिन नींद जैसे चली गयी थी । मनाये मानती ही न थी । मुझे रह-रहकर बहरा पिण्डो याद आ रहा था—अपने दायें कान के पीछे हाथ रखे, ज़रा-सा आगे को झुककर यह कहता हुआ, ‘वे मुझे कई बार पैसे देने की कोशिश करते हैं. लेकिन मैं कहता हूँ—मैं नहीं लूँगा, मैं नहीं लूँगा—और मैं नहीं लेता ।’ और तब उसका कंठ सूख जाता है और उसकी लम्बी पतली उँगलियाँ काँपने लगती हैं और मुझे ऐसे लगता है कि वह अपनी पत्नी के सामने खड़ा है और कह रहा है, ‘आज साहब ने मुझे पकड़ लिया है । मैंने एक आदमी से दो आने रिश्त के लिये थे । और मैंने साहब से कहा कि मैंने नहीं लिये । लेकिन यह झूठ था । और साहब भी जानता है कि यह झूठ है । जानती हो अब क्या होने वाला है ? सम्भव है मुझे नौकरी से ही हाथ धोना पड़े । कम-से-कम काफ़ी समय तक तरक्की तो ज़रूर ही रुक जायगी । मुझे अपना डर नहीं । मुझे तुम्हारा खयाल है । तुम्हारे बच्चों का खयाल है । अब हमें सिर्फ़ अस्सी रुपये महीने में गुज़र करनी पड़ेगी । सुनती हो, अस्सी रुपये महीने में !’ और तब बहरा पिण्डो अपनी उन्हीं लाल-लाल आँखों से अपनी पत्नी की तरफ़ देखता है, जिनसे वह पिछले बीस साल से उसे देखता आया है । लेकिन अब उसकी पत्नी को ये

आँखें भयानक नहीं लगतीं। वह इन आँखों की लाली की बेबसी को अच्छी तरह से समझने लगी है। उसने चुप रहकर बात करना सीख लिया है। आखिर चिल्लाकर बहरे पति को क्या-क्या समझाये। और मुझे ऐसे लगा कि उसने अपनी खामोश निगाहें पिण्डों के चेहरे पर गाड़ दी हैं, और ये खामोश निगाहें कह रही हैं 'तुम कहते हो यह घटना आज दोपहर को हुई है, तो साहब तुम्हारी रिपोर्ट शायद कल तक नहीं करेंगे। चलो अब गिरजाघर चलें, वहाँ यूसू मसीह के कदमों पर सिर रख दें और दुआ करें कि ऐ खुदा के बेटे ! ऐ यूसू मसीह ! हमारे गुनाहों को बर्खा ! हम गरीब हैं, हमारे मुँह का नवाला न छीन। ऐ रहीम, ऐ करीम, हमारी हालत पर तरस खा और साहब के दिल में रहम पैदा कर। बहरा पिण्डों अपनी बीबी के भोलेपन पर हँसता है और फिर एक भयानक ठहाका लगाते हुए कहता है, 'मैंने आज दो आने रिश्वत के लिए हैं। यूसू मसीह मेरी प्रार्थना पर क्यों कान देने लगा। मैं तो पिछले पन्द्रह साल से रिश्वत लेता चला आ रहा हूँ, ऐसे ही दो-दो आने, चार-चार आने। नहीं तो मेरी प्यारी क्रिस्टी, तुम और मॉड और जॉइस, सभी का आये दिन फ्राके करने पड़ते। बाज़ार में यह महँगाई तो अभी आयी है, लेकिन पन्द्रह साल पहले मेरी पगार पचास रुपये थी और बम्बई में पचास रुपये मासिक से कभी किसी का पेट नहीं भरा, चाहे आठ रुपये का दस सेर हो या एक सेर। और इसीलिए मैंने लोगों से दो-दो चार-चार आने लेने शुरू कर दिये थे। यह तो मेरी रोज़ी थी। इसे मैं रिश्वत क्यों कहूँ। यह न करता तो हम सब भूखों मरते। नौकरी के पहले पाँच साल तो मैंने रिश्वत की एक कौड़ी भी नहीं छुई थी। लेकिन क्रिस्टी (और मुझे लगा कि क्रिस्टी का नाम लेते ही एक क्षण के लिए

बहरे पिण्डों के चेहरे का रूखापन जाता रहा है) फिर मुझे तुमसे मुहब्बत हो गयी। मुझे वह दिन अब भी याद है जब तुमने पहली बार अपने ओठों को चूमने दिया था। खाने के बाद हम ऐसे ही घूमने निकले थे। पहले मैंने सोचा कि कोई सिनेमा देखने चले, ताकि अँधेरे में मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर बैठ सकूँ। तुम्हें तो मालूम ही है कि मैं दसवीं क्लास से आगे नहीं बढ़ा। लेकिन मैंने इधर-उधर के उपन्यास काफ़ी पढ़े थे और मैं भी तुम्हारे हाथ के स्पर्श से वह सनसनी महसूस करना चाहता था जिसका वर्णन उपन्यासों में होता है। लेकिन महीने के आखिरी दिन थे। पैसे कहाँ से लाता? मुझे अच्छी तरह याद है कि सिनेमा-घर के सामने से गुज़रते समय तुम्हारे पाँव रुक-रुक गये थे, लेकिन मैंने फिल्म के अच्छा न होने के बारे में कुछ बड़बड़ाकर बात टाल दी थी। तब हम बाग में एक लोहे की बेंच पर जा बैठे थे और मैंने तुम्हारा हाथ अपने हाथ में ले लिया था। लेकिन वह उपन्यासों वाली सनसनी गायब थी। मेरी हथेलियाँ पसीने से भीग रही थीं। मैं दिमाग पर ज़ोर देकर सोचने का प्रयत्न कर रहा था कि अब बात आगे कैसे बढ़ाऊँ। तुम्हें चेतावनी दिये बग़ैर तुम्हारे अधरों पर अपने ओठ रख दूँ या कि ऐसे साहस के लिए पहले तुमसे अनुमति ले लूँ। तुम्हारी कमर को अपने बाजू में बाँध लूँ? तुम्हारे गाल को प्यार से थपथपाऊँ। तुम्हारे बालों से खेलूँ? मैंने कई बार खाँस-खाँसकर गले को साफ़ किया कि तुमसे कुछ कहूँ, लेकिन शब्द कंठ तक आकर अटक जाते थे। इस मधुर अनिश्चितता के वातावरण में भी मैं यह महसूस किये बिना न रह सका कि तुम्हारे शरीर में तमागू के पत्ते जैसी हल्की-हल्की बू आ रही थी। एक सस्ती किस्म की खुशबू से तुमने इस बू को छिपाने की कोशिश की थी। लेकिन इस सस्ती खुशबू और तुम्हारे पसीने की बू की परस्पर

मिलावट से एक अजीब दुर्गन्ध-सी पैदा हो गयी थी। तुम और सुगन्धि खरीद भी कहाँ सकती थीं ? अभी एक महीना पहले ही तो तुम्हें एक सिगरेट फ़ैक्टरी में नौकरी मिली थी। जब तमाखू कटकर मशीन से गिरता था तो तुम उसे छाँटने का काम करती थीं। सारा दिन तमाखू छाँटने के कारण तुम्हारे सारे शरीर में उसकी बू रच जाती थी तुम्हें मज़दूरी का रोज़ाना एक रुपया मिलता था और मुझे याद है कि लगातार एक महीने तक पैसे जमा करने के बाद तुमने उन पैसों से एक फ़ॉक, एक हैंड-बैग, एक सस्ता-सा सेंट और एक घटिया किस्म के पाउडर का डिब्बा खरीदा था। और उस दिन तुम वह फ़ॉक पहनकर आयी थीं, हैंड-बैग हाथ में लटकाये, चेहरे पर पाउडर की तह जमाकर सेंट के बाहुल्य से शरीर में तमाखू की बू को छिपाने की कोशिश किये, लेकिन तमाखू की बू तो तुम्हारे शरीर में रम चुकी थी। वह कैसे दूर होती ? और मैंने सोचा था कि यद्यपि मेरा वेतन केवल पचास रुपये मासिक ही है, लेकिन शादी के बाद मैं तुम्हें ऐसी बुरी नौकरी कभी न करने दूँगा। और जब हम लोहे के बेंच से उठकर चले थे तो मैं तुम्हें घर तक पहुँचाने गया था। और तुम्हारे घर के समीप ही जो बिजली का खम्भा है उसके नीचे अनायास हम दोनों रुक गये थे और काफ़ी देर तक एक दूसरे की आँखों में देखते रहे थे और तब न जाने कैसे साहस करके मैंने चटाख से तुम्हारे अधरों को चूम लिया था। एक हल्की-सी चटाख से—मानो कोई उँगली से कोट के कॉलर पर पड़ी सिगरेट की राख उड़ा रहा हो। और तुम ज़रा हँस दी थीं....और जब मैं घर पहुँचा था तो मुझे तुम्हारे शरीर की सारी बू भूल गयी थी, याद रह गया था केवल तुम्हारे अधरों का मीठा स्पर्श ! और मैं बार-बार हाथ से अपने लबों को छूता था, यह जानने के लिए कि तुम्हारे अधरों के स्पर्श

से जो अदेखा कोमल 'कुछ' मेरे लवों पर आ गया था, वह वहीं है या नहीं....। और रात को मुझे नींद न आयी थी। मैं सोचता रहा था कि मुझे भी तुमको कुछ उपहार देना ही होगा। मुझे यह महसूस हो रहा था कि मैंने तुम से कोई चीज़ ली है, जिसकी कीमत मुझे ज़रूर चुकानी चाहिए। और अगले दिन जब एक आदमी ने अपना काम करवाकर मेरे हाथ में दं आने थमा दिये थे तो मुझे बिजली का खम्भा याद आ गया था, और तुम, और मेरा तुमको चूमना। और मैंने मुस्कराकर वह दो आने अपनी जेब में डाल लिये थे।'

*

'ग्वट-ग्वट....ग्वट-ग्वट....' कोई दरवाज़ा खटखटा रहा है क्या ? मैंने आँखें खोलीं। सारे कमरे में तेज़ रोशनी आ रही थी। मैं उठकर ग्विड़की के पास गया। सामने वाले मकान के पोर्च में एक मोटर आ ग्वड़ी हुई थी। उसी की तेज़ बत्तियों से मेरा कमरा रोशन हो उठा था। मोटर का इंजन अभी चल रहा था। मोटर का दरवाज़ा खोलकर एक युवती बाहर निकली। ड्राइवर की सीट पर बैठे हुए युवक ने बत्तियाँ बुझा दीं। इंजन भी बन्द कर दिया। मैंने कमरे में मेज़ पर पड़े टाइम-पीस की चमकती सूइयों की आंखें देखा। साढ़े बारह बज रहे थे। बाहर चाँदनी छिटकी हुई थी। युवती मोटर का दरवाज़ा बन्द करके उसकी ग्विड़की में झुकी अन्दर बैठे व्यक्ति से कुछ कह रही थी। फिर दोनों के हाथ आपस में मिले। तब युवती मुड़ी और अपने बैग में कुछ टटोलने लगी। मोटर के स्टार्ट हॉने की धर्र धर्र आवाज़ हुई। युवती ने चाभी से अपने घर का दरवाज़ा खोला और अन्दर प्रवेश करते हुए मुड़कर मोटर में बैठे युवक की तरफ़ देखा, मुस्करायी और हाथ उठा-

कर हिलाया । जवाब में युवक का हाथ भी ऊपर उठा, और फिर घर् करती हुई मोटर चली गयी । मैं वापस पलंग पर आ लेटा । और उस युवक-युवती का परस्पर क्या सम्बन्ध है, सोचने लगा....

*

फिर वही पिण्डो ! कम्बख्त, सोने भी दोगे या ऐसे ही परेशान करते रहोगे । पिण्डो मुस्करा रहा है ! अपनी पत्नी से कह रहा है, 'वह दो आने मैंने मुस्कराकर जेब में डाल तो लिए, लेकिन मेरे हाथ बहुत देर तक काँपते रहे थे । दिल बराबर धड़के जा रहा था । मुझे लगा जैसे मैंने कोई घोर पाप किया है जिसका फल भोगने में अब मुझे कोई नहीं बचा सकेगा । मैं बार-बार यह देखने के लिए जेब में हाथ डालता था कि वह दो आने अभी जेब में ही हैं कि नहीं । हर क्षण मुझे ऐसे लगता था कि ये दो आने मेरी जेब से बाहर भाँक रहे हैं और हर रास्ता चलने वाला उन्हें देख रहा है और मुस्करा रहा है । मैं लाख दिल को समझाता, लेकिन दिल था कि बैठा ही जा रहा था । मुझे अपने जीवन में पहली बार लगा कि मैं कितना भीरु और डरपोक हूँ । मुझे पहली बार पता चला कि दयानतदारी तो सीधा रास्ता है । उस पर चलने के लिए सतर्कता और साहस की आवश्यकता नहीं । साहस और सतर्कता तो चाहिए बुराई के काँटेदार रास्ते पर चलने के लिए । मेरे दिमाग में एक खलबली-सी मच रही थी । मैं पास वाले नल पर गया. नल ग्वोला और पानी की धार के नीचे अपना सिर रख दिया । पानी ठंडा न था, लेकिन मुझे अपनी रगों का तनाव कुछ कम होता महसूस हुआ । दिल की धड़कन भी कुछ ठीक हुई । मैं इधर-उधर टहलने लगा । सामने से साहब आ रहे थे । मेरी सांगी घबड़ाहट, बेचैनी

दो आने

और कमज़ोरी फिर लौट आयी। मुझे ऐसे लगा कि मेरी जेब फट गयी है और उसमें से दोनों आने बाहर गिर पड़े हैं। मैं झुककर उनको उठा रहा हूँ और साहब मुझसे पूछ रहे हैं—यह कैसे किये हैं—और मेरी ज़बान तालू से चिपक गयी है और गले से कोई आवाज़ नहीं निकलती। मैंने हाथों के कम्पन को रोकने के लिए उन्हें जेबों पर दबा लिया। साहब के पास आने पर मैंने काँपती हुई आवाज़ में कहा 'मेरी तबीयत ठीक नहीं। जिस्म कुछ टूट-सा रहा है। शायद बुखार है।' साहब ने एक सरसरी नज़र मुझ पर डाली और कहा, अच्छा तो घर जाकर आराम करो।'

'मगर मैं सीधा घर नहीं गया। रास्ते में एक ईरानी रेस्तराँ में बैठ गया। एक प्याला चाय मँगवाई और उसे बैठा देखता रहा। शायद एक घंटे तक ऐसे ही बैठा रहा। जब चाय पानी हो गयी तो प्याले को मुँह से लगा, एक ही साँस में गट-गट पी गया। फिर एक सिनेमा घर में जा बैठा। मैंने उस शाम तुम्हें मिलने का वचन दिया था। वह भी भूल गया।

'रात को देर तक मुझे नींद न आयी। मैंने देखा कि मैं एक गिरजाघर में हूँ। सामने क्रॉस पर यसू मसीह लटक रहा है। उसके हाथ-पाँव में कीलें गड़ी हैं। उसके सिर पर काँटों का ताज है। उसकी गर्दन उसके कंधे पर झुकी हुई है लेकिन उसके चेहरे पर तेज है, एक प्रकार का प्रशान्त भाव है जो सारी दुनिया के गुनाहगारों का निमन्त्रित करता है कि आओ, मेरा शरण में आओ, तुम गुनाहों से मुक्त हो जाओगे। मेरी आँखें भीग रही थीं। मैंने घुटनों के बल झुककर प्रार्थना की! मेरे यसू मसीह, मेरे आका—मैंने आज गुनाह किया है। मैंने दो आने रिश्त के लिये हैं। लेकिन ऐ खुदा के बेटे, क्या यह तेरी नज़रों में भी गुनाह

है ? तू जानता है कि मैंने यह पैसे क्यों लिये हैं । तू जानता है कि मेरा इसमें दोष नहीं ।—यसू मसीह का चेहरा वैसे ही तेजोमय रहा । मुझे अपने दिल का बोझ कुछ हल्का होता लगा । मैंने ज़रा और हौसले से कहा अगर तू भी इसे गुनाह कहता है तो मैं फिर ऐसा कभी नहीं करूँगा । लेकिन मेरी क्रिस्टी, मेरा ब्याह, मेरी खुशी, सब-कुछ खाक में मिल जायेगा । मेरे मालिक, तेरी खुशी में ही मेरी खुशी है । तू तो सब-कुछ समझता है । मैंने किसी की जेब नहीं काटी, किसी को धोखा नहीं दिया । किसी की चोरी नहीं की । किसी से भीख नहीं माँगी । उस आदमी ने यह पैसे अपनी खुशी से मुझे दिये हैं । यह रिश्तवत नहीं, इनाम है । और योही मैं बड़ी देर तक अपने दिल को तसल्ली देता रहा, और ऐसे ही अपने को तसल्ली देते-देते सो गया ।

‘अगले दिन तक मेरे दिल का बोझ बिलकुल हल्का हो गया था । मैं खुशी से काम करता रहा । जब एक आदमी ने अपना काम खत्म होने पर एक चमकती हुई चवन्नी मेरी हथेली में थमा दी तो मेरा हाथ नहीं काँपा, न ही मेरे दिल में कोई बेचैनी पैदा हुई । मैं पूर्ववत् अपने काम में व्यस्त रहा और मुझे ज्ञात हो गया कि अच्छे और बुरे के बीच जो एक अनिश्चित-सी लकीर है उसे अगर एक बार जी कड़ा करके पार कर लिया जाय तो बुराई-बुराई नहीं रहती, गुनाह-गुनाह नहीं रहता । अन्तःकरण अपने-आपको नये वातावरण के अनुकूल बना लेता है । और एक दिन मे मेरा दृष्टिकोण बदल गया....शाम तक मेरी जेब में एक रुपया आठ आने के पैसे उछल रहे थे । मुझे याद है कि उस दिन घर जाते समय मैं तुम्हारे लिए एक रुपये की साधारण किस्म की लिपस्टिक मोल लेता आया था....

‘इस बात को तो पन्द्रह साल हो गये हैं । उस समय यसू मसीह ने

मुझे ऐसा करने से नहीं रोका था। अब वह मेरी सहायता क्यों करने लगा। अब तो उसके सामने जाकर उससे प्रार्थना करना गोया उसका मज़ाक उड़ाना है। पन्द्रह साल तक तुम इसी रिश्ते का पैसा खाकर हर रविवार को गिरजाघर जाती रही हो और यसू मसीह का धन्यवाद करती रही हो कि उसकी कृपा से हमारा खाना-पीना और रहना अच्छा है, यसू मसीह करे हमेशा ऐमा ही रहे। और अब तुम जाकर उससे प्रार्थना करोगी कि 'ऐ खुदा के बेटे, मेरे गुनाह को गुनाह न समझ'....और बहरा पिएंटो इस ज़ोर से ठहाका लगाकर हँसा कि मेरे घर की दीवारें तक काँप उठीं। मेरा शरीर सिहर उठा। मैंने करवट बदली, सिर का एक बार ज़ोर से झटका ताकि पिएंटो और उसके विचार मेरे दिमाग से दूर हो जायँ। लेकिन पिएंटो का क़हक़हा जारी रहा। और मुझे लगा कि वह अपनी पत्नी से कह रहा है, 'अब मैं डिसमिस हो जाऊँगा, अब हम सब भूखों मरेंगे। मैं सड़क पर बैठा भीख माँगूँगा। तुम गिरजाघर जाकर यसू मसीह से दुआएँ माँगना कि हमारे बच्चे ज़िन्दा रहें।'।

*

मैंने चादर खींचकर सिर पर तान ली। मेरा हाथ पसीने से भीग रहा था। मैंने माथे पर हाथ फेरा। फिर माथे के पसीने को चादर से पोंछ डाला और उठ बैठा। बाहर चाँदनी निखरी थी। मैं खिड़की की चौखट पर कुहनियाँ टेके इस निखरे सूनेपन को देखने लगा। मेरे दिमाग में विचारों की इतनी उथल-पुथल मच रही थी कि समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या सोच रहा हूँ। हाँ, एक धुँधला-सा अनुभव अवश्य हो रहा था कि मेरे दिमाग के इस विचार-सागर के किनारे बहरे पिएंटो का ठहाका लहरों के थपेड़ों की तरह बार-बार टकरा रहा

है। और इस समुद्र की लहरों पर बहरा पिण्डो ज़रा आगे को झुककर हाथ को कान के पीछे रखे खूँ रहा है, 'जी मुझे कुछ ऊँचा सुनायी देता है। क्या कहा आप ने?' और उसी समुद्र के क्षितिज पर मेरी होने वाली पत्नी शारदा की रंगीन तस्वीर उभर रही है—शारदा, लम्बी, पतली, आबशार की धार की तरह, दूर नदी की चमकती हुई पगडंडी की तरह। शारदा, जिसके लिए अभी पछले सप्ताह ही मैंने एक हीरे की अँगूठी खरीदी है जिसकी कीमत आठ सौ रुपया है, और मैं उस दिन से इसी चिन्ता में हूँ कि यह आठ सौ रुपये आयाँगे कहाँ से? अगर मैं चाहूँ तो मैं भी इधर-उधर से काफ़ी पैसा कमा सकता हूँ। लेकिन मुझे ऐसे पैसा बनाने का कभी खयाल भी नहीं आया। मेरा विश्वास है कि हराम की कमाई कभी अच्छा फल नहीं देती। लेकिन हठात् मेरे दिमाग के किसी कोने से कोई अशु बड़बड़ा उठता है—अरे यह तू नहीं बोल रहा, तेरा हजार रुपये महीने का वेतन बोल रहा। तेरा निर्वाह तो बड़े मज़े में हो रहा है, तू दयानतदारी के सबक दे सकता है। तुझे मालूम है कि अँगूठी की कीमत अगर आज न चुकायी गयी, तो कल चुका दी जायगी। उसकी कीमत अदा करते-करते तेरे रहने-सहने के माप-तोल में कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा, और न ही इस चिन्ता में तेरे सिर के बाल सफ़ेद हो जायँगे। तू इसी सिलसिले में परसों ही घुड़दौड़ में भी अपनी किस्मत आजमा आया है कि शायद वहीं से कोई खजाना हाथ लग जाये और अँगूठी की कीमत निकल आये। लेकिन जीतना तो क्या, तू अपनी जेब से दो सौ रुपया लुटा आया है। फिर भी तेरे चेहरे की रौनक कम नहीं हुई। लेकिन अगर बहरे पिण्डो पर कभी बीस रुपये का भी असाधारण खर्च आ पड़े तो उसकी नींद हराम हो जाती है, उसकी आँखों के गिर्द पड़े काले हलके और भी गहरे होने शुरू हो जाते हैं और उसके

सिर के बाल और भी जल्दी पकने लगते हैं। और अगर वह भी तेरी तरह रेस-कोर्स में जाकर अपनी किस्मत आजमाने लगे तो तू यह कभी नहीं सोचेगा कि जैसे तू पैसा बनाने की खातिर घोड़ों पर शर्तें लगाने गया था, शायद वैसी ही कोई जरूरत बंधरे पिण्डों का भी वहाँ ले आयी हो। तेरे दिमाग में पहले तो यही खयाल उठेगा कि कमबख्त की सौ रुपया तो तनख्वाह है और उसे भी रेस-कोर्स पर लुटाने आ पहुँचा है। लोगों को जाँचने के तूने दो परिमाण बना रखे हैं—एक वह जिससे तू अपने-आपको परखता है, और दूसरा वह, जिससे तू दूसरे की कमजोरियों को तौलता है। ज़रा दोनों को एक ही तराजू में तौलकर देख तो तू दयानतदारी पर इतने लम्बे लैक्चर नहीं भाड़ेगा। तेरी भावी पत्नी शारदा तो कश्मीर के स्वास्थ्यकर पहाड़ों पर खुले और हवादार बँगलों में रहती है। लेकिन बंधरे पिण्डों की बीवी क्रिस्टी शादी से पहले बम्बई की एक तंग गली के एक तंग कमरे में अपनी दो और वहनों के साथ सोती थी और उसके बाकी सब घर वाले ऐसे ही एक-दूसरे कमरे में। उस कमरे में स्वच्छ वायु का गुज़र नहीं था। वहाँ तो निकट शौचालय की हल्की-हल्की बू हमेशा छाया रहती थी और इस बू के साथ धुली-मिली रहती थी पसीने की बू और रस्सी पर सूखने के लिए लटकाये हुए कपड़ों का हवा में बसा हुआ गीलापन। इसी कमरे में पानी का नल भी था। जिस वक्त कोई बहन नहाती तो पानी के छींटे सारे कमरे में फैल जाते। क्रिस्टी पुरानी बोरी के टुकड़े से फ़र्श को सुखाने का प्रयत्न करती, लेकिन धूप तो इस कमरे में भूलकर भी न झाँकती। कमरे की नमी के कारण तीनों बहनें जुकाम और मलेरिया में ग्रस्त रहतीं। उनके चेहरे जवान होते हुए भी जवानी के गुलाबीपन से अनभिज्ञ थे। प्रायः रात गये जब क्रिस्टी घर वापस लौटती

तो उसे अपने घर के पास ही नीचे गली के अँधेरे कोने में अपनी परिचित बहुत-सी लड़कियाँ दिखायी देतीं। उनके चेहरे तेजहीन होते, लेकिन आशा-युक्त-जैसे वे किसी की प्रतीक्षा कर रही हों। उसी गली में क्रिस्टी को कई मनचले, हाथ में छोटी-छोटी छड़ियाँ हिलाते, इधर-उधर घूमते नज़र आते। जब क्रिस्टी अपने फटे फ्रॉक को धोने लगती तो प्रायः उसे सहसा खयाल आता कि यदि वह भी इसी तरह एक दिन किसी अँधेरे कोने में खड़ी होकर किसी मनचले का इन्तज़ार करती तो उसे रोज़-रोज़ अपने फटे फ्रॉक न धोने पड़ते और न उन्हें जगह-जगह से सीना पड़ता। और वह कुछ देर के लिए रंगीन चित्रों में खो जाती। लेकिन फिर वह सहसा अपने इन विचारों की दिलेरी से काँप उठती और भट आँखें बन्द करके अपने मन में गिरजाघर और उसके भीतर क्रॉस पर लटके हुए यसू मसीह का चिन्तन करने लगती और अपने-आप से कहती, नहीं नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। स्त्री का धन उसकी लाज है। लेकिन इस बात पर उसका अपना विश्वास भी न जमता। उसके दिमाग का कोई सनकी कण हँसकर कहता, रहने दे अपनी लाज को। लाज का तो समाज ने ढोंग रचा रखा है। इस ढोंग को कायम रखने के लिए तुझे फटे फ्रॉक पहनने पड़ते हैं और तेरा चेहरा बे-रौनक और पीला रहता है। लाज को छोड़। अपनी सेहत और ज़िन्दगी बना। सेहत और ज़िन्दगी लाज से बेहतर है। क्रिस्टी उस सनकी कण के इस तर्क से प्रभावित तो होती, लेकिन उस तर्क से जो वह सोचती उसे कार्यान्वित करने से कतरा जाती।

•

‘क्या अजब-अजब विचार मुझे परेशान कर रहे हैं।’ अपने-आपको

*** दो आने

भक्तभोरकर और लम्बी तानकर सो जा। बहरे पिण्डों का दो आने रिश्त लेने और क्रिस्टी का अपनी लाज बचाने के लिए दरिद्रावस्था में रहने का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। अरे है क्यों नहीं। बड़ा गहरा सम्बन्ध है। क्रिस्टी की लाज की रक्षा के लिए ही तो पिण्डों ने रिश्त लेनी शुरू की थी, नहीं तो बम्बई में अपनी औरत के शरीर को बेचकर ऐश करने वालों की क्या कमी है? यहाँ तो हर तीसरे घर में तुम्हें कोई ऐसा आदमी मिलेगा जिसके साथ एक अपरिभाषित औरत रहती है। कोई उसे बहन बतायेगा, कोई बीबी, कोई बेटी। और फिर साँझ समय किसी मोटे सेठ की, किसी अमीर वकील की, किसी रँगिले युवक की मोटर घर के समाने आकर रुकेगी और वह बहन, वह बीबी, वह बेटी, वन-सँवरकर घर से निकलेगी और बगैर कुछ कहे उस मोटर में जा बैठेगी। ड्राइवर के मोटर चलाते ही पिछली सीट पर बैठे हुए सेठ का हाथ पास बैठी हुई लड़की के कंधे से हाँता हुआ, उसके सुडौल शरीर से खेलने लगेगा, लड़की बिना कुछ कहे, बिना कोई आपत्ति किये, बिना कुछ भाव व्यक्त किये चुप बैठी रहेगी। और सेठ का हाथ इधर-उधर सरकता हुआ यह जाँचने की कोशिश करेगा कि चीज़ महँगी तो नहीं पड़ी। अरे यहाँ तो निम्न-मध्य-वर्ग की नींव ही औरतों की लाज पर कायम है। और इस लाज को बचाने के लिए अवसर मिलने पर रिश्त लेने की जरूरत पड़ ही जाती है.....

*

धिक्कार है मुझ पर, मैंने चादर को एक आंर फेंकते हुए सोचा, मैं अफसर हूँ या एक कमज़ोर नर्सों का भावुक मरीज़। मैं तो बड़ी मर्शान का पुर्जा हूँ। मेरा अपना कोई अस्तित्व नहीं, मैं जड़ हूँ, मैं हूँ

कच्चे धागे

ही नहीं। मेरा होना मशीन पर ही निर्भर है। मेरा कर्तव्य है, कर्तव्य ही क्यों, मेरे पुर्जे होने के नाते मेरे अस्तित्व का सार ही यह है कि जो छोटी मशीन चलाने का काम मेरे सपुर्द है, उसे ठीक चलती रखूँ। अगर उस मशीन के किसी पुर्जे में जंग लग गया हो तो उससे सारी मशीन के खराब होने का डर है। उस पुर्जे को निकाल फेंकना होगा। उसकी जगह एक नया चमकता पुर्जा लगाना होगा। बहरे पिण्डो, तुम जंग के खाये हुए एक छोटे पुर्जे हो। तुम्हारा अब इस मशीन में कोई काम नहीं।

बहरे पिण्डो, यद्यपि अब मैं तुम्हारे भाग्य की रेखा मिटाने की सोच रहा हूँ, लेकिन मुझे तुमसे हमदर्दी है, बहुत हमदर्दी। तुम्हें मालूम है हम अफ़सर लोग जब साँझ को क्लब में बैठकर ज़िन्दगी के ऊँच-नीच पर विचार-विनिमय करते हैं तो तुम जैसे सौ रुपया मासिक पाने वालों का वर्णन ज़रूर करते हैं और हमें बहुत अफ़सोस होता है कि तुम लोगों की अवस्था इतनी शोचनीय है। और कई बार तो इस सहानुभूति में हम इतना खो जाते हैं कि हम में से कई एक के गिलासों में व्हिस्की वैसी ही पड़ी रह जाती है और कई एक के सिगार बुझ जाते हैं। लेकिन फिर भी हम चुप बैठे तुम लोगों की शोचनीय अवस्था पर गौर करते रहते हैं। और जब कुदरत और इंसान के इस अन्याय के बोझ के विचार से बिलकुल ही दब जाते हैं तो फिर हमें झटका देकर अपने-आपको बेदार करना पड़ता है। और 'खैर,' 'खैर' कहकर एक ही घूँट में गिलास-का-गिलास चढ़ा जाना पड़ता है और दियासलाई से सिगार को सुलगाकर लम्बे-लम्बे कश लगाने पड़ते हैं कि कहीं सिगार फिर न बुझ जाय। मैं सचमुच चकित हूँ कि हमारे हृदय में तुम्हारे जैसे लोगों के लिए इतनी सहानुभूति होने पर भी

तुम्हारी अवस्था सुधर नहीं सकी। यह तो मुझे मालूम है कि तुम्हारे इस पतन का कारण तुम नहीं, वह वातावरण है जिसमें तुम्हें पनपना पड़ता है। तुम जानते हो कि मैंने दोस्तों की महफ़िल में कई बार तुम्हारी शोचनीय अवस्था पर आँसू बहाये हैं। मेरी मानवीयता से सभी दोस्त बहुत प्रभावित होते हैं। तालियाँ पीटते हैं और मैं और भी ज़्यादा जोश से तुम्हारे जैसे पद-दलित लोगों का प्रतिनिधित्व करने लगता हूँ। एक बार तो, मुझे यहाँ तक याद है, कि मैंने इस वातावरण की उस गन्दे तालाब से उपमा दी थी, जिसका मालिक कहे कि यह तालाब गन्दा नहीं है, मैं इस तालाब में मच्छर नहीं पनपने दूँगा। और अगर इसमें मच्छर पैदा हुए तो यह तालाब का नहीं, मच्छरों का दोष होगा और मैं उनको तहस-नहस कर दूँगा....बहरे पिण्डो, यह उपमा बहुत सुन्दर है। अगर इससे तुम्हें कुछ तसल्ली मिलती हो तो अगली बार जब मैं बड़े साहब से मिलूँगा, अवसर देखकर इस उपमा का अवश्य ज़िक्र करूँगा। बड़े साहब निश्चय ही बहुत प्रभावित होंगे। कितना मूर्ख है उस तालाब का मालिक ! मच्छरों को ऐसे धमकी देने से क्या फ़ायदा ? तालाब गन्दा है तो मच्छर वहाँ पनपेंगे ही चाहे दुनिया भर को फ़्लिट और मिट्टी के तेल की पिचकारियाँ देकर तालाब के चारों तरफ़ खड़ा कर दिया जाये। मेरे भावावेग को देखा तुमने पिण्डो ! मैं तुम्हारा अफ़सर हूँ, लेकिन फिर भी तुम्हारी हालत बयान करते-करते आँखों में आँसू भर आये हैं। धिक्कार है मुझ पर यदि मैं तुम्हारी रिपोर्ट करूँ। मैं तुम्हारी अवस्था को अच्छी तरह समझता हूँ। अभी मेरी मानवता का खून नहीं हुआ। अभी मेरी अनुभव-शक्ति नष्ट नहीं हुई। अभी मुझमें यह शैतानी इच्छा उत्पन्न नहीं हुई कि तुम्हारी क्रिस्टी आँसू बहा-बहाकर अपनी आँखें अन्धी कर ले और

तुम्हारे बच्चे दर-दर भीख माँगते फिरें.....जाओ, ऐसा भयानक कहकहा न लगाओ। गिरजाघर में जाकर यशू मसीह को धन्यवाद दो कि तुम्हारा वास्ता 'भुभू जैसे भावुक और भले व्यक्ति से पड़ा है। तुम्हारी रिपोर्ट नहीं होगी—

लेकिन यह तो कल रात सोते समय की बातें हैं। आज मैंने पिण्टो की रिपोर्ट कर दी है। मैं ज़रा-सी रिश्तत भी अपने दफ्तर में सहन नहीं कर सकता, मेरे अफ़सरों को यह मालूम हो जाना चाहिए !



चर्च गेट से चौपाटी तक

फिर पेट में गड़बड़। यह कम्बख्त अब मुझे लेकर ही मरेगी। कब तक इसे मज़ाक में उड़ाने की कोशिश करता रहूँगा। डाक्टर ने तो साफ़ कह दिया है, 'भई यह बम्बई है। यहाँ सारा दिन बैठे दफ़्तर में काम करना तो मौत को दावत देना है। यहाँ की हवा में बहुत नमी है। मेदा मुस्त रहता है। राज़ कम-से-कम दो मील सैर किया करो।'

दो मील की सैर ! यहाँ तो जब से नौकरी की है, सौ गज़ नहीं चले। और अब रोज़ाना दो मील चलना होगा। अच्छा, बिना मंज़िल कायम किये तो रास्ता कटने का नहीं। अब वह पुरानी जवानी तो रही नहीं, जब रास्ता चलना ही मंज़िल समझा करते थे। ज़रा किसी रंगीन साड़ी की दूर से झलक देखी कि दिल की धड़कन तेज़ हुई और लगे उसका पीछा करने। तीन-तीन मील तक सपनों की दुनिया बसाते उसके पीछे चले गये। और फिर अगर उस साड़ी पहनने वाली का चेहरा दिखायी दे गया और उसके चेहरे की झुर्रियाँ

देखकर सारा रोमांस खाक में मिल गया तो भी माथे पर त्योरी नहीं पड़ने दी। केवल मुस्करा भर दिये। लेकिन अब तो बिना मतलब घर से एक कदम भी बाहर नहीं पड़ता। सिर्फ जवानी के दिनों में ही 'कला कला के लिए है' का अर्थ समझ में आता है। जवानी के बाद तो चाहे कला हो या औरत या कुछ और, आदमी यही पूछता है, 'इसका मतलब क्या है....यह किसी काम भी आती है?'

उफ़, दो मील ! तो पकड़ा पेट को और लो मेरिन ड्राइव का रास्ता। चर्च गेट से चौपाटी तक कोई दो मील का ही फ़ासला है। हाँफते-काँपते चले जाओ। ज़्यादा इधर-उधर मत देखो। कहीं उलझ के रह जाओगे। जिसने भी अपनी राह छोड़कर इधर-उधर के बारे में कुछ दिलचस्पी दिखायी, वही अपनी मंज़िल पर पहुँचने में नाकाम रहा। चर्च गेट के आस-पास बहुत से रेस्तराँ हैं जो लोगों के दिल बहलाने के केन्द्र बन गये हैं। इनमें न कहीं बहक जाना। यहाँ नाम के दाम हैं, खाने के नहीं। किसी लड़की से प्रेमालाप करना है, किसी दूसरे शहर से आये दोस्त पर रोव डालना है, किसी व्यापारी से व्यवसाय पर बात करनी है, किसी लेखक, कलाकार या फ़िल्मी सितारे से मिलना है तो इन्हीं में से कोई जगह चुन लो। इस पृष्ठभूमि में अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए जाँ दाव-पेंच खेले जा सकते हैं, खेल लो। किसी को न मालूम है तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, क्या काम करते हो, न ही किसी का यह मालूम करने की ज़रूरत है। यहाँ किसी ने अपने व्यक्तित्व के बूते पर अपने को जो भी जामा पहना दिया, वही चल गया। बम्बई विज्ञापन का शहर है। इसमें जिसे अपना ढिंढोरा पीटना आ गया, उसी की पाँचों उगलियाँ घी में हो गयीं। अपनी तो अब एक उँगली भी घी में नहीं। अब तो घी के नाम से ही पेट बल

*** चर्च गेट से चौपाटी तक

खाता है। इस पेट के हाथों बहुत बुरी तरह से पिटे। एक तरह से 'कल' के आदमी हो गये—अवांछित, अनावश्यक !

चलो यह भी शुक्र है कि हम 'कल' ही के आदमी हैं, 'परसों' के नहीं। मेरीन ड्राइव पर तो कुछ 'परसों' के लोग भी बैठे हैं, न जाने कब बिलकुल 'इतिहास' होकर रह जायँ। पर अभी तो वे नियमित रूप से हवाखोरी के लिए मेरीन ड्राइव आते हैं। उनके पेट क्या, उनकी टाँगें भी जवाब दे चुकी हैं। घर से ही छोटी-छोटी कुर्सियाँ ले आते हैं। यहाँ बैठे बहती दुनिया को देखते हैं और अपने हाथ से जो दुनिया निकल गयी, उसकी सोचते हैं। और यह जो बहती दुनिया वाले हैं, 'आज' उनका है। उनके पास इन बूढ़ों के लिए एक नज़र भी नहीं। वे समुद्र की लहरों की तरह उमड़ते चले जा रहे हैं, अपनी-अपनी दुनिया में मस्त....। फिर पेट में अँतड़ियों ने बल खाया। यह जो समुद्र के किनारे-किनारे चौड़ी दीवार है उस पर कुछ देर बैठकर सुस्ता लूँ।

*

एक ओर समुद्र उमड़ा चला आ रहा है। दूसरी तरफ़ लोगों का समुदाय। इन को देखें कुछ देर। यह कॉलेज के लड़के-लड़कियों के पास से गुज़रते वक्त ज़ोर से क्यों बोलने लगते हैं ? और सहज ही उनकी हँसी क्यों फूट पड़ती है ? लड़कियाँ तो अपनी राह चली जायँगी। शायद उनकी तरफ़ देखें भी नहीं। शायद देख लें और मुस्करा भी दें। या हो सकता है, भुकुटी तानकर मुँह फेर लें। तो फिर क्या होगा ? लड़कियाँ चली जायँगी और लड़के-लड़कियों की किसी और टोली को देखकर फिर ज़ोर से बोलने लगेंगे और पहली टोली की भुकुटी अथवा मुस्कराहट सब भूल जायेंगे। यह सब क्यों ? और यह ओठों पर सुखी लगाये,

शर्माती, घबराती लड़की कौन जा रही है ? बिना बाहों का ब्लाउज़ पहना हुआ है इसने । अपने नंगे बाजुओं की आकर्षक गोलाई को लोगों की नज़रों में भी रखना चाहती है और साथ-ही-साथ अपने इस साहस पर शर्माती भी जाती है । राह चलते लोग शायद काफ़ी देर तक अपनी नज़रों से उस लड़की का पीछा करें या उसका उदाहरण देकर कुछ देर तक आपस में आज-कल की लड़कियों पर टीका-टिप्पणी करें । इस नज़रबाज़ी अथवा टीका-टिप्पणी से उस लड़की का क्या बने-बिगड़ेगा ? उसकी पीठ तो उन पीछा करती हुई नज़रों को देखेगी नहीं, न ही उसके कान उस टीका-टिप्पणी को सुनेंगे । तो फिर यह लड़की ऐसी पोशाक क्यों पहनती है ? क्या यह जानने के लिए कि उसके सौन्दर्य-निखार से दर्शक कितना प्रभावित होते हैं ? क्या यह जानने के लिए कि उसके छवि-लावण्य का 'उस' पर क्या असर होगा, जिससे एक दिन उसकी दुनिया को आबाद होना है । उसे अभी क्या मालूम कि बिना बाहों के ब्लाउज़ की कद्र करने वाले और होते हैं और जीवन-साथी बनने वाले और । लेकिन रह ले इस रंगीन भ्रम में, जितनी देर रह सकती है । जब जीवन की यथार्थता के थपेड़े लगेंगे तो यह सब रंगीन सपने, जो अब इतने ठोस मालूम होते हैं, सपने होकर ही रह जायेंगे ।

*

अरे, किस फुर्ती से वह साइकिल निकल गयी । छोटा-सा छोकरा दोनों हाथ छोड़कर चला रहा है । वह वाह-वाह माँगता है । उसे देखकर तो मुस्कराना ही चाहिए । अगर उसे यह भी न महसूस हुआ कि उसकी निपुणता को कोई सराह रहा है तो उसका यह संकट-पूर्ण उत्साह बेकार जायगा । अगर मैं उसके कार्य-कौशल पर एक बार भी मुस्करा दूँ तो

*** चर्च गेट से चौपाटी तक

फिर वह उस बिजली के खम्भे से टकराकर गिर पड़ने पर भी हतात्साह नहीं होगा। वह उठकर कपड़े झाड़ेगा, कनखियों से इधर-उधर देखेगा और फिर चेहरे पर एक खिसियानी-सी मुस्कान लाकर पुनः साइकिल पर चढ़ने की कोशिश करने लगेगा। सीधा रास्ता चलते ज़िन्दगी कुछ फीकी-फीकी लगती है। सीधा रास्ता छोड़कर इधर-उधर की काँटेदार पगडंडियों पर भटक जाने में मज़ा आता है, एक विजय का आभास होता है। पगडंडियाँ फिर सीधे रास्ते पर आ मिलती हैं, फिर इधर-उधर हट जाती हैं। छोटे क्या, बड़े क्या, सभी जीवन की इन वीथियों से होकर चलना चाहते हैं। इस प्रकार सीधे रास्ते से बिलकुल गुमराह भी नहीं होते और उनका कौतूहल भी बना रहता है जिससे जीवन नीरस और रूखा-रूखा नहीं होने पाता।

✽

हैं, यह किसकी साड़ी की चमक हवा में काँप गयी? कोई नहीं, एक साधारण शक्ल-सूरत की लड़की कुछ गुनगुनाती जा रही है। चेहरा किंचित मलीन है। आँखें तेजहीन और गर्दन कुछ झुकी हुई। किस सोच में है यह लड़की जो जवानी में ही बुढ़ापे की तस्वीर हुई जाती है। शायद किसी बेवफ़ा के प्रेम की मारी है, जो प्रेम के पहले वेग में बहुत से वादे कर गया, लेकिन उन्हें निभा न सका। शायद उन्हें निभाने की इच्छा भी उसकी न थी, लेकिन यह भोली उस पर विश्वास किया की। प्रेम की मारी युवती और चिर-दिन के रोगी आदमी में बहुत अंतर नहीं। दोनों परले दर्जे के अन्धविश्वासी हो जाते हैं। प्रियतम की हर बात पर विश्वास, डाक्टर की हर दवाई पर भरोसा—भरोसा और आशा—फिर आशा और निराशा और फिर आशा। ज़िन्दगी की

जंजीर की कड़ियाँ.....! क्यों कल्पना के घोड़े दौड़ा रहे हो। क्या मालूम उस लड़की का ढाँचा ही ऐसा हो। उसका ढला-ढला, बुभा-बुभा दिखायी देना, मेरा अपना दृष्टि-दोष हो या मेरे पेट की गड़बड़। क्यों मुर्दे उखाड़ते हो? हर एक के जीवन में कुछ ऐसे राज़ तो हुआ ही करते हैं जो आदमी अपने-आपको भी बताने में डरता है। तुम किस-किस का राज़ खोलोगे, किस-किस के जीवन का गुत्थियाँ मुलभाओगे। क्या तुम्हारा खयाल है कि यह जो पीले, मुर्भाये हुए चेहरे वाली गुजराती पत्नी अपने पति के साथ आहिस्ता-आहिस्ता जा रही है, अपने दिल में कोई राज़ छिपाये न फिरती होगी? मुझे तो ऐसे लगता है कि अगर उसकी बुझी हुई आँखें और मुर्भाये हुए गाल बोल सकते तो बड़ी दीनता-भरी आवाज़ में उसके पति से कहते, 'देखो, यह तुम्हारे प्यार का शिकार होकर, बिना किसी उलाहने के, आठ बच्चों की माँ बनी है। इसने आज तक कोई आपत्ति नहीं की। लेकिन ज़रा इसकी तरफ़ देखो। क्या यह अब भी माँ बनने के काबिल रही है। बच्चों के बाहुल्य ने तो इसकी ममता को भी कुचलकर रख दिया है। देखो, भगवान के लिए अब नवें बच्चे के लिए इससे तकरार न करना....।'

*

अच्छा अब काफ़ी सुस्ता लिया। अभी चौपाटी बहुत दूर है। आहिस्ता-आहिस्ता चलता जाऊँ, रास्ता तय हो ही जायगा। वह साधारण शक्ल-सूरत वाली लड़की खड़ी होकर समुद्र की ओर क्या देख रही है? सूरज अभी-अभी क्षितिज के नीचे छुड़क गया है। पश्चिम में समुद्र छूता आकाश लाल वर्ण हो उठा है। बढ़ते धुँधलके में समुद्र का पानी काला-सा हो गया है। उसमें लहरें उठती हैं, तड़पती हैं, खो जाती हैं।

चर्च गेट से चौपाटी तक

तट के साथ-साथ घूमती हुई सड़क पर बत्तियाँ रोशन हो गयी हैं, जैसे किसी के गले में हीरों का हार हो। मधुर लालिमा लिये आकाश, श्यामल समुद्र में तड़पती लहरें, घूमती सड़क पर बिजली की बत्तियाँ—साधारण शकल-सूरत वाली लड़की के चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कराहट खेल गयी है। शायद इस दृश्य को देखकर उसके मन में भी वही उपमा साकार हो रही है जो मेरे मन में—एक श्याम वर्ण दुल्हन की, जिसके गले में हीरों का चमकता हार है, जिसके वक्षस्थल में व्यक्त न हो पाती मचलती प्रेम-उमंगें हैं, जिसका मुख अपने प्रियतम को देख लजाकर लाल हो उठा है.....

*

वह साधारण शकल-सूरत वाली लड़की फिर चल पड़ी है। और धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाने लगी है। कवयित्री है क्या? संगीत की देवी है क्या? या केवल अपने मन का सन्ताप मिटाने के लिए धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रही है। उसकी पीठ पर बालों की दो मोटी चोटियाँ लटक रही हैं। लड़की के चलने से यह चोटियाँ भूलती हैं, एक-दूसरे के निकट आती हैं, फिर लौट जाती हैं, लेकिन परस्पर मिलती नहीं। समुद्र ज्वार पर है। लहरें दीवार से टकरा रही हैं, वापस जा रही हैं, अपने ही शोर में गुम हो रही हैं। यह दोनों चोटियाँ एक क्यों नहीं हो जाती? यह लहरें दीवार से टकराकर उसी का अंग क्यों नहीं बन जाती? लेकिन पेश्तर इसके कि वह दीवार की ही गोद में सभा जायें या दीवार को ही अपने आलिगन में ले लें, वे वापस चली जाती हैं। उन्हें कोई शक्ति वापस खींच लेती है। दोनों चोटियाँ एक-दूसरे का सहारा ढूँढ़ रही हैं, लेकिन परस्पर मिलती नहीं। फिर उसी अपनी जगह पर लौट जाती हैं

जहाँ उस लड़की ने बाल बनाकर उन्हें लटका दिया है। शायद इन दोनों चोटियों की तरह यह लड़की भी किसी पुरुष की ओर झुकी हो, उसका सहारा ढूँढ़ा हो, लेकिन आखिर में दोनों वापस अपनी-अपनी जगह चले गये हों, जो ईश्वर ने उनके लिए नियत कर रखी है। दोनों अपनी बेबसी से मजबूर, दोनों अपने भाग्य के शिकार.....।

*

अब यह कमबख्त स्टेट बस घर-घर करती हुई यहाँ आकर रुक गयी है। जलते हुए तेल की कितनी बदबू आ रही है, जैसे अन्दर से बस का सब-कुछ सड़ गया हो। बस में से एक सरदार साहब उतरे हैं और अब एक औरत को, जिसकी गोद में एक बच्चा है, सहारा देकर उतार रहे हैं। उस औरत ने सरदार साहब के हाथ को अच्छी तरह से थाम लिया है कि कहीं उसका यह सहारा छूट न जाय, कहीं बस चल न पड़े। थामे रहो, थामे रहो। यह न पूछो, किसका सहारा कौन है। शायद सरदार साहब ही तुम्हारा हाथ थामकर अपने जीवन को सहारा दे रहे हों। और यह बच्चा ! तुम बच्चे के लिए सहारा हो, या बच्चा तुम्हारा सहारा है। ऐसे प्रश्न न पूछो। इनके उत्तर नहीं हैं। शायद उस साधारण शक्ल-सूरत वाली लड़की ने भी कोई सहारा ही ढूँढ़ा था, लेकिन उस सहारे को अच्छी तरह से थाम न पायी। उस लड़की की बेबसी पर कितनी सुन्दर कहानी लिखी जा सकती है। कौन था उस लड़की का सहारा ? या शायद यह लड़की ही उस नवयुवक का सहारा थी। कहाँ मिले थे पहले-पहले वे दोनों ? चर्च गेट आस-पास के किसी रेस्तराँ में ? और कौन था वह नवयुवक.....?

यह नवयुवक जो उदास चेहरा और आँखों में याचना लिये सिर

चर्च गेट से चौपाटी तक

भुकाये दीवार पर बैठा है, यही तो नहीं है वह ? ठीक है । जब वह लड़की इसके पास से गुज़री तो मैंने इस युवक के चेहरे पर एक हल्की सुखी की लहर दौड़ते देखी है । हैं, वह शायद उठने लगा है । हाँ, वह उठ गया है । वह भी आहिस्ता-आहिस्ता उस लड़की के पीछे, पर कुछ दूरी पर, चलने लगा है । वह आगे बढ़कर लड़की को क्यों नहीं कह देता, 'तुझे देखकर मेरे तुझे हुए चेहरे पर रौनक आ जाती है । तुझे अपने साथ-साथ चलने दे ।' शायद वह इतना साहस कर ही नहीं सकता । जब वह दीवार से उठा, उसके साथ ही एक और औरत भी उठ खड़ी हुई है—युवती, मुन्दर और निखरी-निखरी । लेकिन उठने समय उसके माथे पर एक हल्की-सी त्वोरी पड़ गयी थी । शायद उस युवक की पत्नी है.....।

और एक नौजवान खोज अपनी नौजवान बीवी से हाथ हिला-हिलाकर बातें करता जा रहा है । शायद कह रहा है, 'तू मेरी बीवी है या दूसरों के दिल बहलावे का खिलौना । तुझसे सीधी-सादी साड़ी पहनकर बाहर नहीं निकला जाता ? और यह चेहरे का पाउडर और ओठों की सुखी और आँखों का काजल ! शर्म नहीं आती तुझे ? देख लोग कैसे आँखें फाड़-फाड़कर तुझे देख रहे हैं । तुझे तेरी खूबसूरती चाहिए, लेकिन घर की चारदीवारी में । तुझे तेरी रंगीनी चाहिए, लेकिन घर की चारदीवारी में । तुझे बाहर चलती इस तरह की 'तू' नहीं चाहिए कि लोग तुझे यों आँखों से खा जाने को उत्सुक हों । और उसकी बीवी चुपचाप सब-कुछ सुनती चली जा रही है । उसने अपनी साड़ी के पल्लू को अपने सिर पर ज़रा और आगे सरकाकर उसके दूसरे किनारे को ठोड़ी के नीचे हाथ से पकड़ लिया है जिससे उसका सजा-सजाया मुखड़ा और भी आकर्षक हो उठा है । और वह एक गोल फ्रेम

में जड़ी हुई रंगीन तस्वीर मालूम होने लगी है। लोग और भी प्यासी निगाहों से उसकी तरफ़ देखने लगे हैं.....। और उधर उस निखरी-निखरी सुन्दर युवती ने कुछ ऐसी नज़रों से अपने पति की ओर देखा है मानो कह रही हो, 'मुझे मालूम है तुम मुझे धोखे में रख रहे हो। मुझे तुम पर शक है, बहुत शक। वह जो दो चोटियों वाली लड़की आगे जा रही है, तुम उस पर रीझे हुए हो। साफ़-साफ़ क्यों नहीं कह देते।' और वह नौजवान खोया-खोया-सा चला जा रहा है। कभी-कभी एक लमहे के लिए नज़र उठाकर देख लेता है। बालों की दोनों चोटियाँ लड़की की पीठ पर झूल रही हैं। झूल रही हैं, लेकिन परस्पर मिलती नहीं। अब वह भी कुछ गुनगुनाने लगा है। बहुत धीमे-धीमे। और उसकी पत्नी का सन्देह और भी बढ़ गया है.....।

क्या हो सकता है इस नौजवान का नाम ? अनूप ? नाम तो बुरा नहीं। शायद उसमें गुण भी नाम के अनुरूप हों। सौन्दर्य की चाह, संगीत का प्रेम, हृदय की भावुकता। और उसकी पत्नी का नाम ? उसने अपने पति की ओर कुछ ज़्यादा ही सन्देह भरी नज़रों से देखा है। वह ज़रूर अपने पति के फीके जीवन का कारण है। पर यह भी तो हो सकता है न कि उसका अपना जीवन ही एक कर्ण कहानी हो, और वह पति उसका कारण हो। पत्नी का नाम क्या होगा ? मृदुला होना चाहिए। बाहर से मृदु, भीतर से कौन जाने क्या ? और उस साधारण शक्ल-सूरत वाली लड़की का नाम ? कम-से-कम उसका नाम साधारण नहीं होगा। अरुणा....हाँ ज़रूर अरुणा ही होगा। एक आदमी और दो औरतें। दो आदमी और एक औरत। युग-युग की कहानियों का स्थायी विषय।

शायद अनूप को शौक था संगीत का। लेकिन उसकी अपनी

आवाज़ सुरीली नहीं थी। कोई अच्छा गाना सुनाता तो मस्त होकर भूमने लगता। लेकिन जब खुद स्वर गाने का प्रयास करता तो निराशा होती। स्वर दिल में बजता, दिल की दीवारों से टकराता, लेकिन गले तक पहुँचते-पहुँचते बेसुरा हो जाता। अपनी यह त्रुटि अनूप को बहुत खटकती। वह अपने-आपको उस पुजारी की तरह पाता जिसके पास पूजा का सामान हो, हृदय में पूजा की उमंग भी हो, लेकिन जिसे मन्दिर के द्वार बन्द मिलें।

और तब अनूप को अरुणा मिल गयी। उसके जीवन में नवप्रभात की लालिमा छिटक आयी। अरुणा में बहुत से गुण थे। लेकिन सब से बढ़कर उसका गुण था उसकी सुरीली आवाज़। अनूप को अपने जीवन में जिस चीज़ का अभाव इतनी तीव्रता से खटकता था, वह अरुणा के सामीप्य से दूर हो गया। अरुणा भी उसकी और झुकी। लेकिन इतने समीप होते हुए भी अनूप उसका न हो पाया। अनूप कहने लगा, 'मेरी हस्ती ही कुछ ऐसी है कि मैं पूर्णरूप से किसी एक औरत का होकर नहीं रह सकता। मैं सौन्दर्य का पुजारी हूँ। समस्त सौन्दर्य सिमटकर एक औरत में नहीं आ सकता। प्रकृति का भी यही नियम है। उसका समस्त सौन्दर्य फूल की पँखुड़ी में ही निहित नहीं है, न ही घास पर चमकते ओस-विन्दु में, न जल-प्रपात के अविरल संगीत में। मैं सारी प्रकृति को अपनाता हूँ, सब औरतों से एकबारगी ही प्यार करता हूँ—किसी के ओठों की मुस्कराहट से, किसी की आँखों की चमक से, किसी की ठोड़ी की थिरकन से। तुम्हें यह सब सहा नहीं होगा। मुझे याद है कि जब एक दिन तुम्हारी सहेलियों की बात चली थी और मैंने कहा था कि तुम्हारी सहेली नजमा की मुस्कराहट भील पर हवा से बिखरती हुई तरंगों की तरह मनमोहक है तो तुमने अपने निचले ओठ

को दाँतों में दबाकर इतने जोर से काटा था कि उसमें से खून बहने को हो गया था। और मुझे तुम्हारी आँखों में क्रहर और बेवसी के आँसुओं की झलक नज़र आयी थी। यह जानते हुए मैं कैसे तुम्हारे जीवन को दुखमय और कटु बना सकता हूँ.....।

अरे, यह भी खूब रहा। मैं अनूप के किस्से में कितना बहक गया ? सड़क के दायीं ओर बड़ी-बड़ी इमारतें करीने से क़तार बाँधे खड़ी हैं। उनकी लाइन ख़त्म होने को आयी। कितना पैसा होगा उन सेठों के पास, जो इन इमारतों के मालिक हैं। इनमें से एक-दो को तो मैं भी जानता हूँ। उनका भी पेट उनसे रूठा हुआ है। पैसा तो उनको पच गया है, लेकिन रोटी नहीं पचती। उनकी सेहत का एकमात्र सहारा रह गया है, डाक्टर की बतायी हुई दवाइयाँ और दूध में भिगोई हुई डबल रोटी.....और इधर बायीं ओर दीवार में एक छोटा-सा रास्ता खुलता है जिस पर लिखा है, 'लोग यहाँ मुर्दों की राख समुद्र में डाल सकते हैं।' मुर्दों की राख ! सब मुर्दों की राख एक जैसी ही होती है। मरने के बाद शायद मेरी भी राख वैसी ही होगी जैसी उन सेठों की.... और मृदुला सोच रही है कि मेरे पति ने तो मुझे जीते-जी ही राख कर दिया है। और यह सब उसी अरुणा का जादू है। कहते हैं, 'तुम मेरी पत्नी हो। तुम्हारा मुझ पर बहुत कुछ अधिकार है। लेकिन इस अधिकार के बिरते पर मेरा जीवन बर्बाद न करो। सौन्दर्योपासना के बिना मैं 'मैं' नहीं रह सकता।' छिः। लड़कियों को ताकते रहना कहाँ की सौन्दर्योपासना है ? उस दिन शोभना से कहने लगे, 'जहाँ तुम बैठी हो वहाँ बिजली की रोशनी तुम्हारी बहकी लटों में से झाँकने का प्रयत्न कर रही है, जिससे तुम्हारे दाँयें गाल पर, आँख के ज़रा नीचे, उन लटों की परछाई पड़ने लगी है, मानो रोशनी अँधेरे की

आड़ लेकर तुम्हारे सौन्दर्य को छिप-छिपकर निहार रही हों.....’
बेचारी शोभना कितनी भैंपी । मैं तो शर्म से गड़ ही गयी ।

*

घर-र-र....घर....र....र । एक, दो, तीन.....दस । कितनी मिलिटरी की लारियाँ हैं । यदि कोई इनके नीचे आ जाय तो चक्की में गेहूँ की तरह पिस जाय । बायीं ओर दीवार में सीढ़ियाँ हैं, नीचे समुद्र तक । दीवार के पास लिखा है, ‘लोगों को चेतावनी दी जाती है कि यहाँ नहाना खतरनाक है ।’ और नीचे समुद्र में दो-तीन आदमी धोती पहने हाथों से जनेऊ घुमाते नहा रहे हैं । दीवार पर चालीस-बयालिस बरस का एक आदमी बैठा है । उसकी गोद में एक बच्चा है, जिसे वह अनजाने अपना घुटना हिला-हिलाकर खेला रहा है । अनूप का मन सहसा चीत्कार कर उठा है, ‘नहीं, नहीं, मैं उस आदमी की तरह नहीं होना चाहता—बेकस, बेबस, बेजान ! मेरे मरने के बाद मेरी राख भी शायद इसकी राख की तरह ही हो, लेकिन जीते जी मैं इस साँस लेते मुर्दे की तरह नहीं होना चाहता । मेरी सजीवता का कारण है अरुणा । मृदुला योंही जलती है । मैं शादी के बाद क्या कभी अरुणा से मिला हूँ, क्या उससे कभी मिलने की इच्छा भी की है ! लेकिन मृदुला ! मृदुला को कैसे समझाऊँ कि मेरा अरुणा से कोई भौतिक नाता नहीं । उसके अन्दर जो संगीत है, उसने मेरे दिल के तारों को छेड़ा है । मेरे लिए वह औरत नहीं, संगीत की साकार आत्मा है । तुम क्यों समझती हो कि जब मैं अरुणा की तस्वीर की तरफ़ देखता हूँ तो मुझे उसके शरीर की इच्छा होती है । यह तुम पाप करती हो । प्रकृति के दिये हुए सौन्दर्य के प्रति घोर पाप ।’ लेकिन

मृदुला कहती है, 'तुम्हारी नीयत साफ़ नहीं। तुम अपनी कमज़ोरियों को छिपाने के लिए शब्द-जाल का सहारा ले रहे हो।' काश मृदुला ईर्ष्या और सन्देह के भँवर से ऊपर उठकर मानव-सम्बन्ध को उसके अविकृत, वास्तविक रूप में देख पाती ! यदि मैं सौन्दर्य को समुद्र पर छिटकी चाँदनी में, बालारुण से रंजित क्षितिज की लालिमा में, बहते समीर के आलिगन में, नाचते तरुण पुष्प में, पहाड़ से झरते जल प्रपात के निरन्तर संगीत में ढूँढ़ सकता हूँ और इससे तुम्हारे दिल में जलन पैदा नहीं होती तो जब मैं उसी सौन्दर्य को औरत में ढूँढ़ने को कोशिश करता हूँ तो क्यों तुम्हारी आँखों पर सन्देह और ईर्ष्या का पर्दा आ जाता है। क्या हम इस क्षुद्र सन्देह और ईर्ष्या के आवरण को भेदकर नैसर्गिक सौन्दर्य को कभी न पहचान पायेंगे। हमारा दृष्टि-क्षेत्र कितना सीमित है.....।

और अरुणा और मृदुला और अनूप चुपचाप वैसे ही चले जा रहे हैं, किसी सोच में मस्त, किसी ध्यान में डूबे हुए। उनके चारों तरफ़ एक दुनिया बहे चली जा रही है, अरुणा, मृदुला और अनूप के मन में क्या प्रश्न उठ रहे हैं, उनसे बेखबर, उनसे बेपरवाह। अरुणा की पीठ पर बालों की दाँनों चोटियाँ वैसे ही झूल रही हैं, लेकिन मिल नहीं सकतीं। और सड़क के उस पार तारापोर वाला का प्रसिद्ध मछलीघर है, जिसके अन्दर शीशे के छोटे-बड़े डिब्बों में तरह-तरह की रंग-विरंगी मछलियाँ हैं। वे करीने से खड़ी इमारतें भी इस मछलीघर को तरह ही हैं, छोटे-छोटे डिब्बों में विभाजित। उन डिब्बों में लोग रहते हैं। भाँति-भाँति के। सिन्ध के, पंजाब के, बंगाल के, गुजरात के। लेकिन उन डिब्बों में उनका जीवन भी वैसे ही सीमित है, जैसे मछलीघर के डिब्बों में मछलियों का। डिब्बों में रहने वाले एक-दूसरे के कितने पास

हैं, लेकिन फिर भी कितनी दूर। परस्पर मिल नहीं पाते। बीच में शीशे की दीवारें हैं, छुद्रता के पदें हैं.....। और ज़रा आगे योगाश्रम है। यहाँ योगासन सिखाये जाते हैं। सभी क्रिस्म के आसन। शीर्षासन भी, यानि सिर के बल खड़ा होना। और जब आदमी ऐसे खड़ा होता है तो उसे सारी चीज़ें औंधी दिखायी देती हैं। और हमारा जीवन भी शीर्षासन ही तो है, नहीं तो अरुणा और मृदुला और अनूप को अपने प्रश्नों का उत्तर कभी का मिल गया होता। और बायीं तरफ़ कई लाक़ के खर्चे से बना हुआ नहाने का तालाब है। केवल हिन्दुओं के लिए। और ऐसे ही कहीं मुसलमानों के लिए तालाब होंगे, कहीं ईसाइयों के लिए। अभी भारतवर्ष में आदमी नहीं रहते, केवल हिन्दू और मुसलमान, सिख और ईसाई बसते हैं। सभी अपने-अपने डिब्बों में बन्द.....।

लेकिन सौन्दर्य किसी डिब्बे में बन्द नहीं है। दीवार पर बैठे हुए लोग सौन्दर्य को देख-देखकर खुश हो रहे हैं, बायीं ओर समुद्र की तरंगों के सौन्दर्य को, वृत्ताकार* क्षितिज के सौन्दर्य को, दायीं ओर रानी के हार के सौन्दर्य को और आ-जा रही युवतियों के सौन्दर्य को, हिन्दू युवतियों के, मुसलमान युवतियों के, पारसी युवतियों के.....।

चौपाटी आ गयी। मंज़िल तय हो गयी। लोगों की बहुत भीड़ है। गर्म चने, भेलपूरी, दहीबड़े, गोल गप्पे और चाट के खोंचे वाले ग्राहकों से घिरे हैं। चारों तरफ़ शोर मचा हुआ है। जीवन का संघर्ष जारी है। कुछ लोग धर्म के नाम पर चिल्ला रहे हैं, कुछ राजनीति पर व्याख्यान दे रहे हैं, कुछ ताक़त बढ़ाने की दवाइयाँ बेचने में व्यस्त हैं, कुछ कबड्डी खेलने में। मालूम नहीं इनकी मंज़िल कहाँ है। लेकिन यह सब भी अपने समय पर, अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जायेंगे। अनूप

नी, मृदुला भी, अरुणा भी। मैं भी दो-ढाई मील चलकर अपने ठिकाने पर पहुँच गया हूँ। लेकिन कौन हैं ये अनूप और मृदुला और अरुणा ? क्या नाम हैं वास्तव में इनके ? क्या सम्बन्ध है आपस में इनका ? केधर है मंज़िल इनकी ? कौन जाने ? पर रहा खूब ! कैसे मेरी फल्पना ने शब्दों का ताना-बाना बुनकर इन्हें एक कहानी में जकड़ लिया। चलो अच्छा हुआ। इनके कारण रास्ता तय हो गया। यह मेरे अस्ते की पगडंडियाँ-से बन गये। दिलचस्पी भी बनी रही और रास्ता भी छोटा हो गया।.....

.....फिर पेट में वही गड़बड़। इस लम्बी सैर से कुछ फायदा नहीं हुआ। डाक्टर का निदान शायद ग़लत है। चलो एक दिन तो मरना है ही, आज कुछ चटपटी चीज़ ही खा लें।



आती है ।....उसके व्यक्तित्व में पूरब-पच्छिम का अद्भुत सम्मिश्रण है । लेकिन पूरब की घुटन वहाँ नहीं । उसमें पूरब की कोमलता और शालीनता है, और उस पर पच्छिम की सभ्यता का मुलम्मा चढ़ा है । उसके पास कल्पना भी है और बुद्धि भी । सच तो यह है कि उसमें वह सब-कुछ है जो एक युवती को पुरुष के लिए आकर्षक और वाँछनीय बना सकता है । फिर भी मैं उससे प्रेम नहीं कर पाया । सोच रहा हूँ, उसे एक पत्र लिख दूँ । उसमें कहूँ—मैडम, तुम्हारा खत मिला । मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूँ, पर मुझे खेद है कि मेरे प्रति जो तुम्हारे उद्गार हैं उनके प्रतिदान में मैं नितान्त असमर्थ रहा हूँ । तुम अपनी बुद्धि की कुशाग्रता को अपनी प्रमुख विशेषता समझती हो । मेरी दृष्टि में वही तुम्हारी सब से बड़ी कमजोरी है । दुर्भाग्य से मैंने भी एक प्रतिभाशाली दिमाग पाया है । इसके लिए मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ । यह भगवान की देन है । प्रायः मैं सोचता हूँ कि यदि मेरे दिमाग में दुनिया भर की किताबों का ज्ञान न भरा होता, मैं केवल किताबें ही न होता, कुछ अपना आप भी होता तो जीवन में कहीं अधिक सुखी रहता । तुम कहती हो, तुमने मुझे सदा मुस्कराते ही देखा है । यह मैं स्वीकार करता हूँ । लेकिन यह मुस्कराहट तो हृदय के घावों को छिपाने का साधन-मात्र है, उनका मरहम नहीं । और इन घावों का स्रोत है मेरा असाधारण बौद्धिक विकास, जैसे अनजाने ही तुम अपनी बुद्धि की प्रखरता का शिकार स्वयं हो ।.....तुम्हारे पास धन है, सौन्दर्य है, प्रखर बुद्धि है । तुम जिस समाज में जाओगी, तुम्हें प्रशंसकों की कमी न होगी । तुम्हारी प्रतिभा, तुम्हारे चातुर्य को देखकर क्लब के नवयुवक वाह वाह कर उठेंगे । तुम उनके दिल और दिमाग पर नशे की तरह जो छा जाती हो और उनके शरीर रेशमी कपड़े की सरसराहट की तरह सिहर उठते

हैं। पर मैडम, तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम्हारे हाथ के नाखूनों में इतनी योग्यता है जितनी समस्त क्लबों के सभी नवयुवकों के दिमागों में मिलकर भी नहीं है। मेरा दुर्भाग्य या सौभाग्य कि मैं उन क्लबों में नहीं जाता। जाऊँ भी किस लिए? मेरे पास उन युवकों के लिए उपेक्षा के सिवा कुछ नहीं है। यह मेरा अहंकार है न? क्यों न हो? ईश्वर ने तुम्हें सौन्दर्य दिया है, इसका तुम्हें उचित गर्व है। उसको बनाये रखने और उसको बढ़ाने में तुम सदा प्रयत्नशील रहती हो। मेरा सौन्दर्य मेरा मस्तिष्क है। मैं प्रायः उन्हीं लोगों से मिलकर प्रसन्न होता हूँ, जिनमें कुछ प्रतिभा हो, कुछ विद्वत्ता हो। इसे डींग हाँकना न समझो और बुरा न मानो तो कहूँ, तुम्हें खुश होना चाहिए कि मैं सप्ताह में दो बार तुम्हारे घर आता रहा, औरों के यहाँ तो मैं प्रायः महीनों में एक बार गया हूँ। तुमसे बातें करना मुझे अच्छा लगता है। पर इस भूल में न रहना कि यह तुम्हारे खिले फूल का-सा मदमाता सौन्दर्य था जो मुझे तुम्हारे पास खींच लाया करता था। मुझे तुम्हारे तन की इच्छा नहीं, मेरे लिए तुम्हारा आकर्षण नितान्त मानसिक है। मैंने दुनिया में दूर-दूर तक भ्रमण किया है, बड़ी-बड़ी सुन्दर रमणियों से मिला हूँ। उनमें से कई-एक तुमसे भी अधिक सुन्दर थीं। पर उनमें एक बात होती थी जो तुम में नहीं है। उनका शरीर भी तुम्हारी तरह फूल के समान ताज़ा और निखरा होता था, पर उनके कन्धे एक दार्शनिक मस्तिष्क के बोझ से आज़ाद होते थे। मुझे उनकी चाह होती थी। वे अपने-आपको मुझे समर्पित करतीं तो मुझे आपत्ति न होती। उनका सर्वस्व होता उनका शरीर, और शारीरिक आनन्द देने की इच्छा और क्षमता। तुम्हारा शरीर विकसित पुष्प सही, तुम्हें उसका अभिमान सही, पर तुम्हारा दिमाग तुम्हारे शरीर पर बहुत हावी है। भगवान् ने शायद भूल से ही तुम्हारी मूरत इतनी मनमोहक बना

आती है ।....उसके व्यक्तित्व में पूरव-पच्छिम का अद्भुत सम्मिश्रण है । लेकिन पूरव की घुटन वहाँ नहीं । उसमें पूरव की कोमलता और शालीनता है, और उस पर पच्छिम की सभ्यता का मुलम्मा चढ़ा है । उसके पास कल्पना भी है और बुद्धि भी । सच तो यह है कि उसमें वह सब-कुछ है जो एक युवती को पुरुष के लिए आकर्षक और वाँछनीय बना सकता है । फिर भी मैं उससे प्रेम नहीं कर पाया । सोच रहा हूँ, उसे एक पत्र लिख दूँ । उससे कहूँ—मैडम, तुम्हारा खत मिला । मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूँ, पर मुझे खेद है कि मेरे प्रति जो तुम्हारे उद्गार हैं उनके प्रतिदान में मैं नितान्त असमर्थ रहा हूँ । तुम अपनी बुद्धि की कुशाग्रता को अपनी प्रमुख विशेषता समझती हो । मेरी दृष्टि में वही तुम्हारी सब से बड़ी कमज़ोरी है । दुर्भाग्य से मैंने भी एक प्रतिभाशाली दिमाग पाया है । इसके लिए मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ । यह भगवान की देन है । प्रायः मैं सोचता हूँ कि यदि मेरे दिमाग में दुनिया भर की किताबों का ज्ञान न भरा होता, मैं केवल किताबें ही न होता, कुछ अपना आप भी होता तो जीवन में कहीं अधिक सुखी रहता । तुम कहती हो, तुमने मुझे सदा मुस्कराते ही देखा है । यह मैं स्वीकार करता हूँ । लेकिन यह मुस्कराहट तो हृदय के घावों को छिपाने का साधन-मात्र है, उनका मरहम नहीं । और इन घावों का स्रोत है मेरा असाधारण बौद्धिक विकास, जैसे अनजाने ही तुम अपनी बुद्धि की प्रखरता का शिकार स्वयं हो ।.....तुम्हारे पास धन है, सौन्दर्य है, प्रखर बुद्धि है । तुम जिस समाज में जाओगी, तुम्हें प्रशंसकों की कमी न होगी । तुम्हारी प्रतिभा, तुम्हारे चातुर्य को देखकर क्लब के नवयुवक वाह वाह कर उठेंगे । तुम उनके दिल और दिमाग पर नशे की तरह जो छा जाती हो और उनके शरीर रेशमी कपड़े की सरसराहट की तरह सिहर उठते

हैं। पर मैडम, तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम्हारे हाथ के नाखूनों में इतनी योग्यता है जितनी समस्त क्लबों के सभी नवयुवकों के दिमागों में मिलकर भी नहीं है। मेरा दुर्भाग्य या सौभाग्य कि मैं उन क्लबों में नहीं जाता। जाऊँ भी किस लिए? मेरे पास उन युवकों के लिए उपेक्षा के सिवा कुछ नहीं है। यह मेरा अहंकार है न? क्यों न हो? ईश्वर ने तुम्हें सौन्दर्य दिया है, इसका तुम्हें उचित गर्व है। उसको बनाये रखने और उसको बढ़ाने में तुम सदा प्रयत्नशील रहती हो। मेरा सौन्दर्य मेरा मस्तिष्क है। मैं प्रायः उन्हीं लोगों से मिलकर प्रसन्न होता हूँ, जिनमें कुछ प्रतिभा हो, कुछ विद्वत्ता हो। इसे डींग हाँकना न समझो और बुरा न मानो तो कहूँ, तुम्हें खुश होना चाहिए कि मैं सप्ताह में दो बार तुम्हारे घर आता रहा, औरों के यहाँ तो मैं प्रायः महीनों में एक बार गया हूँ। तुमसे बातें करना मुझे अच्छा लगता है। पर इस भूल में न रहना कि यह तुम्हारे खिले फूल का-सा मदमाता सौन्दर्य था जो मुझे तुम्हारे पास खींच लाया करता था। मुझे तुम्हारे तन की इच्छा नहीं, मेरे लिए तुम्हारा आकर्षण नितान्त मानसिक है। मैंने दुनिया में दूर-दूर तक भ्रमण किया है, बड़ी-बड़ी सुन्दर रमणियों से मिला हूँ। उनमें से कई-एक तुमसे भी अधिक सुन्दर थीं। पर उनमें एक बात होती थी जो तुम में नहीं है। उनका शरीर भी तुम्हारी तरह फूल के समान ताज़ा और निखरा होता था, पर उनके कन्धे एक दार्शनिक मस्तिष्क के बोझ से आज़ाद होते थे। मुझे उनकी चाह होती थी। वे अपने-आपको मुझे समर्पित करतीं तो मुझे आपत्ति न होती। उनका सर्वस्व होता उनका शरीर, और शारीरिक आनन्द देने की इच्छा और क्षमता। तुम्हारा शरीर विकसित पुष्प सही, तुम्हें उसका अभिमान सही, पर तुम्हारा दिमाग तुम्हारे शरीर पर बहुत हावी है। भगवान् ने शायद भूल से ही तुम्हारी मूरत इतनी मनमोहक बना

डाली। तुम्हारी आकृति साधारण होती तो भी काम चल जाता। तुम्हें गर्व भी वास्तव में अपने तन पर नहीं, मस्तिष्क पर है। यों भी सौन्दर्य के माप की सब की अपनी-अपनी कसौटी होती है। मैं तो अपनी ही बात कह सकता हूँ। मेरी धारणा के अनुसार आदर्श पत्नी वही हो सकती है जो साधारणतया सरल हो, सीधी हो, जिसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति में कुछ स्वभाविकता हो, कुछ प्यारा-सा अल्हड़पन का अन्दाज़ हो, लेकिन जिसमें कभी-कभी प्रतिभा की बिजली कौंध जाती हो। मैं मजदूर की तरह अपने हाथ से परिश्रम नहीं करता। ऐसे श्रमिकों की कामानुभूति बहुत तीव्र होती है। उन्हें स्त्री चाहिए, कोई स्त्री। किन्तु मेरा सब काम बौद्धिक है। मुझे तो ऐसी जीवन-संगिनी चाहिए, जो एक ऐसे काव्यमय वातावरण के समान हो, जिसमें मेरे थके दिमाग की दवा भी हो, मेरी कल्पना के लिए प्रेरणा भी, और मेरे तृपित हृदय के लिए तृप्ति भी। मुझे डर है कि तुम कभी मेरे इस माप-तोल पर पूर्ण न उतरती। तुम्हारे और मेरे बीच तुम्हारी मेधा की एक ऐसी खाई है जिसको पाट सकना मेरे लिए लगभग असम्भव है। तुम्हारी प्यार की बातें मीठी सही, पर बुद्धि से सनी होंगी, जैसे किसी पुस्तक के पृष्ठ पढ़े जा रहे हों। वे बनावटी लगेंगी, तुम्हें भी, मुझे भी। तुम्हारा प्रेमालाप औपचारिक और किताबी होगा। तुम विश्वास करो कि तुम्हारी मुलाकात के पहले दो-एक अवसरों के अतिरिक्त मुझे कभी तुम्हारे शरीर का निरावरण देखने की इच्छा नहीं हुई। पहले दो-एक अवसरों की बात और थी। उन मुलाकातों में मैं तुम्हारा वाह्य-सौन्दर्य मात्र ही देख पाया था—ऐसा सौन्दर्य जिसे पहली बार देखकर मुझे लगा था जैसे मेरे जीवन के अंधेरे कोनों में हज़ारों बत्तियाँ सहसा टिमटिमा उठी हों, जैसे मेरे मन के मरुस्थल में लाखों फूल एकबारगी ही खिल उठे हों, जैसे मेरे हृदय

के सारे तार एक साथ ही भङ्कृत हो उठे हों। मैं तो तुम्हारा ही होकर रह गया था। यदि तुम इन अवसरों पर चुप रहतीं (हे भगवान्, तुम चुप क्यों न रहतीं ?) तो तुम्हारे प्रति मेरी कामना बनी रहती। तुम्हें तो वह पहला अवसर याद ही होगा। संगीत-केन्द्र बम्बई के प्रवर्तकों की पहली बैठक थी। दामोदर से तुम परिचित थीं। वह तुम्हें भी साथ लेता आया था। वह तुम्हारा बड़ा प्रशंसक है। तुम्हारी चर्चा करते समय उसकी आँखों में एक उल्लास-सा छा जाता है जैसे अपनी निजी सम्पत्ति का बखान कर रहा हो। उसने कई बार तुम्हारा जिक्र किया था। लेकिन सच जानो, मैंने कल्पना भी न की थी कि तुम इतनी सुन्दर होगी। तुम शायद अब मेरी इस स्वीकारोक्ति पर हँसो कि पुरषोत्तम और मैं दोनों ही तुम्हारी सुन्दरता के शिकार होकर रह गये थे। तुम कहती हो कि उस दिन मैंने अपनी बातों से, अपने ज्ञान के विस्तार से, अपने विचारों के गाम्भीर्य से, उनकी अभिव्यक्ति के अनूठे ढंग से तुम्हें बहुत प्रभावित किया था। युवतियों के सामने मेरी वाग-सरिता यों भी बाढ़ पर आ जाया करती है, और उस रोज़ तो मेरी खास कोशिश थी कि उस बाढ़ में तुम ऐसे बहो, ऐसे बहो कि किनारा तक न मिले। मैं हर एक बात, हर एक वाक्य, हर एक शब्द बहुत सचेत होकर, मानो तुम्हारे लिए ही कह रहा था। बीच-बीच में कनखियों से देख भी लेता था कि अब मेरे विनोद से तुम्हारे अधर मृदुल-हास में थोड़े खुल गये हैं, अब मेरे विचारों की सराहना में तुम्हारी आँखों में चमक आ गयी है, अब मेरे वाक्-चातुर्य की प्रशंसा में तुम्हारा चेहरा खिल उठा है। तुम्हारी दायीं ओर बैठा हुआ तुम्हारा छोटा भाई विलियम बार-बार मेरी दृष्टि का अनुकरण कर, मुझे परेशान कर रहा था। और मुझे लग रहा था कि मेरी बातों का निखार आधा हुआ जा रहा है। फिर भी तुम कहती हो कि उस दिन मैंने अपनी

बातों से तुम्हें सुग्ध कर दिया। मुझे ऐसा लगता है, उसी दिन से तुम्हारी बुद्धि पर प्रेम की छाया पड़ने लगी थी, जिसके कारण मेरी हर एक बात तुम्हें इन्द्रधनुष की तरह रंगीन और निर्भर के संगीत-सी स्वभाविक प्रतीत होने लगी थी। तुम्हें तो मेरी किसी बात का विश्वास नहीं होता। तुम कहती हो कि मैं कभी गम्भीर हो ही नहीं सकता कि मेरी प्रत्येक बात व्यंग्य से भरी होती है। पर मैं तुमको कैसे विश्वास दिलाऊँ कि उस पहले दिन मैं मन-ही-मन अपना सिर धुन रहा था। बम्बई जैसे शहर में जहाँ रुपये की खन-खन ही मनुष्य की सफलता की द्योतक है, कला-सम्बन्धी किसी संस्था को चलाना कोई सहज बात नहीं। बम्बई के अधिकांश निवासी मुझे कला और साहित्य के मामले में नितान्त कोरे दिखायी देते हैं। तुम तो उस मरुभूमि में एक शादल हो। इतने प्रयत्नों के बाद मैं संगीत-केन्द्र के संस्थापन का आयोजन कर रहा था। और पहले ही दिन संगीत की तरह मेरे हृदय को हिलोरती-सी तुम मेरे जीवन में आ गयीं। और उस पहली हिलोर ने ही मेरे लिए फ़ैसला कर दिया कि अब जब तक तुम मेरी न हो जाओगी, मेरे आने वाले सभी दिन तुम्हें जीतने में ख़त्म होंगे। उस समय मेरा खयाल था कि अन्य तरुणियों की तरह तुम्हारे कंधे भी प्रखर मेधावी मस्तिष्क के भार से स्वतन्त्र होंगे, तुम भी उन्हीं के समान भोली और सरल होगी, संगीत की तरह अर्थ-हीन पर संगीत ही की तरह हृदय को पुलकित कर देने वाली। तुम मेरे अहम् और आत्मविश्वास से अनभिज्ञ हो। मुझे यह कैसे सहन हो सकता था कि तुम मेरे इतने निकट और मुझ पर आसक्त होकर न रहो। पर इस उधेड़-बुन में मुझे अपने संगीत-केन्द्र का भविष्य बड़ा धुँधला दिखायी देने लगा। मैं दोनों में से एक ही काम पूरे उत्साह से कर सकता था। तुम्हारे पीछे परेशान फिरना या संगीत-केन्द्र को सफल

बनाना । मुझे क्या मालूम था कि तुमसे दो एक मुलाकातों के बाद ही तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध केवल मानसिक होकर रह जायगा ।

पहली भेंट के बाद लगभग एक महीने तक मुझे तुमसे मिलने का संयोग नहीं हुआ । हाँ, यदि कहीं मुझे यह पता चल जाता कि तुम मुझसे इस प्रकार प्रभावित हुई हो तो मैं कोई-न-कोई बहाना ढूँढ़कर कभी का तुमसे मिलने आ गया होता । यह भी मेरा सौभाग्य ही समझो कि मैं तुम्हें दूसरी बार देख पाया । तुमसे मिलने की इच्छा तो थी, पर संकोच कहो या आलस्य, मैंने दूसरी बार मिलने का उद्यम नहीं किया । सम्भव है कि यदि यह दूसरा अवसर हाथ न आता तो मैं शायद फिर कभी तुमसे मिल ही न पाता । केवल तुम्हारे सौन्दर्य की स्मृति हृदय को गुदगुदाती रहती । फिर आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हारी इस स्मृति की रेखाएँ समुद्रतट पर बालू में बनी लकीरों की तरह धुँधली होती जातीं, और हो सकता है समय के प्रवाह के साथ एक रोज़ बिलकुल मिट जातीं । संसार में दुख-सुख की कोई ऐसी अनुभूति नहीं है जिसको भावना की उसी तीव्रता से आजीवन याद रखा जा सके ।.....वह अवसर इस प्रकार मिला कि एक रोज़ दामोदर के यहाँ मेरा दोपहर का खाना था । बातों-ही-बातों में मुझे पता चला कि वह तुमसे तीन बजे मिलने जायगा । मैंने अपने आन्तरिक मनोभावों को छिपाते हुए कहा कि यदि उसे कोई आपत्ति न हो तो मैं भी साथ चला चलूँ, मिस बेनर्जी से संगीत केन्द्र की सदस्या बनने के लिए अनुरोध करना है । दामोदर ने कोई आपत्ति नहीं की । बेचारा बड़ा भला आदमी है । और फिर मैं भी तुमसे तीन बजे मिलने चला आया । बाकी तुम्हें मालूम ही है । तीन बजे आया था, चार बज गये, पाँच बज गये, छः बज गये । तब कहीं विदा होने की

नौबत आयी । तीन घंटे । दूसरी भेंट में ही तुम मुझसे तीन घंटे बातें करती रहीं । दामोदर से तुम्हारी बहुत बातें न हो सकीं । वह अपने मन में चकित तो बहुत हुआ होगा । और जब हम चलने लगे तो तुमने मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा, (तुम्हें हाथ मिलाते हुए क्या हो जाता है जो बातें किये जाती हो, बातें किये जाती हो और तुम्हारा हाथ कैसे ही मेरे हाथ में पड़ा रहता है) 'यदि आपको कोई आपत्ति न हो (आह मुझे आपत्ति ! मैं तो उस वक्त हवा में उड़ा जा रहा था) तो अगले शुक्रवार को मेरे यहाँ चाय पीने आइए !' और फिर वैसे ही मेरे हाथ में हाथ रखे तुमने दामोदर की तरफ देखकर कहा था, 'तुम भी चले आना दामोदर !'

यह भी खूब रही । एक ही वाक्य में तुमने तो बेचारे दामोदर की दुनिया ही उलट दी । उस रोज़ मैं 'उसके साथ' आया था, अब से 'वह' मेरे साथ आयेगा ।

खैर, दामोदर तुम्हारे प्रेम का दम भरता हो या न भरता हो (बेचारा बड़ा भला आदमी है !) पर पुरषोत्तम तुम पर बुरी तरह लड्डू हैं । उसको भी तो चाय पर बुलाना था । अब जब मैं उन पिछली बातों को याद करता हूँ तो सोचता हूँ कि तुम्हें पुरषोत्तम को प्रोत्साहित करना चाहिए था । हो सकता है पुरषोत्तम कानून के मामलों में निष्णात हो, पर यों वह मुझे सदा बूदम लगा है । कला और हृदय की सूक्ष्म अभिव्यक्ति से एकदम कोरा । बुद्धि की इस स्थूलता को गुण कहो या अवगुण, इसी के कारण उसकी इच्छा सदैव प्रतिभा-सम्पन्न स्त्रियों का दामन पकड़ने की रही है । तुमने उसकी इतनी बार अवहेलना की है कि दूसरा कोई होता तो कभी का तुम्हारा खयाल छोड़ चुका होता, न छोड़ पाता तो डूब मरा होता । सौभाग्य से मुझे

कभी नाज़नीनों के कूचे से बदनाम होकर नहीं निकलना पड़ा। यदि तुमने कभी मुझे दरवाज़ा दिखाकर कहा होता, 'अपना रास्ता पकड़ो' तो हो सकता है हमारे सम्बन्ध का अन्तिम अध्याय किसी और ही तरह लिखा गया होता। लेकिन पुरषोत्तम है कि अब भी तुम्हारे नाम की माला जपता है। वह अभी तक यह नहीं समझ पाया कि तुम उससे पीछा छुड़ाना चाहती हो। वह इस बात को समझे भी कैसे? उसको बुरा-भला भी कहती हो और समय आने पर उसके उपहार भी स्वीकार कर लेती हो। और उपहार भी कैसा? उसके गाँव के भेजे हुए एक मन चावल! कैसा ग़ैर रोमानी उपहार है! और फिर तुम मुझसे पूछती हो कि इन्कार कैसे करती, वह इतना ज़ोर दे रहा था। बात वास्तव में यह है कि पुरुष कितना भी खुद-पसन्द क्यों न हो नारी की खुद-पसन्दी का मुकाबिला नहीं कर सकता। तो तुम्हारे पास पुरषोत्तम के लिए अवहेलना के सिवा कुछ नहीं है। किन्तु इस अवहेलना को वह कितना भी क्यों न हो, फिर भी तुम्हारा परवाना है और तुम्हारे अहम् को यह स्वीकार नहीं कि वह किसी और दांपति का परवाना बने। पर तुम उसका बहुत अपमान करती हो। भला मुझे वे सब बातें बताने की क्या ज़रूरत थी जो पुरषोत्तम में और तुम में हुआ करती हैं। शायद इसलिए कि तुम मुझे जताना चाहती थीं कि मुझमें और तुम में कोई पर्दा नहीं है। मैंने कहा न कि दिल के मामले में पुरषोत्तम निपट गँवार है। उस दिन जो तुमने बातें बतायीं, वे केवल पुरषोत्तम ही कह सकता था। बातों-बातों में ही पुरषोत्तम कैसा (बूढ़म है वह!) तुमसे कहने लगा था—

‘रूथ!’

‘देखिए मिस्टर पटेल,’ तुमने उसे उत्तर दिया, ‘मुझे आपका यह

पहले नाम से सम्बोधन करना पसन्द नहीं। मैं मिस बेनजीं हूँ। कृपया मुझे मिस बेनजीं ही रहने दीजिए।’

‘पर मैं अगर तुम्हें ‘रूथ’ कहकर पुकारूँ तो तुम मुझे क्योंकर रोक सकती हो?’ पुरषोत्तम धृष्टता से बोला, ‘मुझे ‘रूथ’ कहना अच्छा लगता है, मैं तो ‘रूथ’ ही कहूँगा।’

तुम्हें कुछ क्रोध भी आया, कुछ विस्मय भी हुआ, कुछ उसकी मूर्खता पर हँसी भी आयी, पर तुम चुप रहीं। तुम्हें अपने मनोवेगों पर अपूर्व नियन्त्रण प्राप्त है।

‘रूथ ! मैंने सोचा है कि हर महीने तुम्हें अपना सारा वेतन लाकर दे दिया करूँ, फिर तुम जो चाहो मुझे खर्च के लिए देना। बाकी तुम्हारे पास रहेगा, ‘पुरषोत्तम ने कहा।

पुरषोत्तम एकदम उल्लू है। किसी युवती से प्रेमालाप की कैसी भूमिका निकाली उसने !

तुमसे न रहा गया, ‘आपकी समझ को क्या हो गया है, मिस्टर पटेल,’ तुम बोलीं, ‘आप कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं।’

‘वाह ! इसमें बहकने की कौन-सी बात है।’ वह तुम्हारी रुखाई को समझ नहीं पाया। ‘मैं तुम्हें अपने घर की एक मात्र स्वामिनी बनाना चाहता हूँ।’

कितना हास्यास्पद प्रस्ताव था ! तुम्हारे पास इस हिमाकृत का क्या उत्तर था, सिवा इसके कि उसकी मूर्खता पर मुस्करा देतीं।

लेकिन यह मुस्कराना खतरनाक साबित हुआ।

‘रूथ ! क्या मैं तुम्हें चूम सकता हूँ?’ वह बोला था—‘तुम्हारे अधरों के उस बायें कोने को जहाँ मुस्कराते समय तुम्हारे ओठों का किनारा ऊपर को घूमता है?’

हाय कमबख्त पुरषोत्तम भी कभी-कभी कैसी पते की बात कह जाता है !

तुम्हारी सहनशीलता का प्याला भर उठा। तुमने इस बात को हँसी में टालना चाहा।

‘मिस्टर पटेल, यह क्या हिमाकृत है। आपको कुछ भी खयाल नहीं कि.....’

‘अच्छा तो रूथ, फिर अन्दर चले चलें।’ पुरषोत्तम बोला मानो किस स्थिति में क्या कहेगा, घर ही से रटकर आया हो, ‘आज मैं तुम्हारे अधरों को चूमने के लिए मरा जा रहा हूँ। तुम मेरे हृदय की रानी हो। मुझे तुमसे वेहद मुहब्बत है।’

यह समय था पुरषोत्तम को ‘दरवाज़ा’ दिखाने का। पर तुम शराफ़त की पुतली बनी रहीं। केवल इतना कहा, ‘मिस्टर पटेल, आप अपने-आपको भूल रहे हैं। माफ़ कीजिए, मुझे एक जगह मिलने जाना है। नमस्ते।’

और तुम उठकर चली गयीं। यदि उस समय तुमने उसे ‘दरवाज़ा’ दिखा दिया होता तो शायद वह समझ जाता। वह मोटी अक्ल का आदमी है। अभी तक नहीं समझा। अब भी तुम्हें रूथ कहता है। अब भी तुम्हारे घर आता है। अब भी तुम्हें उपहार भेजता है। अब भी यह समझता है कि तुम्हारे हृदय में उसके लिए बड़ा स्थान है।

जब तुमने मुझसे पुरषोत्तम के साथ अपनी इस बातचीत का ज़िक्र किया तो मुझे पहली बार खयाल आया कि मैं भी तुम्हें ‘मिस बेनर्जी’ के बदले ‘मिस रूथ’ ही कहता आया हूँ। अगले दिन मैंने तुमसे क्षमा चाही कि मैं भूल से तुम्हारा पहला नाम लेकर तुम्हें सम्बोधित करता रहा हूँ, आगे से सावधान रहूँगा। तुम यह सुनकर खीझ उठीं।

‘मैं आप से बहुत नाराज़ हूँ। तुम बोलीं, ‘मैंने आप से कब :
कि मेरा पहला नाम लेकर न पुकारा करें। आपको मुझे केवल ‘रूथ’
कहकर पुकारते हुए जाने क्यों डर लगता है। मैं तो समझती थी कि
अब हम एक दूसरे के काफ़ी निकट आ गये हैं।’

मैंने शरारत से कहा, ‘पर पुरषोत्तम भी तो आपके काफ़ी
निकट है।’

‘खाक निकट है,’ तुमने रोनी-सी सूरत बनाकर कहा, वह मुझसे
सचमुच अच्छी तरह परिचित होता तो कभी का मेरा इशारा समझ
गया होता, और बार-बार मुझे परेशान न करता।

वेचारा पुरषोत्तम ! मालूम नहीं, तुम उस वेचारे से क्यों चिढ़ती
हो ? मुझसे पूछो तो तुम किसी पुरषोत्तम जैसे मन्द-बुद्धि के साथ
ही सुखी रह सकोगी। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि स्थूल-बुद्धि-पुरुष
प्रखर बुद्धि वाली स्त्रियों पर कितने आसक्त होते हैं। और यदि भाग्य
से उन्हें तुम्हारे जैसी विदुषी और सुन्दर पत्नी मिल जाय तो वे उसके
आजन्म गुलाम बने रहते हैं। ऐसे पतियों की बातचीत का घर में,
बाहर, पार्टियों में एक ही विषय रह जाता है—मेरी डार्लिंग रूथ यह
कहती है कि.....मेरी डार्लिंग रूथ यह करती है कि....। प्रतिभाशाली
पुरुष भी विदुषी नारी से मिलकर प्रसन्न होते हैं—हाँ, यदि वह
उनकी अपनी पत्नी न हो। ऐसे पुरुषों की माँगें अपनी पत्नी से कुछ
और होती हैं। कभी-कभी जब मैं अपनी जीवन-संगिनी के बारे में सोचता
हूँ तो मेरे दिमाग में एक ऐसी अस्पष्ट-सी मूर्ति साकार होने लगती है
जो मेरे व्यक्तित्व की पूरक हो, जो मेरे अधूरेपन को दूर करे। मेरा
विचार है कि व्यक्तित्व के लिहाज़ से पुरुष और स्त्री दोनों अपनी-अपनी
जगह अधूरे हैं। इनको पूर्णता देता है दाम्पत्य जीवन। सोचता हूँ

कि मैं खुली पुस्तक के कुछ अध्याय हूँ—दर्शन के, तर्क के, विज्ञान के। मेरी पत्नी इस पुस्तक के शेष अध्याय होगी। यदि वे अध्याय भी दर्शन के, तर्क के, विज्ञान के हुए तो वे केवल मेरी ही प्रतिलिपि होंगे, मेरे पूरक नहीं। एक तरह से मुझे अपना अधूरापन दुगुना महसूस होगा। इस खुली पुस्तक के शेष अध्याय तो होने चाहिए कविता के, संगीत के, कला के। बुरा न मानना, मस्तिष्क के लिहाज से तुम मुझे मेरी प्रतिलिपि मालूम होती हो—किताबी और कृत्रिम। तुम्हारे सांनिध्य की आवश्यकता तो उस समय है जब दिमाग ताज़ा हो, जब यह खयाल हो कि दुनिया की भलाई-बुराई, उन्नति-अवनति, सम्यता, संस्कृति हमारी परस्पर की बातचीत और विचार-विनिमय पर ही आधारित है। जब यह खयाल हो कि प्रत्येक वह शब्द जो हमारे ओठों से निकल रहा है, कला और साहित्य की पक्की ईंट है। तुम्हारे दिमाग से मुझे अब भी बेहद मुहब्बत है, लेकिन तुम्हारे शरीर से मैं अब बहुत दूर चला गया हूँ। आखिर प्रेम केवल स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध का ही तो नाम नहीं। बिना शरीर की लालसा के भी तो दिमागी सम्बन्ध कायम रह सकता है। यह सच है कि यह सम्बन्ध सदैव शारीरिक आकर्षण से आरम्भ होता है। यदि तुम सुन्दर न होतीं, यदि तुम्हारी आँखों में यह ललचा देने वाली मोहिनी न होती तो मैं इस मानसिक सम्बन्ध से वंचित रह जाता। तुमसे दूसरी बार बात करने की भी उत्सुकता न होती। बम्बई में और भी हज़ारों लड़कियाँ हैं। उनको कभी दूसरी बार मुड़कर देखने की भी इच्छा नहीं हुई। उनसे मेरा दिमागी सम्बन्ध क्या होता? पर हाँ, जब मैं इस प्रकार तुम्हारी ओर खिंचने लगा तो मुझे मालूम हुआ कि तुम्हारा शरीर ही सुन्दर नहीं, तुम्हारा दिमाग तुम्हारे शरीर से भी सुन्दर है। और ज्यों-ज्यों तुम्हारे पाण्डित्य के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती

गयी, तुम्हारे शरीर के लिए आसक्ति कम होती गयी। यदि तुम्हारी मेधा की चमक तुम्हारे शारीरिक सौन्दर्य पर इतनी हावी न होती तो तुम भी कई बार अपनी पुस्तकीयता को भूलकर स्वयं एक कला, एक कविता, एक संगीत बन जाया करतीं। पर तुम इन बातों से दूर हो, बहुत दूर। तुम अपनी बुद्धि की कुशाग्रता और बारीकी से परेशान हो, और चूँकि मैं भी अपनी प्रतिभा से आक्रान्त हूँ, हम मानसिक स्तर पर ही मिल सकते हैं। मानसिक प्रेम में शारीरिक इच्छा का लुप्त हो जाना स्वाभाविक है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ, तुम्हारे साथ मेरा नाता इसी स्तर पर जा पहुँचा है। मेरा खयाल है कि तुम भी उसी जगह पर हो जहाँ मैं हूँ। पर अभी तुम इसको समझ नहीं सकीं। विवाहित जीवन में एक पक्ष का पल्ला भारी होना अनिवार्य है। एक जैसे दो प्रतिभाशालियों का बिना संघर्ष के इस आजीवन रिश्ते में बँधा रहना सम्भव नहीं। यदि तुम ऐसा समझती हो तो भूल करती हो।

इसी भूल में तुमने मुझे कई बार अपनी मनःस्थिति के बारे में संकेत किये हैं। पुरुषोत्तम के प्रति तुम्हारी उपेक्षा और मेरे लिए चाह तो इतनी प्रकट है कि पुरुषोत्तम के अतिरिक्त यह और किसी से छिपी नहीं। उस दिन की बात तुम्हें याद है, जब मैंने यह कहकर कि मैं तुम्हें अपने विवाह पर अवश्य बुलाऊँगा, तुम्हें एक हल्का-सा इशारा किया था कि मेरी पत्नी तुम नहीं, कोई और होगी और तुमने इस संकेत को अच्छी तरह समझते हुए भी नहीं समझा था। और मेरी पत्नी में क्या-क्या गुण होने चाहिएँ, सब गिन डाले थे। उनमें क्या एक भी ऐसा था जो तुम में न हो। तुमने मेरी होने वाली दुन्दहन की नाचती नशीली आँखों, लम्बी सुकोमल केशराशि, पतले गुलाबी अधरों और उसके निखरे मुस्कराते चेहरे—सब का बखान कर डाला था। यदि उस समय

तुम अपने-आपको दर्पण में देख पाती तो तुम्हें सन्देह की गुंजाइश न रहती कि तुम अपने ही गुणों का गवान कर रही हो। पर खैर, यह सब तुम्हें मालूम है। मेरे दाहराने से क्या लाभ ?

हाँ, मेरी दुल्हन के बारे में तुमने एक बात कही थी जो तुम पर पूरी नहीं उतरती। तुमने कहा था कि मेरी पत्नी ऐसी होगी जो गम्भीर हो, लेकिन जब चाहे चंचल हो जाय। काश, ऐसा ही होता, तुम्हारी तो चंचलता में भी इतनी गम्भीरता रहती है कि आदमी का मन मचलकर काबू से बाहर नहीं हो पाता।

और फिर उस दिन का संकेत जिस दिन तुम अकेल अपनी नयी कार में मेरे घर आ पहुँची थीं। यह पहली बार था जब मैंने तुम्हें किसी के घर अकेले आते देखा था। तुम्हें पिछले नवम्बर की बात याद होगी जब पुरपोत्तम के बहुत जोर देने पर तुमने उसके घर चाय पीने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था। वह तुमसे अकेले में दो बातें करना चाहता था। और तुम सारे कुटुम्ब को ही साथ ले गयीं। तुम्हारे साथ न केवल तुम्हारा भाई था, बल्कि भाई की भँगेतर और भँगेतर का भाई भी। बेचारा पुरपोत्तम तो दिल में तूफ़ान लिये बैठा था और तुमने उसे पाँच मिनट भी बातें करने का अवसर न दिया।

लेकिन मेरे यहाँ तुम अकेली चली आयी थीं। मेरी हैरानी को भाँपते हुए तुमने कहा था, 'विलियम के पाँव में चोट आ गयी है, वह नहीं आ सका.....नयी कार खरीदी है, चलोगे घूमने ?'

जब हम कार में बैठने लगे थे तो तुमने मुझसे कहा था, 'तुम्हीं चलाओ, मैं तो आराम से बैठूँगी।' और यह कहकर तुम मेरे पास ही अगली सीट पर बैठ गयी थीं। 'जुहू चलें ?' कहकर तुमने मेरी ओर उन आँखों से देखा था, जिनका उत्तर केवल 'हाँ' हो सकता था। और

वे निगाहें मेरे दिल को झकझोरती, उसकी गहराइयों में उतर गयी थीं। उफ़ वे निगाहें ! वह चेहरा !! सौन्दर्य बाँटते समय विधाता कितना पक्षपाती रहा है, मैंने सोचा, और मेरे बायें हाथ ने अनायास ही तुम्हारे कन्धे को हल्के से घेर लिया। एक क्षण के लिए मुझे लगा कि तुम ज़रा ठिठुर गयी हो। फिर तुम्हारे कानों की लवें तुम्हारे गालों के साथ-साथ और भी लाल हो उठीं। तुम्हारी आवाज़ में कुछ उल्लास और तेज़ी आ गयी। 'जुहू मेरा चिरपरिचित साथी है,' तुम कहने लगीं, 'उसके तट पर स्वच्छ और शीतल बालू में बैठे मैं कुछ अजीब-सी शान्ति का अनुभव करती हूँ, प्रकृति की विशालता को अपने अन्दर समो लेना चाहती हूँ, ऊपर छाये अम्वर की नीलाहट को समेटकर भोली में भर लेना चाहती हूँ, क्षितिज से गाती चली आती समुद्र की फेनिल लहरों की ध्वनि को अपने हृदय के संगीत में लीन कर लेना चाहती हूँ। उस समय यही जी चाहता है, कोई साथी हो जिसमे बातें किये जाऊँ, बातें किये जाऊँ.....'

जुहू पहुँचकर मैंने मोटर रोक दी। हम दोनों उतरकर समुद्र के किनारे रेत पर नंगे पाँव टहलने लगे। अब तुम चुप हो गयी थीं। प्रकृति की उस निस्तब्धता में समुद्र की लहरों का कालाहल अनायास हृदय की धड़कन का तेज़ किये देता था। हम बैठकर क्षितिज के आँचल की गहराई का नापते सूरज की आँर देखने लगे। फिर उँगलियों से रेत में टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचते रहे। ढलते सूरज की अन्तिम किरणों में तुम कितनी सुन्दर दीखने लगी थीं। एक मिनट के लिए मैंने सोचा कि मैं आज तक भूल में रहा हूँ। तुम्हारा मस्तिष्क प्रतिभाशाली हो, पर तुम्हारा शरीर सुन्दर है, बहुत ही सुन्दर। दूर समुद्र के पानी में सूर्य आधा डूब चुका था। ऐसे लग रहा था कि खेल

से थक-हारकर कोई लाल गुलगोथना बालक अपनी माँ की गोद में सोता जा रहा है। तुमने हाथ की एक ही जुम्बिश से बालू में लहर-सी उठाते हुए उन टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों को मिटा दिया। सुनहरी किरणों में तुम्हारा मुस्करता हुआ मुखड़ा ऊपर उठा। आह ! कितना सुन्दर !!

‘देखो पश्चिम की ओर,’ तुमने कहा, ‘क्षितिज की लालिमा देखो। समुद्र में डूबता सूरज हमें देखकर मुस्करा रहा है।’

मेरे मस्तिष्क पर तुम्हारे सौन्दर्य का जो नशा छाता जा रहा था, एक झटके से टूट गया। सहसा मुझे लगा कि यदि तुम्हारी जगह मैं होता तो बिलकुल यही कहता। सम्भवतः सभी ‘सभ्य’ लोग ऐसा ही कहते। और मुझे अपनी बातें सदा ऊपरी और खोखली लगती हैं। तुम्हारी बातें भी वैसी ही लगीं। मैं सोचने लगा कि यदि तुम्हारी जगह कोई अल्हड़ ग्रामीण बाला मेरे पास बैठी होती तो वह क्या कहती ? मैं नहीं जानता वह क्या कहती ? लेकिन मुझे इतना विश्वास है कि वह यह कभी न कहती जो तुमने कहा था। उसके हृदय के उद्गार सरल भले ही हों, लेकिन वे उसके अपने होंते, किताबी कभी न होते। तुम्हारे कुछ कहने से पहले ही एक पढ़ा-लिखा आदमी बता सकता है कि तुम क्या कहोगी। किताबें पढ़-पढ़कर अपने-आपको ‘अपना’ बनाये रखना कठिन होता है। हम ‘हम’ नहीं रहते, ‘किताब’ हो बन जाते हैं। हमारी विचारधारा में एक समानता आने लगती है। गाँव की अल्हड़ लड़की आगे क्या कहेगी, इसका पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। और सच पूछो तो अगले पल की मीठी अनिश्चितता में ही आकर्षण है। ज्यों ही किसी सुख दायक वस्तु ने निश्चित रूप धारण किया, हमें यकीन हुआ कि हम जब चाहे, इसका भोग कर सकते हैं, समझो उसका आकर्षण गया। पत्नी से प्रेयसी तभी तो ज्यादा आकर्षक होती है !

शायद वह ग्रामीण वाला भावावेश में बेकाबू होकर मेरे गले से लिपट जाती। शायद वह भोलेपन से कहती, 'कितना गोल-गोल लगता है सूरज इस समय, सेन्दूरी गेंद सरीखा।' शायद वह कुछ भी न कहती, गूँगी बनी अस्त होते सूरज की ओर देखती रहती। पर हाँ, वह जो भी कहती या करती, वह सीधा हृदय से निकला हुआ होता। उसके मस्तिष्क पर पुस्तक की और हृदय पर मस्तिष्क के नियन्त्रण की छाप न होती। इसलिए उसकी बातें बनावटी और खोखली भी न लगतीं। मैं तो भावों के उमड़ते हुए असीम सागर में बह जाना चाहता हूँ। हँसूँ तो खुलकर गँवार देहातियों की तरह, रोऊँ तो इतना कि अपनी मूर्खता का भी भान न रहे। लेकिन अब हम 'हम' नहीं रहे। ड्राइंगरूम की पौधे हो गये हैं, प्रकृति से दूर, अपने-आप से बेगाने। जीवन की बाग-डोर मस्तिष्क ने सम्हाल ली है। जैसे-जैसे मस्तिष्क हमारे हृदय और उसके भावों पर अधिकार जमाता जाता है, हमारा जीवन कृत्रिम-सा, घुटा-घुटा, परेशान-परेशान होता जाता है। हम 'सभ्य' होते जाते हैं। मुझे ऐसी सभ्यता नहीं चाहिए जो मुझे अपने हृदय और अन्तःप्रेरणा से ही बेगाना कर दे।

वस यही तुम में और मुझमें अंतर है। उच्च शिक्षा पाकर भी मैं अनुभव करता हूँ कि नैसर्गिक जीवन प्रकृति के निकटतम रहकर, हृदय का अनुसरण करने में है। किन्तु तुम्हारी हाइडलबर्ग की शिक्षा ने तुमको अपने हृदय पर पूर्ण-पूरा नियन्त्रण दे दिया है। फिर यह एकदम धनी व्यापारी के साथ अफ्रीका चले जाने का निर्णय क्यों? यह तो मस्तिष्क का काम नहीं जान पड़ता। क्या तुम भी भावना-प्रवण होने लगीं? मुझसे नाराज़ हो गयीं? मुझे सबक सिखाने लगीं? अरी पगली! यह सबक कैसा? इतनी दूर जाने की क्या आवश्यकता थी? मुझे तुम्हारे

शरीर की तो इच्छा नहीं थी। यह तो यहाँ भी किसी और के हवाले हो सकता था। पर आह, तुम्हारा दिमाग ! मेरी रूथ (यदि बुरा न मानो तो कह दूँ, मेरी अपनी रूथ) मुझे तुम्हारे दिमाग की बड़ी ज़रूरत थी। अफ़रीका में शायद तुम्हारे शरीर को सारी सुविधाएँ प्राप्त हो जायँ, पर अपने दिमाग को क्या अफ़रीका के विशाल जंगलों के हवाले कर दोगी ? आह, मेरी अपनी रूथ, मैं फिर पृथ्वी हूँ, यह कैसी सज़ा है, यह कैसा सबक है ?

*

मैंने अभी यह ख़त लिखा नहीं। इसी दुविधा में हूँ कि यह ख़त लिखूँ या न लिखूँ।



साया

इस समय वह अस्पताल में पड़ी थी। अगस्त का महीना था, और वह अगले नवम्बर में अपना तीसवाँ जन्म-दिन मनायेगी। ऑपरेशन सफल रहा था, कम-से-कम डाक्टर ने तो यही कहा था कि अब खतरे से बाहर है। उसे केवल कुछ समय के लिए आराम चाहिए, पूर्णतया आराम। उसके बिस्तर के पास ही एक पक्की उम्र की औरत आराम कुर्सी में बैठी ऊँघ रही थी। वह उसकी माँ थी, और अपना तीसवाँ जन्म-दिन बीस साल पहले मना चुकी थी। अब वह शायद उसी के सपने देख रही थी। कुछ देर बाद श्रीमती उर्मिला शेखर ने अपनी थकी हुई आँखों को थोड़ा-सा खोला, उदास-सी निगाहों से अपनी माँ की ओर देखा, और फिर चुपचाप छत की शून्यता में नज़रें गाड़ दीं। उसके दानों हाथ बेजान-से उसके सीने पर पड़े थे। दोपहर का समय था, और ऐसा मालूम होता था कि अस्पताल की हर एक चीज़ ऊँघ रही है। इस सोये-सोये से वातावरण में उसके

दिमाग में एक अस्पष्ट-सा प्रश्न उभरने लगा कि क्या उसे अभी ज़िन्दा रहने की इच्छा है ? रात के गहरे अँधेरे में जैसे समुद्र की लहरों की सफ़ेद फेन शोर मचाती आगे बढ़ती चली आती है, उसके दिमाग के निबिड़ अन्धकार में यही एक प्रश्न कई पहलू लेकर इधर-उधर नाचने लगा । यह तो स्पष्ट है कि मैं हूँ या नहीं हूँ, इसकी किसी और को तो परवाह नहीं । मुझे खुद भी परवाह नहीं, उसने सोचा और एक फीकी-सी मुस्कान उसके चेहरे पर दौड़ गयी जैसे अपने रिसते ज़ख्मों को छेड़कर वह किसी अव्यक्त मुग्य का अनुभव कर रही हो । अब वह ज़िन्दगी के उस पड़ाव पर पहुँच गयी थी जहाँ से न अतीत रंगीन मालूम होता है, न भविष्य आकर्षक । दस वर्षों में छः बच्चे । उसके शरीर में एक ठंडी सनसनाहट दौड़ गयी । बस यही उसके सारे व्यक्तित्व का विकास था, यही उसका अपने पति के प्रति मूल्य । उसने अपने पति के लिए और भी बहुत कुछ बनने की कोशिश की थी । उसने अपने जीवन-साथी को अपनी उमंगों, कामनाओं, रंगीन सपनों का केन्द्र बनाना चाहा था । उर्मिला अपनी रूमानी बेवकूफी पर मुस्करायी । एक-एक करके उसके सब रंगीन सपने ढेर हो गये थे । एक-एक करके उसकी सब उमंगें मिट्टी में मिल गयी थीं । और अब वह रह गयी थी अपने सपनों और अपनी उमंगों की याद मात्र, अपने विशाल महल का महज़ जर्जर खण्डहर ।

उसे अपने अरमानों का खून हाँता देखने में देर न लगी थी । शादी के बाद छः महीने की रंगरलियाँ । फिर शेखर ने रात को घर देर से आना शुरू कर दिया था । अब तो कभी-कभार ही वह आधी रात से पहले घर लौटता । उर्मिला अकेली घर बैठी उसकी राह देखा करती । हमेशा एक ही बहाना होता—क्लब नहीं छोड़ता । ब्रिज के

साथी नहीं उठने देते। रट लगाये जाते हैं, एक 'खर' और खेलो, एक 'खर' और। उनको 'न' करना मुश्किल हो जाता है। तुम क्लब क्यों नहीं चलती? उर्मिला ने क्लब जाकर भी देख लिया था। पर उसमें कुछ खास दिलचस्पी न ले सकी थी। पहले कई दिन पति के पहलू में बैठकर ब्रिज का खेल देखा। चुपचाप, मौन। ब्रिज के खिलाड़ियों की आपस में कोई बात हुई भी तो व्यंग्य-भरी 'उस वक्त वह चाल क्यों नहीं चली?' 'उस वक्त वह पत्ता क्यों नहीं फेंका?' उर्मिला ने खुद भी ब्रिज सीखने की कोशिश की, लेकिन तबीयत कुछ जमी नहीं। जब पति के पहलू में मौन बैठे जी उकताने लगा तो उर्मिला ने दिल बहलाव का कोई और तरीका ढूँढ़ा। देखा क्लब में स्त्रियाँ 'रमी' खेलती हैं। वह भी खेलने लगी। दो-दो घंटे, चार-चार घंटे। उसे अपने पर क्रोध आने लगा। उस ताश खेलते-खेलते ही ज़िन्दगी निकल जायेगी? जो पढ़ने-लिखने, घर सजाने का शौक था, वह ताश के तेरह पत्तों में ही बँटता-बँटता खत्म हो जायगा। उर्मिला ने क्लब में जाना छोड़ दिया। घर की देख-भाल में लग गयी। दिन में घर की कई बार सफ़ाई हाँती। कई बार गोल कमरा सजता। पर शेखर साहब ने कभी यह जानने की कोशिश भी न की कि गोल कमरे में कुछ अदल-बदल हुआ है कि नहीं। पति के प्रोत्साहन और प्रशंसा के अभाव में घर-बार सजाने का शौक भी क्षीण होता-होता विलुप्त हो गया। और घर में अकेली बैठी-बैठी उर्मिला कितनी कितानें पढ़ लेती? इतना पढ़ा कि पढ़ने से मन ऊब गया। ज़िन्दगी का और सब-कुछ कम होता गया, बढ़ा तो एक आलस्य जो रेंगते दीमक की तरह आहिस्ता-आहिस्ता उसको, उसकी खुशियों को खोखला करता चला गया। शेखर साहब कहने लगे, 'तुम तो योही खोयी-खोयी रहती हो। घर में

किस चीज़ की कमी है। ईश्वर का दिया सब-कुछ है।' अब शेखर साहब को कौन समझाये कि पत्नी को पति का स्नेह प्राप्त नहीं तो उसके लिए दुनिया फीकी और अधूरी है। लेकिन इस स्नेह के अभाव में भी बच्चे होते गये। पहला बच्चा....दूसरा बच्चा....तीसरा बच्चा....। उर्मिला पति की प्रेयसी बनना चाहती थी, वह केवल उसकी औरत बनकर रह गयी। अपने पति का नहीं, उसके घर का एक अंग, जैसे घर का और माल असबाब। यह अनादर, यह उपेक्षा, यह न होने के बराबर होना....उसको खयाल आया कि उसका सारा जीवन ही अपमान सहते बीता है। क्या ही अच्छा होता अगर दस साल पहले वह इतनी बुझदिल न बनी होती। एक खिन्न-सी मुस्कान उसके ओठों पर खेल गयी। अतीत साकार होकर उसकी आँखों के आगे उभरने लगा और उसकी शादी से पहले के दृश्य एक-एक करके उसे याद हो आये।....

उर्मिला ने उन्नीसवें साल में कदम रखा ही था कि उसकी पढ़ाई बन्द कर दी गयी। वह बी० ए० की परीक्षा दे चुकी थी। वह आगे पढ़ना चाहती थी, लेकिन उसके माँ-बाप इसके पक्ष में न थे। उन्हें अब उसके विवाह की फ़िक्र होने लगी थी। उसे अब विवाह के लिए 'तैयार' करना था। उसे सर्व-कला-सम्पन्न बनाना था, ताकि वह विवाह की मार्केट में उपेक्षित और अवाञ्छित वस्तु न रह जाये। वैसे तो जब से उर्मिला ने दसवीं पास की थी और वह कॉलेज में दाखिल हुई थी, तभी से उसके घर वालों के सोचने की पृष्ठभूमि में उर्मिला के विवाह का प्रश्न अंकुरित हो उठा था। और तभी से—वह क्या पढ़ती है, कहाँ जाती है, किससे मिलती-जुलती है—पर कुछ-कुछ निगरानी रखी जाने लगी थी। पर वह उस तैयारी का एक पहलू था। दूसरा पहलू

भी साथ-साथ शुरू हो गया था। लेकिन बी० ए० के बाद इस दूसरे पहलू पर ज़्यादा जोर दिया जाने लगा। अब गाने के मास्टर का सप्ताह में तीन बार आना शुरू हो गया था। उर्मिला को चित्रकला में दक्ष बनाने के लिए एक और महोदय आने लगे थे। एक उस्तानी से सिलाई-कढ़ाई का काम सीखा जा रहा था। और उर्मिला को खाना पकाने और घर के दूसरे काम-काज में सुघड़ बनाने का काम उसकी माँ ने स्थग्य अपने हाथ में ले लिया था। उर्मिला इन सब बातों का मतलब अच्छी तरह से समझती थी। वह भी अपने-आपको 'आदर्श पत्नी' बनाने में दत्तचित्त रहने लगी थी। जवानी उसके शरीर को अपने उन्मादक साँचे में ढाल रही थी और उसके सपनों की दुनिया में एक विचित्र व्यापकता और रंगीनी आने लगी थी।

अब बड़ी रात गये तक उर्मिला के बाप, माँ और भाई दबो ज़बान में बातें करते रहते। कमरे का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया जाता। लेकिन उत्सुकता के कान बड़े होते हैं। और फिर बातें भी तो उर्मिला के बारे में ही होतीं। वह कुछ सुनती, कुछ मन से जोड़-जाड़कर समझ लेती कि क्या कहा गया है। और फिर कई बार तो बातें भी इतनी धीमी न रहतीं। उर्मिला के बाप की आवाज़ क्रोध और क्षोभ से काँप उठती और दूसरे कमरे में कान खड़े किये बैठी उर्मिला की नस-नस में नश्वर चुभाती दीवारों से टकरा जाती। एक योग्य वर का मिलना कितना कठिन है, उर्मिला को अभी मालूम हुआ। ऐसे छिपे-छिपे जो बातें उर्मिला सुन पायी, उनका आशय यही था कि अगर कोई योग्य लड़का नज़र आया ही है तो या तो वह बेरोज़गार है और इस इन्तज़ार में बैठा है कि कोई धनवान उससे अपनी लड़की का रिश्ता कर दे और साथ ही उसके लिए कोई अच्छी नौकरी का बन्दोबस्त भी।

या अगर वह पहले ही से किसी अच्छी नौकरी पर नियुक्त है तो उसकी माँगें बहुत बढ़ी-चढ़ी हैं। उसे न केवल एक अतीव सुन्दर, सुशिक्षित, सुशील, सुसंस्कृत, सुघड़ लड़की चाहिए, बल्कि साथ में एक बड़ी रकम दहेज में भी। उर्मिला को लगा उसके अपने गुणों का मूल्य उसके घर की आर्थिक स्थिति की पृष्ठभूमि में ही आँका जा सकता है। इस विचार से उर्मिला के आत्मसम्मान को कितना धक्का लगा, उसने अपने व्यक्तित्व का जो कल्पित महल बना रखा था, उसकी दीवारें कहाँ-कहाँ से दरक गयीं, इसका पूरा अन्दाज़ा उस वक्त उर्मिला खुद भी न कर सकी। लेकिन यह उसे उस वक्त भी महसूस हो गया कि उसके 'उर्मिलापन' से कुछ नोच लिया गया है, जिसके धाव कभी पूरी तरह भरेंगे नहीं। उर्मिला सोचती कि क्या आज का समाज ही इस नीचता की दलदल में फँसा है या कि हमेशा से ही समाज का दृष्टिकोण ऐसा रहा है। वह तो अपने माँ-बाप की इकलौती लड़की है। उनका क्या हाल होता होगा जिनकी पाँच-पाँच विवाह-योग्य लड़कियाँ बैठी हैं ?

कई बार तो अपने-आपको वर की खोज में असफल पाकर उर्मिला का बाप बहुत खीझ उठता। उसके मुँह से निकल जाता 'यह अपना पति खुद क्यों नहीं ढूँढ़ लेती ? आज-कल क्या ऐसा होता नहीं है ?' और यह कहकर वह खुद ही अपने इस साहस पर शर्मिन्दा होने लगता। उर्मिला की माँ कहती, 'कैसी बातें करते हैं आप। हमारे कुल की क्या यही रीत है ? भगवान सब का मालिक है। अच्छा वर मिल ही जायगा।'।

उर्मिला के माँ-बाप दोनों की ही परेशानी बच जाती अगर वह श्री मनमोहन शेखर की बातों पर ध्यान देते। शेखर साहब बैरिस्टर थे।

नौजवान और चलते पुर्जे। हाथ में सिगरेट का टिन और बगल में छड़ी दबाये रहते। अमीर और अविवाहित। आधी-आधी रात तक दोस्तों से गप्पें होतीं या क्लब में ब्रिज। सभा-सोसाइटी की सभी युवतियों से जान-पहचान। शेखर साहब उर्मिला की बहुत प्रशंसा किया करते। उर्मिला का बाप बात टाल जाता। शेखर नौजवान सही, अमीर सही, उसकी आदतें उर्मिला के माँ-बाप को ज़रा न भातीं। उससे शादी की बात बढ़ायी तो यह कन्यादान नहीं होगा, कन्या-बलिदान होगा।

आखिर तंग आकर उर्मिला के बाप ने प्रान्त के प्रसिद्ध समाचार-पत्रों में उर्मिला की शादी का विज्ञापन दिया। लिखा, 'लड़की बी० ए० है, चतुरा घराने की है, सुन्दर है, सुशील है, गाना-बजाना जानती है, घर के काम-काज में कुशल है, उसके लिए अच्छा वर चाहिए। जात-पात की बन्दिश नहीं।' विज्ञापन के उत्तर में कई चिट्ठियाँ आयीं। चन्द दिनों के बाद, हर रोज़ दो-चार औरतें उर्मिला को मिलने आने लगीं। उर्मिला जानती थी कि यह औरतें उसे—विज्ञापिता लड़की को—देखने आती हैं। यद्यपि उसके माँ-बाप उन औरतों को उर्मिला के गुणों के बारे में सब-कुछ बता देते कि उसमें कोई त्रुटि नहीं, कोई कमी नहीं, वह पढ़ाई, लिखाई, कशीदा, कढ़ाई, संगीत, चित्रकला, घर के काम-काज सब में निपुण है, फिर भी औरतें सब-कुछ अपनी आँखों से देखना चाहतीं। उर्मिला के माँ-बाप बहुत कोशिश करते कि इन औरतों के आगमन का अभिप्राय उर्मिला पर ज़ाहिर न हो। पर जिस जौहर की परख होनी हो उसे चमका-सजाकर तो रखना ही पड़ता है। उर्मिला बच्ची तो थी नहीं। जब उसे समझाया जाता कि आगन्तुकों से कैसा बर्ताव करना है, कैसे कपड़े-आभूषण पहनकर उनके सामने आना है तो वह बिना कहे ही जान जाती कि अब शादी की मार्केट में उसकी

परख होगी, उसके लिए उसे सजाया जा रहा है। अपने-आपको इस तरह बिक्री की वस्तु पाकर उर्मिला क्षोभ और ग्लानि से पानी-पानी हो उठती। सोचती, क्यों उसका अन्त नहीं हो जाता, क्यों वह आत्महत्या नहीं कर लेती....।

जब मिलने वालों के आने का वक्त होता तो उर्मिला को नुमाइश के लिए तैयार किया जाता। अगर उसके माँ-बाप समझते कि आगन्तुकों को घरेलू किस्म की लड़की पसन्द है तो उर्मिला के कपड़े ज़रा सादे रहते, पाउडर, लिपस्टिक से परहेज़ किया जाता, गोल कमरे के एक कोने में मेज़ पर ढककर सिलाई की मशीन रख दी जाती। एक तरफ़ तान-पूरा और हारमोनियम पड़े रहते। और अगर ज़रा आधुनिक किस्म के लोगों का आगमन होता तो उर्मिला की एक शोख-सी फ़ोटो अँगोठी पर सजा दी जाती, उर्मिला के अधरों को लिपस्टिक का हल्का-सा स्पर्श भी मिलता और उसके ब्लाउज़ और साड़ी के चुनाव और उनके पहनने के ढंग में भी फ़ैशन का ध्यान रखा जाता। लड़की के गुण लड़के की पसन्द पर नाचते। जब आगन्तुक आये तो उसे सिर झुकाकर चुप बैठे रहना है और सब बातों का जवाब धीमे स्वर से 'जी हाँ,' 'नहीं जी' में देना है, या उसे कुछ बन-सँवरकर बैठना है, और ज़रा हँस-हँसकर बातें करनी हैं, उसे सब-कुछ पहले ही समझा दिया जाता।

लड़का तो पीछे देखेगा। पहले उसके घर के लोग तो अपनी तसल्ली कर लें। मुलाक़ाती बातों-बातों में उर्मिला को गाने के लिए कहते ताकि उसकी आवाज़ की मिठास का पता चल सके। उसे हँसाने की कोशिश की जाती ताकि उसके दाँतों की परख हो सके। कहीं वह टेढ़े-मेढ़े तो नहीं। उन्हें तो ऐसी लड़की चाहिए जिसके दाँत मोतियों की लड़ी हों। फिर घर देखने की इच्छा प्रकट की जाती। अभिप्राय यह होता कि

लड़की के कद और चाल को देखा जाय। कई लड़कियाँ बैठे-बैठे लम्बे कद की मालूम होती हैं, उठें तो नाटी। और फिर उसकी गति में लय होनी चाहिए। यह न हो कि पीछे पता चले कि बहू तो एक पाँव पर जोर देकर चलती है।

और अन्त में आगन्तुक उठते, मुस्कराकर नमस्ते कहते, अपनी मोटर न होती तो नौकर भेजकर टैक्सी भंगवाते, और 'अच्छा जी, अब आशा दीजिए' कहकर विदा लेते। फिर वे दिखायी न देते। उर्मिला के माँ-बाप रोज़ प्रतीक्षा में रहते। पर 'अच्छा जी, अब आशा दीजिए' वाले अतिथियों के फिर दर्शन न होते। हाँ, और आगन्तुक आते, उर्मिला को फिर से सजाया जाता, फिर नुमाइश शुरू होती.....

केवल दो बार उर्मिला के माँ-बाप को बहुत देर तक राह नहीं तकनी पड़ी थी। दो बार मामला कुछ और आगे बढ़ा था। औरतें आयी थीं, उसे पसन्द कर गयी थीं। अब लड़के को लड़की दिखानी जरूरी थी। वह देखे, उसे लड़की भाये तो मँगनी-विवाह की बात शुरू हो।

एक बार प्रबन्ध ऐसे किया गया कि लड़का साइकल पर उस ताँगे का पीछा करे जिसमें उर्मिला और उसकी माँ बैठी हों। साइकल सवार ने कुछ इस बेबाकी से ताँगे में बैठी उर्मिला पर आँखें गाड़ दी थीं कि वह शर्म और लज्जा से पसीना-पसीना हो गयी थी और साथ-ही-साथ क्रोध से लाल। माँ तो समझे बैठी थी कि उर्मिला को मालूम नहीं कि यह पीछा करने वाला कौन है। कम-से-कम वह दिखा तो ऐसे ही रही थी। उर्मिला भोली बच्ची तो थी नहीं। लेकिन वह सिवाय इसके क्या करती कि मन-ही-मन प्रण कर ले कि इस निर्लज्ज युवक से वह कभी भी शादी नहीं करेगी।

और एक बार एक नौजवान को चाय पर बुलाया गया था। माँ ने कहा था, 'बेटी, कुछ मेहमान आने वाले हैं, तुम्हीं चाय-बाय का बन्दोबस्त कर देना, नौकर के पास तो कोई धुली बर्दी भी नहीं।' उर्मिला समझदार है। उसने मौक़े के मुताबिक़ ही वस्त्राभूषण पहने थे। जैसे ही वह शर्माती, लजाती चाय लेकर कमरे में दाखिल हुई थी, दो तेज़ आँखें उसकी नख से शिग्र तक निरीक्षण करने लगी थीं। इन निगाहों ने एक बार तो उर्मिला को सिर से पाँव तक कँपा दिया था। अगर वह जी कड़ा करके पाँव स्थिर न कर लेती तो चाय की ट्रे ज़मीन पर आ रही होती।

दोनों बार नतीजा एक ही निकला था—'न'।

उर्मिला का बाप अब श्री शेखर की उर्मिला के बारे में बातें ज़रा ध्यान से सुनने लगा था।

यह रोज़-रोज़ आगन्तुकों का आगमन, यह रोज़-रोज़ की नुमाइश, और अन्त में 'न'—उर्मिला के आन्तरिक़ घाव गहरे हो रहे थे। उसका आत्मविश्वास, उसका आत्मसम्मान मिट्टी में रेंग रहा था। उसके व्यक्तित्व की दीवार ईट-ईट करके गिर रही थी। यह जीना भी क्या जीना है। हर लड़की का मान-हरण ऐसे ही होता है, या कि वही एक ऐसी अभागी है। वह क्यों अपने माँ-बाप पर बोझ बनी बैठी है। वह क्यों समाज के जर्जर नियमों की ज़ंजीर में जकड़ी बैठी है। वह क्यों नहीं इन चीज़ों से मुक्त हो जाती। दुनिया का कौन-सा काम उसके बिना रुका पड़ा है। वह हुई तो क्या, न हुई तो क्या। वह न हुई तो इस रोज़-रोज़ के अपमान से तो बच जायगी....

जब रात के सन्नाटे में वह घर से बाहर निकली तो पास के गिरिजाघर के घड़ियाल ने टन-टन करके बारह बजाये। वह शाम

उसने एक खत लिखने में गुज़ारी थी। 'जो कदम उठाने पर मैं मजबूर हुई हूँ उसमें दोष किसी का नहीं है,' उसने उस खत में लिखा था। 'समाज के जिस वातावरण में मुझे रहना पड़ा है मैं उसके अनुकूल नहीं हूँ। मैं समाज के वातावरण को नहीं बदल सकती, इसलिए मैं अपने-आपको ही इस समाज से हटा रही हूँ।' वह इस खत को अब अपनी अँगिया में छिपाये चली जा रही थी। यद्यपि रात चाँदनी न थी, आकाश तारों के झुरमुट से भरा पड़ा था। तारों की स्वच्छ धीमी रोशनी में उसका शरीर चलता हुआ साया मालूम हो रहा था। बाहर हवा ठंडी और निर्मम थी। गर्म शॉल ओढ़ने के बावजूद वह ठिठुर रही थी। उसने जो रास्ता और जो मंज़िल अपने लिए निर्धारित की थी, वह किसी अस्थायी भावुकता के जोश का नतीजा न थी। वह घर से निकली थी तो उसने यह कदम सोच-विचारकर उठाया था। नदी अभी बहुत दूर थी। वह तेज़-तेज़ चलने लगी। बिजली के खम्भे, टूँठ और जड़, उसके पास से निकले जा रहे थे। उनमें कुछ चेतना थी तो उन बिजली की बत्तियों की जो उनके सिर पर चमक रही थीं। रात की खामोशी और सन्नाटे ने उसके शरीर को अपनी लपेट में ले लिया था। केवल उसके दिमाग के घोड़े सरपट दौड़ रहे थे, और उसके दिल की धड़कन तेज़ हो रही थी—उस खत के स्पर्श से, जिसे वह अँगिया में सँहाले थी। वह जड़ थी और चेतन भी, बिजली के खम्भे की तरह, अपने चलते साये की तरह.....

नदी का खामोश बहता पानी तारों की धीमी रोशनी में अपना साया-सा मालूम होता था। उर्मिला को अब वह दुनिया भी, जिसे वह पीछे छोड़े आ रही थी, धुँधली-सी, साये की तरह अस्पष्ट-सी लगने लगी थी। उसके दिमाग में एकबारगी ही बहुत से उड़ते हुए साये छा

गये। किन्तु उनमें से एक भी इतना स्पष्ट आकार न पा सका कि वह उसे पहचान सके।

नदी के किनारे पर पहुँचकर उर्मिला ने अपने-आपको ठंडी रेत पर गिर जाने दिया और मुँह के बल लेट रही। उसकी गर्म साँस ठंडी रेत को गीला करती हुई रेत में गुम होने लगी। सहसा उसका एकान्त भंग हो गया। दूर पुल पर से रेलगाड़ी गुज़र रही थी, और उसकी सीटी अँधेरे को भेदती उसे झकझोर रही थी। क्या पता वह गाड़ी भी अपने अन्दर एक बारात लिये जा रही हो। आह, एक और बदकिस्मत लड़की ! उर्मिला वैसे ही मुँह के बल लेटे-लेटे सोचने लगी। इस शादी के लिए उस लड़की को अपने अस्तित्व का कितना खून करना पड़ा होगा। कितने आये होंगे उसे परखने, उसे देखकर 'न' करने। और अब उसी अपरिचित आदमी से वह धुल-मिल जायगी जो एक दिन इसका मूल्य आँकने आया था। किस हृदय से वह प्यार करेगी उस व्यापारी से ? उसकी मुस्कराहटों पर उस व्यापार की मलिन छाया न पड़ा करेगी क्या ? उसने भी क्या-क्या सपनों के महल न बनाये होंगे जिसमें केवल प्रियतम होगा और प्रेयसी और—और प्रेम। और उन महलों में बैठकर वे क्या-क्या प्रेम के गीत न गायेंगे। और बाहर ज़ोर की आँधी चलेगी, और वर्षा की टप टप खिड़की के शीशों को तोड़ने की धमकी देगी ताकि आँधी और तूफ़ान अन्दर आकर उनका प्रेमालाप सुन सकें ! और अन्दर वह मन्त्र-मुग्ध, दुनिया से बेसुध, परस्पर प्यार के नग़मों में गुनगुना रहे होंगे। लेकिन किस कीमत पर, किस कीमत पर ? मेरे महलों की नींव तो रेत की निकली। मुझे यह कीमत मंज़ूर नहीं थी। कभी मंज़ूर नहीं होगी....और उर्मिला उठकर खड़ी हो गयी। अभिमान और गर्व से उसने सिर ऊँचा किया और

चारों तरफ़ देखा । गाड़ी कहीं-की-कहीं निकल गयी थी । फिर से सन्नाटा छा गया था । गाड़ी के शोर और सन्नाटे की व्यापकता, दोनों से ही बेखबर नदी का पानी अपनी मंज़िल की ओर बहे चले जा रहा था । नदी की धारा में आत्मविश्वास का बल था । उर्मिला को अपने में भी एक नयी शक्ति का आभास हुआ । उसने खत को अपनी अँगिया में से निकाला, उसे शॉल में लपेटा, शॉल को बड़े करीने से तह किया और किनारे पर पड़े एक पत्थर पर रख दिया । फिर साये की तरह खामोश, लेकिन सशक्त नदी के पानी की ओर बढ़ी । अब वह पानी के बिलकुल पास आ गयी थी । ठंडे पानी ने उसके पावों को छुआ । उसके शरीर में एक सर्द बिजली-सी दौड़ गयी और वह झटके से पीछे हट गयी । वह धड़कते हुए दिल से फिर आगे बढ़ी और नदी की धारा में कूदने को भुकी । एक क्षण के लिए उसका धड़कता दिल भी थम गया और उसके अन्दर से आवाज़ आयी 'बुज़दिल' । उर्मिला आहिस्ता-आहिस्ता सीधी खड़ी हो गयी और बड़बड़ायी 'बुज़दिल' । तब उसने आहिस्ता से अपना शॉल उठाया, खत को फाड़कर नदी में फेंक दिया और घर की तरफ़ लौट पड़ी....

एक महीने के अन्दर ही कुमारी उर्मिला खन्ना, श्रीमती उर्मिला शेखर बन गयी ।



कच्चे धागे

क्लब के स्नानागार में पसीने से तर टेनिस के कपड़े उतारते हुए कृष्ण को सहसा खयाल आया कि शायद उसमें अब वह चुम्बकीय आकर्षण नहीं रहा जिसके कारण वह लन्दन में बदनाम होने लगा था। वैसे तो वह यार-दोस्तों की महफ़िल की जान हुआ करता था। उसकी सजीवता और ताज़गी, उसका बातचीत का निखरा-निखरा ढंग, उसका हँसते-हँसते बातों-ही-बातों में चुटकी लेना जिससे मित्र भी बुरा न मानें और महफ़िल भी खिल उठे—इन्हीं गुणों ने उसे यार-दोस्तों में बहुत प्रिय बना दिया था। लेकिन जब कोई मित्र किसी लड़की के साथ होता, उसे दूर ही से सलाम करता। लोगों का कहना है कि लड़कियाँ सुन्दर-सुडौल नवयुवकों पर ही रीझती हैं। अगर बात असल में ऐसी ही है तो यह समझ में नहीं आता कि वह कृष्ण से क्यों इतनी जल्दी घुल-मिल जाती थीं। व्यावहारिक माप-तोल से न तो उसमें डील-डौल था, न छबीलापन। पतला-दुबला आदमी, आँखों पर गोल-सा

चश्मा, चौकोर चेहरे पर मोटी-सी नाक। लेकिन लड़कियों के लिए उसमें कोई खास आकर्षण था। उसे विश्वास था कि ज़रा परिचय का अवसर मिलते ही वह लड़की को अपनी ओर अवश्य भुका लेगा। ऐसी विजय से उसके अहंभाव को पुष्टि मिलती, सन्तोष भी। वह अपने को सुगठित-सुडौल नौजवानों से बढ़कर मानता। यह ठीक है कि पहले लड़कियाँ डील-डौल से ही प्रभावित होती हैं। लेकिन प्रायः ऐसे युवक उन्हें बहुत देर तक बाँधकर नहीं रख पाते। और यहाँ कृष्ण की पहली मुलाकात ज़रा मुश्किल से होती, लेकिन परिचय के बाद.....परिचय के बाद उसका लड़की को पहचानकर बात करने का ढंग, उसकी अर्थपूर्ण मुस्कराहट, उसकी चश्मे को भेदती और दिल में उतरती सजीव नज़रें—उसके अचूक अस्त्र थे।

कृष्ण उठकर स्नानागार में लगे बड़े शीशे के सामने आ खड़ा हुआ और अपनी बत्तीस इंच की छाती फुलाने और अपने बारह इंची बाज़ुओं के अदृश्य पुट्टों को टटोलने का विफल प्रयत्न करने लगा। फिर जल्दी से शावर के नीचे नहाने चला गया। साबुन के भाग को अपनी आँखों के आगे से हटाते हुए उसने सोचा कि उसकी आकर्षण-शक्ति भी इसी भाग की तरह गुम हो गयी दिखायी देती है। उसे बम्बई में आये छै महीने से ऊपर हो गये हैं और वह अभी तक किसी एक युवती को भी कार में बैठाकर जुहू की सैर तक कराने नहीं ले जा सका। आखिर इसका कारण क्या है। क्लब में सुन्दर लड़कियों की कमी नहीं, लेकिन सिवाय उन दो मोटी औरतों के, जो रोज़ टेनिस खेलने आती हैं, उसका किसी से अभी तक 'नमस्ते-नमस्ते' से ज़्यादा परिचय नहीं है। और उन दो से परिचय बढ़ाके वह करेगा भी क्या? लानत है ऐसे रस-हीन जीवन पर। और उसने ज़ोर-ज़ोर से अपने शरीर को

मलना शुरू किया, जिससे पानी के छींटे उड़-उड़कर दीवारों को गोला करने लगे। वह बड़बड़ाया, 'ज़रूर मुझे कुछ करना ही होगा, ज़रूर....' और तब सहसा उसके कानों ने पास ही में बजते हुए बैंड की आवाज़ सुनी। 'आह, यह शाम!' उसने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए सोचा, 'कहीं आज मिसेज़ चन्दन से मुलाकात हो जाय.....।'।

और मिसेज़ चन्दन का विचार आते ही उसका चेहरा खिल उठा। पोंछते-पोंछते, तौलिये से मुँह उठाकर उसने सामने की दीवार पर नज़रें गाड़ दीं जहाँ मिसेज़ चन्दन की आकर्षक आकृति उभरने लगी थी। उसके बिखरे गीले बालों से उसकी आँखों पर पानी की बूँदें टपकने लगीं। वह उन्हें अनायास पोंछता रहा और सामने दीवार पर देखता रहा। फिर वह मुस्कराया। आज तो क्लब की नृत्य-निशा है। आज शनिवार है और हर बुध और शनि को क्लब में नाच होता है। नाचना अब अंग्रेज़ों और पारसियों का ही शगल नहीं रहा। कई नाचती गुजराती युवतियों की यास भरी मुस्कराहटें, पंजाबी युवतियों की दिलकश शोखियाँ और खोजा युवतियों के पाउडर-गाज़े से सुसज्जित चेहरे उसकी आँखों के सामने घूम गये। काश....श....श.....!!! वह अपने जिस्म को तौलिये से ज़ोर-ज़ोर से रगड़ने लगा। काश, उसकी मिसेज़ चन्दन— पूर्णिमा—से मुलाकात हो सकती! दूर से तो उसने पूर्णिमा को कई बार देखा है। लेकिन मुलाकात केवल एक बार ही हो पायी है और वह भी केवल चन्द मिण्टों के लिए। अनवर के जन्म-दिन की पार्टी में। उस दिन पूर्णिमा से बातें ही न हो पायी थीं। कितने लोग पूर्णिमा से बात करने के लिए उत्सुक थे। और कृष्ण का अपना दिल बहुत ज़ोर से धड़कता रहा था। इतनी लड़कियों से मिलने के बाद भी यह कमबख्त दिल फिर कैसे तड़प उठता है। आह, अगर कहीं वह एक बार पूर्णिमा.....

पूर्णमा.....के साथ नाच पाता ! और उसने तौलिये को अपने फैलाये हुए बाजुओं में लेकर बैंड पर बजती धुन को गुनगुनाते हुए, क्लब के स्नानागार में ही नृत्य के कदम उठाने शुरू कर दिये। बैंड पर 'वीथ्रानीज़ वाल्ज़' की तेज़ धुन बज रही थी। वह कितनी खूबसूरती से यह नाच कर सकता था। जैसे नृत्य-गृह की नदी में भँवर पड़ता बढ़ता चला जा रहा हो। लन्दन में उसके चार-दोस्त उसकी नृत्य-दक्षता पर कितना रश्क किया करते थे। खैर उस बात को तो तीन साल हो गये। इस बीच में तो वह सब-कुछ भूल गया होगा। शायद फिर से सब-कुछ सीखना पड़े।

वह कपड़े बदलकर अब नीचे हॉल में आ गया था, और एक तरफ़ खड़ा नाच करते लोगों को देख रहा था। बहुत से नाचने वाले तो नृत्यकला से नितान्त अनभिज्ञ मालूम होते थे। उनके चेहरों की परेशानी और पाँवों के बेमतलब इधर-उधर पड़ने से ऐसे लगता था जैसे वे लोग अपनी मर्जी से शहीद हो रहे हों। शायद वे इसलिए नाच रहे हैं कि नाचना भी उच्च-वर्ग में सभ्यता का प्रतीक-सा हो गया है। या शायद इसलिए कि किसी स्त्री के स्पर्श का, उसको बाजुओं में लेने का, यह सुलभ साधन है। लेकिन कुछ तो निस्सन्देह ही नाच में निपुण थे। वे बैंड की बजती धुन में खो-से गये थे। वातावरण की प्रकम्पित लय उनके रोम-रोम में एक सुखद सिहरन पैदा कर रही थी। ताल-बद्ध कदमों से वे डान्स-फ़्लोर पर इस तरह अनायास बहते चले जा रहे थे जैसे पानी पर लहरें बही जा रही हों।

कृष्ण के पाँव अनजाने बैंड की धुन पर ताल देने लगे और उसका शरीर लय में झूमने लगा। तभी उसे आवाज़ आयी, 'कहो दोस्त, अकेले खड़े हो?' बैंड बन्द हो गया था, और नाचने वाले अपने माथे और

गर्दन का पसीना पोंछते अपनी-अपनी मेज़ों की तरफ़ जा रहे थे। सरदार ज्ञानसिंह बेदी, जिनसे उसका पुराना परिचय था, पास खड़े कह रहे थे, “भई अकेले ही हो....तो हमारी मेज़ पर ही चलो न !” और वे अपनी संगिनी की ओर मुड़े....“आप हैं मिसेज़ खोसला,” सरदार साहब ने उनका परिचय कराते हुए कहा, “और यह हैं मेरे दोस्त मिस्टर कृष्ण।”

और सरदार ज्ञानसिंह बेदी और मिसेज़ खोसला और कृष्ण बाहर खुले मैदान में आ गये जहाँ मखमली घास पर कुर्सियाँ आंर मेज़ें लगी हुई थीं। सरदार साहब की पार्टी काफ़ी बड़ी थी। कुर्सियाँ वृत्ताकार लगी थीं। बीच में दो-तीन मेज़ों पर बिस्की, बीयर, सोडा इत्यादि की बोतलें और गिलास पड़े थे। सरदार साहब परिचय कराने लगे—‘यह मिस्टर कृष्ण हैं। यह मिस्टर खोसला। यह मेरी बीवी’ (—‘जी हाँ मैं मिसेज़ बेदी को तो जानता हूँ’—) ‘मिस्टर मसाला वाला। मिसेज़ खोसला’—(‘जी हाँ इनसे तो अभी-अभी परिचय हुआ है’)—‘यह मिसेज़ चन्दन.....’

एक क्षण के लिए कृष्ण को ऐसे लगा कि उसके हृदय की गति रुक गयी है। फिर चेहरे पर मुस्कराहट लाते हुए वह कहने लगा, “मिसेज़ चन्दन से मिलने का सौभाग्य तो पहले भी एक बार प्राप्त हुआ है ?”

“जी हाँ” मिसेज़ चन्दन अपनी मुस्कराहट से कृष्ण के दिल को डाँवाँडोल करती हुई बोली, “मुझे भी कुछ-कुछ याद तो पड़ता है..... शायद अनवर साहब की पार्टी में।”

“आप मिसेज़ देसाई हैं, यह मिस्टर रहमान, यह.....” सरदार साहब परिचय कराते गये। कृष्ण को ऐसे लगा जैसे सरदार साहब की आवाज़ सैकड़ों मील परे से आने लगी है। उसे अपनी आवाज़ भी

बड़ी अपरिचित-सी लगी, मानो कोई और ही कृष्ण उस परिचय के जवाब में कह रहा हो, 'आप कैसे हैं ?' 'आप से मिलकर बड़ी खुशी हुई.....'

कृष्ण मिसेज़ चन्दन के पास ही एक खाली कुर्सी पर बैठ गया था। क्लब समुद्र तट पर था। आकाश का चाँद और क्लब की बत्तियाँ हिलते पानी में हिचकोले खा रही थीं। बस वहीं कहीं कृष्ण को भी अपना दिल तैरता, गोते खाता मालूम हुआ।

पूर्णिमा की वह मुस्कराहट और उसकी वे नाचती आँखें बहुत दिनों से कृष्ण को बेताब कर रही थीं। कृष्ण ने पहले-पहल पूर्णिमा को एक कला-केन्द्र की बैठक में देखा था। बाद में कृष्ण को मालूम हुआ कि वह इस कला-केन्द्र की एक कार्यशील सदस्या है। उसे यह भी मालूम हुआ कि बम्बई की कला-साहित्य-गोष्ठियों में उसका बड़ा मान है। मिस्टर चन्दन उसके पति हैं। वही जो मालाबार हिल पर रहते हैं और जिनका कारोबार इतना विस्तृत है कि हर महीने अपने कर्मचारियों को बीस हजार रुपया वेतन में बाँटते हैं। कृष्ण को दो-एक बार चन्दन साहब को दूर से देखने का संयोग प्राप्त हुआ था। कोई पैंतीस-चालीस वर्ष के होंगे। सिर के बाल पकने लगे थे। कृष्ण ने जब भी उन्हें देखा था, एक लम्बा सिगार मुँह में लिये देखा था। उनके सिगार पीने के ढंग से ही यह बात साफ़ हो जाती थी कि वे इधर-उधर की गप-शप में अपना समय नष्ट करने वालों में से नहीं। वे अपना सब समय, शक्ति, बातचीत पैसा कमाने में ही लगाते हैं। तब सट्टा कृष्ण ने मिसेज़ चन्दन की ओर देखा। आयु की छाप कुछ-कुछ उनके चेहरे पर पड़ने लगी थी, लेकिन पाउडर और गाँजे के कुशल प्रयोग से उन्होंने अपने ३० को २५ में बदलने का जो प्रयत्न किया था, वह काफ़ी सफल रहा था। और आँखों में तो अभी

बहुत चमक बाकी थी। ऐसा लगता था कि उन भारी लम्बी पलकों ने कौंधती बिजली को छिपा रखा है, जो पलकें उठते ही किसी पर गिर पड़ेगी। ओठ उनके वैसे ही भरे-भरे होंगे, लेकिन लिपस्टिक की पेंसिल ने निचले ओठ को कुछ और ही हृदयग्राही बना दिया था, और अधरों के कोनों को कुछ ऐसे उभारा था जिससे वह हर समय मुस्कराते मालूम होते थे।

“बैरा,” सरदार साहब ने कृष्ण के विचारों को भंग करते हुए आवाज़ दी और फिर कृष्ण से पूछने लगे, “क्या पियोगे?”

कृष्ण जैसे हवा में उड़ता-उड़ता नीचे आ गिरा। वह अपने-आपको सम्हालता हुआ बोला, “शुक्रिया, अभी कुछ नहीं।” सरदार साहब ने आग्रह किया, “बोलो, बोलो, भई कुछ तो लो—ब्रांडी?” कृष्ण मुस्कराता हुआ बोला, “नहीं नहीं—अगर मुझे कुछ ज़रूर ही पीना है तो.... छोकरा, नारंगी का रस, ताज़ा नारंगी का।” “छिः” सरदार साहब तिरस्कार भरी निगाहों से कृष्ण की ओर देखते हुए बोले—“बैरा, साहब के लिए एक विहस्की सोडा लाओ—बड़ा पेग।” तब कृष्ण के उठते हाथ को रोककर कहा.... “अच्छा भाई, न सही, बैरा, छोटा पेग।”

जब बैरा चला गया तो कृष्ण मुस्कराता हुआ बोला, “सरदार साहब, आपकी मेहमान-नवाज़ी तो किसी युवती की मुस्कराहट की तरह है जिसका मुकाबिला अपने बस की बात नहीं।” वह भारी लम्बी पलकें ऊपर उठीं। बिजली कौंधी। कोनों की मुस्कराहट अधरों पर फैली, अधरों से चेहरे पर। पास बैठे अन्य लोगों की निगाहें भी कृष्ण की ओर मुड़ीं। “वाह, साहब वाह,” सरदार साहब बोले, “खूब पुल बाँध दिये आप ने तो।”

“अभी थोड़ी देर हुई टेनिस के बाद मैंने विहस्की पी थी। उसी से

मुझे दिन में तारे दिखायी देने लगे थे, और अब यह पी ली तो शायद एक के दो चाँद नज़र आने लगे,” कृष्ण ने कहा और अनायास उसकी निगाहें पूर्णिमा की ओर उठ गयीं ।

पार्टी में एक हल्का-सा ठहाका गूँजा । पूर्णिमा की आँखें एक खामोश शरारत से नाचीं, उनके भरे-भरे ओठ हल्की मुस्कान में थोड़ा खुले, और उनका दायाँ हाथ अनायास जूड़े में लगे पुष्प को सँवारने लगा । और तब न जाने कैसे कृष्ण की खोयी हुई चुम्बकीय शक्ति, उसकी सजीवता, उसकी ताज़गी तूफ़ान की तरह उमड़ आयी । पता नहीं वह उस दिन क्या-क्या कह गया । उसकी बात-बात पर पार्टी के लोगों के चेहरे खिल उठते और ठहाके गूँजने लगते ।

हर चन्द मिनट के बाद पार्टी के कुछ लोग अन्दर हॉल में नाच करने चले जाते थे । कुछ बाहर बैठे खाते-पीते और खुशगप्पियाँ करते रहते । मिस्टर खोसला कृष्ण से पूछने लगे, “क्यों, कृष्ण साहब, आप नाच नहीं करते ?” कृष्ण ज़रा मुस्कराया, “साहब, अब तो हमारा केवल दिल नाचता है । हम खुद तो बैठे नारंगी का रस पीते हैं—ताज़ी नारंगी का ।” सरदार साहब फ़रमाने लगे, “वाह-वाह, तो क्या इंग्लिस्तान के नाचघरों में हींग बेचने जाया करते थे ?” कृष्ण कहने लगा, “भई, वहाँ की बात और थी । जहाँ मैं जाता था वहाँ तो सब विद्यार्थी लड़कियाँ होती थीं । शोख और क्षमाशील । अगर भूले से मेरा पाँव किसी के पाँव पर पड़ भी जाता तो वहीं ‘सॉरी-सॉरी’ कहकर मामला खत्म हो जाता, और उस शोख का हँसना भी जारी रहता और नाचना भी ।” “मैं वॉलेंटियर करती हूँ,” मिसेज़ चन्दन ने शोखी से मुस्कराते हुए कहा । कृष्ण का दिल धक्के से उसके मुँह में आ गया । वह सुम-बकुम मिसेज़ चन्दन के मुस्कराते चेहरे की तरफ़ देखता बैठा रहा । सरदार साहब ठहाका

लगाते हुए बोले, “मियाँ, अब तो फँस गये, अब बहाने नहीं चलने के !” कृष्ण अब तक सम्बल चुका था। उसने मिसेज़ चन्दन को धन्यवाद देते हुए कहा, “मैं आपका बहुत अभारी हूँ ! पर सचमुच मुझे नाच का बहुत कम अभ्यास है।”

“कोई बात नहीं,” मिसेज़ चन्दन ने कृष्ण पर अपनी निगाहों और मुस्कान की बिजली गिराते हुए कहा, “मुझे मालूम है, आप ऐसे ही लजा रहे हैं। जब मैं खुद वॉलेंटियर कर रही हूँ तो आपको १ ‘कोच कैसा ?’”

कृष्ण ने अपने आन्तरिक तूफ़ान को छिपाते हुए कहा, “मेरा अहोभाग्य ! पर मैं फिर आपको सावधान किये देता हूँ कि अगर बार-बार मेरा पाँव आपके पाँव पर पड़ा तो आपको मुझे क्षमा करना होगा। अगले नाच पर आपको तकलीफ़ दूँगा।”

मिसेज़ चन्दन का जवाब केवल एक शोख़ मुस्कराहट था।

*

हॉल में नाच शुरू करते वक्त कृष्ण ने मिसेज़ चन्दन को अपने बाजूओं में लिया। समाज का कायदा है कि जब तक नृत्य-साथियों का आपस में बनिष्ठ परिचय न हो, नाच करते वक्त उनके शरीर परस्पर बहुत समीप नहीं होते। कृष्ण का दायाँ हाथ हल्के-से मिसेज़ चन्दन की कमर को थामे था। मिसेज़ चन्दन का बायाँ हाथ शंख मुद्रा में, एक महकता रुमाल थामे, कोमलता से कृष्ण के कन्धे पर टिका था, जैसे डाल से लटकता हुआ फूल झुककर किसी वृक्ष के तने को छू रहा हो। और उनका दायाँ हाथ था कृष्ण के बायें हाथ के आलिंगन में, कन्धे से किंचित ऊपर उठा हुआ। वैसे उन दोनों के शरीर एक-दूसरे से परे थे।

*** कच्चे धागे

लेकिन ज्यों-ज्यों डान्स-फ्लोर पर घूमते गये, कृष्ण और पूर्णिमा के दिल और दिमाग में संगीत की धुन एक तार से बजने लगी। दोनों ही नृत्य में कुशल थे। दोनों के शरीर परस्पर समीप आते गये। दोनों संगीत की लय में खाते गये। परस्पर इतने समीप कि अब वे एक-दूसरे को देख भी नहीं सकते थे। पूर्णिमा की गर्म साँस कृष्ण के कन्धे के कपड़ों को चीरकर उसके जिस्म में एक सनसनी पैदा कर रही थी और कृष्ण की अधखुली आँखें पूर्णिमा के कन्धे से ऊपर, परे दीवारों को न देखती निगाहों से देख रही थीं। पहले थोड़ी देर वे एक-दूसरे से इधर-उधर की बातें करते रहे थे। पूर्णिमा की मुस्कराहट रुकती ही न थी। कृष्ण की बात-बात पर उनका चेहरा खिल उठता। कई बार हल्की हँसी फूट पड़ती, जिससे उनके अधरों के लाल फ्रेम में जड़ी दन्त-पंक्ति चमकने लगती। और तब सहसा पूर्णिमा ने अपनी गहरी लम्बी पलकें उठाकर कृष्ण की आँखों में आँखें डाल दी थीं और कहा था, “कितनी मिठास है आपकी बातों में!” और एक क्षण के लिए पूर्णिमा का दायाँ हाथ, जो कृष्ण के बायें हाथ में थमा था, ज़रा और दब गया था, और एक क्षण के लिए पूर्णिमा का शरीर कृष्ण के शरीर के और समीप आता मालूम हुआ था।

कृष्ण के दिल की धड़कन इतनी तेज़ हो गयी थी और उसके दिमाग में इतनी खलबली मच गयी थी कि वह कुछ कह न सका था। केवल उसकी रग-रग में रक्त का समुद्र ठाठें मार उठा था और उसका चेहरा कानों के छोर तक लाल हो गया था। और वे नाचते गये थे। कृष्ण की आँखों के सामने चन्दन साहब का नक्शा खिंचने लगा जो हर लॉन में बैठे अब भी सिगार के कश लगा रहे होंगे और सोच रहे होंगे कि अपने लाख के दो लाख कैसे बनायें। और अन्दर यहाँ उनकी

पत्नी एक अपरिचित के साथ, एक सरासर अपरिचित के साथ, नाच कर रही है, उसके शरीर से मानो चिमटी जा रही है, उससे भेद-भरी दबी आवाज़ में कह रही है, 'कितनी मिठास है आपकी बातों में !' और नाच की गर्दिशें तेज़ होती गयीं और उनकी साँस गर्म होती गयी और उनके शरीर चिमटते गये। अब वह संगीत की धुन के अदृश्य तारों से ही एक-दूसरे को समझ रहे थे, पहचान रहे थे। और कृष्ण को खयाल आया कि सिवाय घर के, जहाँ पूर्णिमा को चाहे-अनचाहे चन्दन साहब की बीबी बनकर रहना पड़ता है, क्या दोनों के शरीर इस संगीतमय ढंग से एक-दूसरे को समझ पाते होंगे ? और यदि उनके शरीर परस्पर इतने समीप आते भी होंगे तो क्या उनके दिलों की धड़कन कभी इतनी तेज़ होती होगी ? क्या चन्दन साहब को कभी यह सुनने का अवसर मिला होगा, 'कितनी मिठास है आपकी बातों में !' क्या वे उस धड़कते हुए दिल के रहस्य को समझ सके होंगे जिससे यह शब्द निकले हैं ? चन्दन और पूर्णिमा के अधूरे जीवन का क्या कारण है, कृष्ण सोचने लगा। क्या कारण है कि चन्दन साहब के अभी जवान होते हुए भी मिसेज़ चन्दन को भेद-भरी आवाज़ में एक सरासर अपरिचित से कहना पड़ता है, 'कितनी मिठास है आपकी बातों में !' और फिर एक क्षण के लिए उसका हाथ उस अपरिचित पुरुष के हाथ में ज़रा और दब जाता है और एक क्षण के लिए उसका शरीर उस अपरिचित पुरुष के और समीप आ जाता है। और तब जिस आकस्मिक वेग से यह प्रश्न उठा था, उसी आकस्मिक वेग से कृष्ण को अपने सवाल का जवाब भी मिल गया। चन्दन साहब की पत्नी केवल पूर्णिमा ही तो नहीं है। उनकी एक और भी पत्नी है, जिसे दुनिया दौलत कहती है। दौलत से प्यार बढ़ाने में चन्दन साहब इतने मग्न हैं कि वह उनकी पटरानी बन गयी है और

हाड़-मांस-रक्त की बनी पत्नी उसकी अपेक्षित सौत—चन्दन साहब की केवल उप-पत्नी । उनके पास इस हाड़-मांस की पत्नी को समझने का समय नहीं । धनी आदमी में त्रुटि ही क्या होगी ? उसके पास दौलत जो है । वह औरत के दिल को समझकर क्या करेगा ? उनका तो शायद खयाल है कि पति के नाते पूर्णिमा पर उनके जो अधिकार हैं, उनके बदले में उन्होंने पूर्णिमा को आज्ञा दी दे रखी है, कि जो चीज़ चाहे वह खरीद ले, जहाँ चाहे घूम आये, जैसा चाहे अपने-आपको सजा ले, इससे उसकी पूर्णतया तसल्ली हो जाती होगी । मूर्ख चन्दन ! कृष्ण ने सोचा, यदि उसके पास कुछ कम पैसा होता तो शायद वह समझ जाता कि औरत में 'यह चीज़ मेरी है, यह चीज़ मेरी नहीं है' की अनुभूति बहुत तीव्र होती है, और उसके लिए सब से बड़ी अभिमान की वस्तु है उसका पति । आदमी भले ही अपने धन का प्रदर्शन करके अपने को पूर्ण समझ ले । स्त्री अपने को गहने-कपड़े से सजाकर बहुत खुश होती है, पर इससे भी बढ़कर वह खुश होती है अपने पति का प्रदर्शन करके, ऐसे पति का, जिस पर उसे नाज़ हो । सभा-सोसाइटी में पति की प्रशंसा को सुनकर पत्नी की आँखों में सहज ही विजय की चमक आ जाती है । और जो करोड़पति की लड़की हो, उसे धन के अतिरिक्त अभिमान करने के लिए कुछ और चीज़ चाहिए, बिना काम-काज के सारा दिन घर में अनमने बैठे रहने के बाद उसे दिल बहलाव के लिए सामग्री चाहिए । और उस समय भी यदि पति एक लम्बा-मोटा सिगार मुँह में लिये पैसे की दुनिया में खोया रहे तो उसकी पत्नी तो ढूँढ़ेगी ही ऐसा आदमी, जो अपने ओज और सजीवता से उसके दिल को उछाले, उसके ओठों पर सहज मुस्कान ले आये और उसे बेसास्ता कहने पर मजबूर कर दे, 'कितनी मिठास है

आपकी बातों में !' औरत का कितना मन करता है ऐसे रंगीन साथ के लिए, सदा के लिए उस आदमी की हो जाने के लिए ! 'आह, चन्दन साहब !' कृष्ण ने धड़कते हुए दिल से सोचा, 'अगर कल आपकी पत्नी आपको छोड़कर चल दे तो उसका उत्तरदायित्व आप पर होगा, उस पर नहीं । वह तो घुटे हुए वातावरण का परिणाम है, उसका कारण नहीं । आप ही तो उसे यह रास्ता अपनाने पर मजबूर कर रहे हैं और....' और बँड बन्द हो गया और साथ ही अपने पाँवों पर नाच की आखिरी तेज़ गर्दिश के साथ कृष्ण और पूर्णिमा एक-दूसरे की ओर स्निग्ध निगाहों से देखते थम गये ।

*

साँझ लम्बी होती गयी । कभी कृष्ण नाचा किया, कभी उसका दिल । बीच-बीच में वह सोचता, काश, काल की गति रुक जाय और उस साँझ का कभी अन्त न हो ! और वह कुछ ऐसे ही सोच में था जब कि पूर्णिमा ने उससे कहा, "३१ दिसम्बर को मैं ताज में एक पार्टी दे रही हूँ, आप भी ज़रूर आइएगा ।"

कृष्ण के लिए जैसे स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आया । अपने उल्लास को छिमाता हुआ वह बोला, "बहुत-बहुत धन्यवाद ! लेकिन मैं क्रिसमस में पूना जाने की सोच रहा था । यदि ३१ को यहाँ हुआ तो अवश्य आऊँगा !"

"उस दिन तो आपको यहाँ होना ही पड़ेगा !" पूर्णिमा अपनी मुस्कराहट से वातावरण को निखारती हुई बोली, "पूना में क्या खा है । उस दिन नव-वर्षोत्सव का नाच है । खूब रौनक रहेगी । यह

*** कच्चे धागे

पर घूमने लगा ।

भीड़ इतनी थी कि जो नृत्य में निपुण थे उन्हें अपनी दक्षता-प्रदर्शन का अवसर नहीं मिल रहा था । जो इस कला में कच्चे थे, उनका अनाड़ीपन दर्शकों को इतना अखरता न था । और कन्धे-से-कन्धा भिड़ा जा रहा था, साथियों के साथ, अपरिचितों के साथ । स्त्रियों के चेहरे तमतमाने लगे थे, और पुरुषों के माथों पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं ।

कृष्ण पहले तो कुछ देर नाच करने से झिझकता रहा था । इस बार पार्टी में काफ़ी लोग थे जो या तो नाच करने के शौकीन नहीं थे या इस कला से अनभिज्ञ थे । वह पी-पिलाकर, हँसी-मज़ाक करके, लोगों को नाचते देखकर खुश हो रहे थे । दो-एक को छोड़कर कृष्ण बाकी सब से अपरिचित था । उन्होंने भी उसकी ओर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया । वह अपनी इधर-उधर की बातों में निमग्न रहे । कृष्ण ऊब-सा बैठा रहा । पूर्णिमा अतिथियों की देख-भाल में व्यस्त थी । बीच-बीच में उसकी ओर देख लेती । कृष्ण को महसूस हुआ जैसे वह नज़रें कह रही हैं, मेरे यहाँ होते चेहरे पर खिन्नता कैसी ? नाच के शौकीन बैंड पर धुन शुरू होते ही फ़्लोर पर चले जाते । पार्टी का कोई व्यक्ति उठकर पूर्णिमा से नाचने की याचना करता । पूर्णिमा मुस्कराकर अनुमति देती । बाकी जिनकी निगाहें भी इस ताक में होतीं कि पूर्णिमा से नाच के लिए कहें उठते-उठते बैठ जाते । फिर उठकर कुछ खिसियाने से मुस्कराकर पार्टी की किसी और ललना से नृत्य के लिए प्रार्थना करते । चन्दन साहब बैठे सिगार चबाते और मेहमानों से पूछते, 'मिसेज़ रहमान, थोड़ी-सी शैरी और लीजिए न !' 'क्यों भाई खोसला, तुम्हारा गिलास कब से खाली पड़ा है ! बेदी साहब, यह क्या.....बैरा, साहब के लिए विस्की लाओ,

बड़ा पेग !' कृष्ण का जम्हाइयाँ आने लगीं ।

जब डान्स-फ्लोर पर नाच के लिए कृष्ण ने पूर्णिमा को बाजू में लिया तो उसका हृदय स्नेह और कृतज्ञता से उमड़ रहा था । उस बड़ी पार्टी में बैठे, चारों तरफ़ हँसते, शोर मचाते लोगों की भीड़ होते हुए भी कृष्ण अपने-आपको बड़ा अकेला पा रहा था । उसकी नज़रों से यह बचा न रहा था कि उसके साथ नाचने से पहले पूर्णिमा शिष्टाचार-वश पार्टी के कई व्यक्तियों के साथ नाच करने के लिए उठी तो थी, लेकिन अनमनी-सी । और एक-दो बार तो उसे ऐसा लगा था कि पूर्णिमा कोई बहाना करके नाच को अधूरा छोड़कर ही अपने साथी के साथ वापस मेज़ पर आ गयी है । पूर्णिमा नाच की कितनी शौक्तीन है, कृष्ण ने सोचा, लेकिन फिर भी उसका आज किसी और के साथ नाच करने को मन नहीं है । उसका यह सब त्याग मेरे लिए नहीं तो और किसके लिए है । वह जानती है कि मैं इस महफ़िल में अकेला हूँ, अपरिचित हूँ, उपेक्षित हूँ । जब मेरी नज़रें उसकी ओर उठीं, मैंने उसे अपनी ओर ही देखते पाया । बिना एक शब्द बोले उसकी इस चुपचाप सहानुभूति में कितनी स्निग्धता है, कितनी आत्मीयता ! और अनायास ही कृष्ण ने पूर्णिमा के हाथ को ज़रा और दबा लिया ।

अब तक होटल के कर्मचारियों ने कागज़ की तरह-तरह की रंग-बिरंगी टोपियाँ लोगों में बाँट दी थीं और लगभग सब स्त्री-पुरुषों ने उन्हें पहन लिया था । किसी के सिर पर घुड़दौड़ के सवार की दोरंगी टोपी थी । कोई जहाज़ी बेड़े की टोपी को सम्हाले था । किसी ने सरकस के मसखरे की टोपी को सिर पर अटका रखा था । कोई रूमी टोपी पहनकर ठहाके लगा रहा था । कृष्ण के हिस्से में एक पीले रंग की फुंदनेदार छोटी गोल टोपी आयी थी, जिसे सिर पर टिकी रखने के

लिए उसको बार-बार दवाना पड़ता था। लोग हा-हा, हू-हू कर रहे थे। हॉल में शोर बढ़ता जाता था। नाचने वालों में भी इधर-उधर टाँगें चलाने वाले ज़्यादा होते जाते थे, संजीदगी से नाच करने वाले कम। हर कोई अपने-आपको और दूसरों को यह जतलाने में व्यस्त था कि वह बहुत खुश है। आज रात पुराने साल का खैरवाद कहना है और नये साल का स्वागत करना है। इसलिए सब को खुश होना ही चाहिए। पूर्णिमा के रोम-रोम से खुशी फूटी पड़ती थी। यह नये साल का स्वागत है या मेरे सामीप्य का उल्लास, कृष्ण सोचने लगा। पूर्णिमा ने स्वर्ण रंग का एक कागज़ी मुकुट सिर पर रख लिया था। तुम तो सचमुच ही रानी हो, मेरी रानी! कृष्ण ने मन-ही-मन कहा। और उसका जी चाहा कि पूर्णिमा से बहुत-बहुत बातें करे—चाँद और सितारों की, भरने और पहाड़ों की, आकाश के इन्द्रधनुष की, क्षितिज के पार सुनहले देश की। पूर्णिमा के अपने शरीर की नैसर्गिक खुशबू थी, कच्चे अमरुदों की-सी और उससे लिपटी हुई महक थी, 'शैनेल' के 'गार्डिनिया' की। कृष्ण पर एक मदहोशी-सी छाने लगी। कच्चे अमरुदों और 'शैनेल' की परस्पर धुली-मिली उस सुगन्धि में चुप-चुप ही उसकी दुनिया सजग हो उठी जिसमें चाँद और सितारों की सुन्दरता थी, जल-प्रपातों का संगीत और क्षितिज के पार का रहस्य। वह पूर्णिमा की ओर देखकर केवल मुस्करा दिया। पूर्णिमा का उत्तर भी मुस्कराहट में मिला, हल्की-हल्की मुस्कराहट जिसमें हज़ार संदेश थे। 'तुम मेरी हो, बिलकुल मेरी!' कृष्ण ने अपने मन में सौगन्ध खाते हुए कहा, 'तुम्हारी उस सोने के पत्थर से नहीं निभ सकती। तुम्हें चाहिए एक अनन्त उपासक, मेरी तरह, जो तुम्हारे अधखुले ओठों की, तुम्हारी छलकती आँखों की और सब से बढ़कर उस दिल और दिमाग की जो

तुम्हारे व्यक्तित्व विशेष का स्रोत है, कद्र करना जानता हो। अभी तुम अधखिली कली हो। तुम्हारे पूर्ण विकास के लिए उपयुक्त वातावरण चाहिए, मेरी संगीत का, मेरे दिमाग का, मेरे हास्य और विनोद का। उस चुस्ट चबाते चन्दन से तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा, सिवाय रूखी बातों के और निरर्थक धन के। मुरझा जाओगी, मेरी पूर्णिमा !' कृष्ण ने पूर्णिमा को अपने दायें बाजू में ज़रा और ज़ोर से जकड़ लिया जैसे उसको चन्दन के अनिष्ट प्रभाव से बचा रहा हो। दोनों भीड़, धक्के और शोर के बावजूद नाच की धुन में खोते गये।

वह नाच की धुन खत्म हुई। नाचने वाले थम गये। तालियाँ बजाने लगे और 'वन्स मोर-वन्स मोर' का शोर मचाने लगे। बैंड ने फिर धुन छोड़ दी। मदमस्त नाचने वाले फिर से बैंड की धुन पर अपने और डान्स-फ्लोर के चारों ओर घूमने लगे। इस बार नाच करते समय कृष्ण और पूर्णिमा दोनों चहकने लगे। बातें नये साल के स्वागत और लोगों की भीड़ से शुरू हुई और नाच के फ्लोर की एक ही गर्दिश में चाँद और सितारों की पृष्ठभूमि में पूर्णिमा के सौन्दर्य की व्याख्या में बहक गयीं। पूर्णिमा ने हँसते हुए कहा, 'बड़े शरारती हैं आप !' और कृष्ण कहने लगा, 'आपकी कृपा से !' पूर्णिमा के अधर मुस्काने लगे, और उसकी ठोड़ी और उसकी आँखें और वह अनायास बोल उठी, 'कितनी मिठास है आपकी बातों में !' कृष्ण कान की लवों तक लाल हो उठा।

और कृष्ण की कल्पना ने एक ही क्षण में एक मधुर लोक का सृजन कर दिया। सामने दीवार पर घड़ी के सुनहरी हाथ साढ़े ग्यारह बजा रहे थे। आध घंटे में नये वर्ष का स्वागत होगा। ठीक बारह बजे आध मिनट के लिए हॉल की बत्तियाँ बुझा दी जायेंगी। नाचने

चाले अपने-अपने साथी को बाहों में भीचेंगे और नये साल की खुशी के प्रतीक-स्वरूप उसके कपोलों पर, लबों पर, माथे पर जहाँ-तहाँ चुम्बन-चिन्ह जमा देंगे। यह ऐसी पार्टियों की रीति है। और फिर बत्तियाँ रोशन होंगी तो किसी युवती के कपोलों पर लगी लाली उतर गयी होगी, किसी के ओठों की लिपस्टिक बिखर गयी होगी, किसी पुरुष की बो-टाई ढीली हो गयी होगी, किसी के गाल पर अधरों की लाल छाप लग गयी होगी। और सब एक-दूसरे को देखेंगे, हँसेंगे, फत्तियाँ कसेंगे और....और भी टाप-टापकर नाचने लगेंगे।

प्रायः यह चुम्बन-चिन्ह लगाने का अधिकार पति या मँगेतर का होता है। उस आध मिनट के अँधेरे तूफ़ान में अपनी पत्नी या प्रेयसी के साथ नये साल के लिए न मालूम क्या-क्या प्रणय-प्रण करने होते हैं। और इसलिए उस रात बहुत से युवक अपनी प्रेयसियों को ऐसी पार्टियों में ले आते हैं। उस आध मिनट के अर्थ-गर्भित अँधेरे में चुम्बन की मुहर लगाकर कसमें खाते हैं और परस्पर कहते हैं कि, 'मैं और तू हमेशा-हमेशा के लिए एक-दूसरे के हैं।' और कल्पना ने कृष्ण के दिमाग में टन-टन करके बारह बजाये। बत्तियाँ बुझीं। और पूर्णिमा ने अपने-आपको उसके बाजूओं में ढीला छोड़ दिया.....।

कृष्ण इस खयाल से ही सिहर उठा। एक क्षण के लिए उसे चन्दन साहब पर दया हो आयी। वह उनकी पत्नी को उनसे छीने लिये जा रहा है। फिर उसे चन्दन साहब पर क्रोध हो आया। जो पति अपनी पत्नी को नहीं समझता, उसके साथ ऐसा होना ही चाहिए। सारी शाम उसने नाम को भी अपनी पत्नी के साथ नाच नहीं किया। बैठा सिगार चबाता रहा, बिस्की पीता रहा और मेहता साहब से सट्टे के लेन-देन के बारे में बातचीत करता रहा। और यहाँ उसकी पत्नी

एक अपरिचित से घुली-मिली जा रही है, मदमस्त हुई उसके साथ नाच रही है और कभी-कभी अनायास कह उठती है, 'कितनी मिठास है आपकी बातों में !' अच्छा, चन्दन दास्त, अब बैठे सिगार ही चवाओ । तुम्हारी पूर्णिमा तो तुम्हारे हाथ से गयी.....।

इधर घड़ी का बड़ा हाथ छोट्टे से एक होने के लिए बेताब हो रहा था, उधर लोगों का उत्साह और कोलाहल बढ़ता जा रहा था । अभी बारह बजने में दस मिनट बाकी थे । कुछ देर विश्राम के बाद पूर्णिमा और कृष्ण फिर नाचने लगे थे । कृष्ण का दिल उछल-उछलकर उसके गले में आ रहा था जैसे उसका दम छुट जायेगा । उसका सारा चेहरा लाल हो उठा था और अनजाने उसकी हथेलियों में थोड़ा-थोड़ा पसीना आ गया था । यह नाच और उसके बाद पुराने साल की विदा और नये साल के स्वागत का नाच । और वह और पूर्णिमा और पूर्णिमा और वह !

बैड ने पुराने साल को विदा कहने की धुन छोड़ी । कृष्ण का दायाँ हाथ पूर्णिमा की कमर को आश्रय देने के लिए उठा, और उसका बायाँ हाथ पूर्णिमा के दायें हाथ को आलिंगित करने । पूर्णिमा ने सहसा घड़ी का ओर देखा । कहा, 'ओह यह नाच तो पति के साथ....' और मुस्कराती क्षमा माँगती, बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये जल्दी से मेज़ की ओर बढ़ी और चन्दन साहब का हाथ पकड़कर उन्हें उठाती हुई बोली, "उठो, उठो, नये साल का स्वागत नहीं करोगे....."

कृष्ण जैसे अपनी जगह पर खड़ा-खड़ा ही जड़ हो गया हो । उसके सोचने की सब शक्तियाँ लुप्त हो गयीं । तब उसने झटका देकर अपने-आपको इस बेहोशी से सचेत किया । तब तक पूर्णिमा और चन्दन डान्स-फ्लोर पर आ गये थे । उनसे उसकी आँखें चार हुईं । वह किसी-

न-किसी तरह अपने चेहरे पर एक फीकी-सी मुस्कराहट ले आया। वह अनिश्चित पगों से अपनी मेज़ की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचकर वह कुर्सी में धँस गया। बेदी साहब ने पूछा, “क्या कुछ तबीयत ठीक नहीं?”

कृष्ण के हाथ-पाँव सर्द पड़ गये, लेकिन उसका खून खौल रहा था। उसे चन्दन और पूर्णिमा दोनों ही ज़हर लगने लगे। उसे महसूस हुआ कि उसको बेवकूफ बनाया गया है। और वह भी कितना भोला है कि भट्ट पूर्णिमा की मुस्कराहट के भाँसे में आ गया। उसका जी चाहा कि इतनी ज़ोर से मेज़ पर मुक्का मारे कि सभी बोलते और गिलास लुढ़क कर ज़मीन पर आ रहें। और वह फिर पाँव की ठोकर से उन बिखरा हुई चीज़ों को इधर-उधर लुढ़काता हुआ तेज़ी से बाहर निकल जाय।

बत्तियाँ बुझ गयीं। कृष्ण का दिल भी बुझ गया। पूर्णिमा उसके इतने समीप आकर भी दूर चली गयी थी। कृष्ण को लगा कि वह अब कभी किसी लड़की से प्यार नहीं कर सकेगा। पूर्णिमा ने उससे ही धोखा नहीं किया, बल्कि अपने-आप से भी दगा की है।

बत्तियाँ बन्द होते ही हॉल में लोगों का शोर और बढ़ गया था। बत्तियाँ फिर से रोशन होते-होते और भी तेज़ हो गयीं। लोग एक-दूसरे से हाथ मिलाने लगे, एक-दूसरे से बग़लगीर होने लगे, कोई-कोई एक-दूसरे को चूमने भी लगा और ‘नया साल मुबारक-नया साल मुबारक’ की आवाज़ों से हॉल गूँज उठा। लोग सीटियाँ बजाने लगे, पटाखे चलाने लगे, उछल-उछलकर छत पर से लटकते हुए गुब्बारों को पकड़कर फोड़ने लगे। गुब्बारों के फटने की ठाँय-ठाँय और लोगों के ठहाके आपस में घुल-मिल गये। अब लोग एक-एक साथी के साथ नहीं

नाच रहे थे, बल्कि बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस का गिरोह बनाकर एक-दूसरे का बायें हाथ से दायाँ और दायें हाथ से बायाँ हाथ पकड़े ज़मीन पर बड़े जोर से पैर पटककर नाच रहे थे और उतने ही जोर से चिल्ला और हँस रहे थे । कृष्ण ने बेज़ारी से मुँह फेर लिया.....

लोगों का नाचता एक गिरोह कृष्ण के पास से गुज़रा और सहसा एक महकता कोमल हाथ उसके हाथ पर रुक गया और ज़रा-से दबाव से उसे खींचने लगा । साथ ही पूर्णिमा की मृदु हँसी और आवाज़ आयी, “आइए, आइए, नया साल मुबारक !” और इससे पहले कि कृष्ण कुछ कहे या आपत्ति करे, उसने अपने-आपको उस नाचते गिरोह का एक सदस्य पाया, उसका बायाँ हाथ पूर्णिमा के दायें हाथ में, उसका दायाँ हाथ साथ वाले व्यक्ति के बायें हाथ में । पूर्णिमा उसकी ओर देखकर हँस रही थी । बाकी सब को तरह अपने दोनों तरफ़ के साथियों के हाथ भटके से हिला-हिलाकर नाच रही थी और सब के स्वर में स्वर मिला-मिलाकर ऐसे मौकों पर गाया जाने वाला प्रसिद्ध अंग्रेज़ी गीत ‘ओल्ड लंग ज़ाइन’ गा रही थी । कृष्ण ने भी अपने-आपको हँसते हुए पाया, अपने दोनों तरफ़ के साथियों के हाथों को भटके से हिला-हिलाकर नाचते पाया और ‘ओल्ड लंग ज़ाइन’ गाते पाया.....।



अगले दिन जब कृष्ण सोकर उठा तो उसके दिल में फिर पूर्णिमा का प्यार ठाठें मार रहा था । उसने पूर्णिमा को न केवल माफ़ कर दिया था, बल्कि उसकी ओर से पूरी सफ़ाई भी पेश कर दी थी कि वह क्यों नये साल के स्वागत के समय अपने पति के साथ नाची । आखिर

कच्चे धागे

वह भारतीय महिला है। समाज का मुँह भी तो बन्द रखना है। उस समय पति के साथ नाच करना पुरानी रीत है। यह तो उसे करना ही चाहिए था। वह बारह बजने में पाँच मिनट तक तो मेरे साथ नाचती रही थी। मुझे छोड़कर चन्दन से रिवाजी नाच नाचने के लिए उसे कितना कष्ट हुआ होगा। बेचारी पूर्णिमा ! इसमें उसका क्या दोष ? रिवाजी आडम्बर खत्म होते ही उसने खुद मुझे हाथ से पकड़कर अपने गिरोह में शामिल कर लिया था जैसे मुझे अपने जीवन का आवश्यक अंग समझती हो। असल में तो क्षमा मुझे उससे माँगनी चाहिए। मैं उसे कितना ग़लत समझ बैठा। यह तो खैर गुज़री कि उसने मुझे ऐसे मुँह फुलाये बैठे नहीं देखा। देख लेती तो मुझे कितना ओछा समझती। कहीं उसने देख ही तो नहीं लिया.....

टेलीफ़ोन पर पूर्णिमा पूछने लगी, “आपकी तबीयत तो ठीक है ? बेदी साहब कह रहे थे कि नाच के बाद आप ऐसे आकर बैठ गये थे जैसे एकाएक अस्वस्थ हो गये हों, गुमसुम। आप ने वहाँ बताया क्यों नहीं ?”

“वाह, यह भी खूब रही ! आप ही ने बीमार किया और आप ही पूछ रही हैं, आप बीमार तो नहीं।” टेलीफ़ोन पर कृष्ण कहने लगा, “योंही कुछ थक-सा गया था, आप भी कहती होंगी, क्या रंग में भंग डाल दिया। मैं तो स्वयं ही क्षमा माँगने आपके यहाँ आने वाला था।”

“क्षमा-वमा की छोड़िए,” पूर्णिमा हँसती हुई बोली, “आप अपनी सुनाइए कैसे हैं, मैं तो कल नये साल के ज्वार में इतनी बह गयी कि कुछ पता ही नहीं चला कि क्या हो रहा है। यह तो आज बेदी साहब की बातों से मालूम हुआ कि आप कुछ अस्वस्थ रहे। लेकिन हाँ, आप हमारे ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ ज़रूर लाइए, इसी बहाने सही।....परसों

शाम ठीक रहेगा ? हम घर पर ही होंगे ।”

पूर्णिमा का ‘शरीबखाना’ मालाबार हिल पर बना एक महल-का महल था । बाहर फाटक पर वर्दी पहने गोरखा खड़ा था । अन्दर जब पोर्च में उसकी छोटी पुरानी मोटर रुकी तो भट आगे बढ़कर एक वर्दी वाले नौकर ने मोटर का दरवाज़ा खोला और उसे सलाम किया । कोठी के कुशादा अहाते में उगी उम्दा मखमली घास में जगह-जगह रंग-बिरंगे फूलों की बड़े ढंग से तराशी हुई क्यारियाँ ऐसे लग रही थीं, जैसे किसी ग्रामीण बाला की हरी ओढ़नी में सलमे-सितारे का काम । लॉन के बीचोबीच एक फ़व्वारा था, संगमरमर का, जिसमें से उछलता हुआ पानी ऐसा लगता था मानो धरती के छिपे अरमान फूट निकले हों । लॉन में एक तरफ़ को एक बड़ी छतरी थी जिसके नीचे चार-पाँच कुर्सियाँ पड़ी थीं और मेज़ पर कुछ गिलास । वह पोर्च की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा । जहाँ सीढ़ियाँ खत्म होती थीं, वहाँ दरवाज़े के पास एक और वर्दी पहने नौकर खड़ा था । कृष्ण ने उसके हाथ में अपना विज़िटिंग कार्ड दे दिया । नौकर ने दरवाज़े के एक पट को खोलकर सादर कृष्ण को भीतर आने के लिए कहा । अन्दर एक लम्बा बरामदा था जिसके दोनों ओर कीमती चित्र लटके हुए थे । बरामदे में से होता हुआ नौकर कृष्ण को एक बड़े कमरे में ले गया और ‘आप बैठिए, मैं अभी ख़बर करता हूँ ।’ कहकर अन्दर चला गया ।

कृष्ण ने अपने चारों ओर देखा । सुसज्जित कमरे में संगमरमर के फ़र्श पर कीमती कालीन बिछे थे । दीवारों पर दो-तीन बढ़िया मौलिक चित्र टँगे थे । एक कोने में रेडियोग्राम पर सुनहरी फ़्रेम में जड़ी पूर्णिमा की फ़ोटो मुस्करा रही थी । यद्यपि कमरे में कोई बत्ती दिखायी नहीं देती थी, फिर भी सारे कमरे में एक धीमा शीतल प्रकाश फैला

हुआ था। तरह-तरह के फूलदानों में तरह-तरह के फूल सजे थे। एक कोने में पड़े बड़े फूलदान में दो पत्तेदार लम्बी टहनियों को इस अन्दाज़ से रखा गया था मानो कोई युवती एक बाजू किंचित उठाये, एक किंचित फैलाये नाच की मुद्रा में खड़ी हो। तिपाई पर, बुक शेलक पर, दीवारों में लगी ब्रेकट पर, देश-विदेश से संग्रहीत वहाँ की कला विशेष के नमूने सजे थे। चित्रकार जैसे चौखटे में लगी कैनवस पर रंगों के दक्ष मिश्रण से एक पूर्णतया सम्पन्न चित्र बना लेता है, इस ड्राइंगरूम में भी हर चीज़ ऐसी उपयुक्त और इस ढंग से रखी गयी थी, जैसे वह उस चार दीवारों के चौखटे में जड़ी सर्वांग सुन्दर तस्वीर हो, ऐसी तस्वीर जिसकी एक रेखा को भी इधर-उधर कर देने से सारी तस्वीर बेजोड़ हो जायगी, जैसे किसी तानपूरे का एक भी तार ढीला होने से सारा संगीत बेसुरा हो उठे। अवश्य ही उस कमरे के सजाने में पूर्णिमा का हाथ होगा, कृष्ण ने सोचा। और उसने अपने दिल में पूर्णिमा के प्रति स्नेह की हल्की गुदगुदी-सी महसूस की। लेकिन साथ-ही-साथ उसने अपने-आपको इस वातावरण में अजनबी-सा पाया। यह राजाओं-नवाबों के रहने के साज़ो-सामान हैं। उस जैसे स्वतंत्र-स्वभाव वाले जीव के लिए नहीं। वह एक कौच पर बैठ गया, नर्म-नर्म गदियों वाला कौच। कृष्ण को कुछ घबराहट-सी मालूम हुई। कमरा सम्पूर्णतया 'एयर कंडीशन्ड' था। और उसमें यह नर्म-नर्म गदियाँ, यह बढ़िया कीमती कालीन, यह दीवारों के रंग से मेल खाते हुए भारी सुन्दर पर्दे। उसे लगा कि यह कमरा भोग-विलास की पृष्ठभूमि है। इसमें मानसिक विकास का उतना मूल्य नहीं जितना शारीरिक निखार का। शायद यही कारण है कि राजाओं और नवाबों का भोग-विलास में लिप्त रहना अनिवार्य है। हद सेज़्यादा दवा का खाना भी बीमारी बन जाता है। जैसे इस

नर्म गुदगुदे कौच पर बैठकर सहज ही जी चाहता है कि कोई युवती पास बैठी रहे, उससे प्रेमालाप होता रहे, उसके शरीर की इच्छा बढ़ती रहे। शुक्र है, कृष्ण ने गर्व से सिर ऊँचा करते हुए सोचा कि मैं इतना अमीर नहीं हूँ। नहीं तो इस विलासिता के वातावरण में यह मानसिक और बौद्धिक सजीवता जिस पर उसको इतना नाज़ है, कभी की विलुप्त हो गयी होती। उसे अपने कवि-मित्र अशोक का खयाल आया जिसे एक बार राजभवन में ठहरना पड़ा था। वह कवि, जो निरन्तर पक्षियों की तरह चहका करता था, राजभवन में आकर एकदम मूक हो गया था, जैसे उसका प्रेरणा-स्रोत बिलकुल सूख गया हो। कविता के लिए चाहिए विस्तार, हृदय का और वातावरण का—सुदूर क्षितिज और खुले मैदान। लेकिन राजभवन में अशोक ने एक किस्म की कैद-सी महसूस की थी, चारदीवारी की कीमती साज़ो-सामान की, रस्मी माहौल की। कृष्ण को भी कुछ ऐसी ही कैद महसूस हुई। उसे पूर्णिमा की हालत पर रहम आने लगा। यह घर उसके नैसर्गिक प्रवृत्ति के लिए अनुकूल नहीं। यह तो एक सुनहरा पिंजरा है जिसमें वह बरबस कैद है। शायद वह बचपन से ही ऐसे सुनहरे पिंजरे में कैद है। उसका पति चन्दन तो अमीर है ही। उसका पिता भी कम अमीर न था। मालूम नहीं इस घुटे-घुटे वातावरण में पूर्णिमा अपनी मानसिक सजीवता को कैसे कायम रख सकी है। पूर्णिमा को इस कैद से आज़ाद कराना अब केवल उसके प्रेम को ही चुनौती नहीं, बल्कि मनुष्यता के नाते उसकी कर्तव्य-परायणता को आह्वान भी है.....

.....और बायें दरवाज़े से पहाड़ के कंधे पर बल खाते जल प्रपात की तरह पूर्णिमा कमरे में दाखिल हुई। दूधिया रंग की साड़ी पहने। वह माथे पर बहकी-बहकी बालों की लट, वह मधुर मुस्कान में

कुछ खुलते हुए ओठ, वह उन्माद का निमन्त्रण लिये छलकती आँखें—
कृष्ण हड़बड़ाकर स्वागत के लिए उठा। पूर्णिमा की उस अचानक
उपस्थिति ने उसके हृदय के गूढ़तम स्तरों को एक सुखद आह्लाद से
कँपा दिया। वह दोनों पास-पास कौच पर बैठ गये, और कुछ क्षणों के
लिए कृष्ण ने अपने-आपको एकदम मौन पाया।

फिर इधर-उधर की बातें होने लगीं। योंही निरर्थक-सी। एक तो
कृष्ण को कमरे का वातावरण वैसे ही कुछ घुटा-घुटा और भारी-भारी
लग रहा था। दूसरे उन नर्म कीमती गहियों पर बैठकर कृष्ण को नहीं
सूझ रहा था कि क्या बातें करे। उसको महसूस हुआ जैसे किसी नदी
को बाँध लगाकर उसके बहाव को रोक दिया गया है, जैसे उस कमरे
की फ़िजा ने उसकी सजीवता और वाक्सरिता के उमड़ते तूफ़ान का
गला घोट दिया है। कमरे की हर चीज़ को रखने का वह करीना !
और उस करीने का वह रोब-दाब। यों लगता था कि अगर किसी
चीज़ को ज़रा छेड़ा या इधर-उधर किया तो न मालूम कमरे की आत्मा
पर क्या अत्याचार हो जाय। यहाँ तो जी चाहता था कि आदमी खुद
भी कमरे के साज़ो-सामान की एक बेजान चीज़ होकर करीने से कहीं
पड़ा रहे। कमरे के कीमती साज़ो-सामान का एक अंग हो जाय। कृष्ण
ने दीवारों के रंग से मेल खाते पदों, छिपी बत्तियों से फैलती नर्म
रोशनी, एयर-कंडीशनिंग से उपजती सुखद शीतलता इत्यादि का
विषय लेकर कई बार बात को चलाना चाहा। लेकिन हर बार पूर्णिमा
ने कोई और बात छेड़ दी। उसके लिए तो वे चीज़ें उसके रहन-
सहन का साधारण अनिवार्य अंग हैं। उसके लिए तो वे चीज़ें, वे
सुविधाएँ स्वभाविक हैं। उनका न होना सोचा ही नहीं जा सकता।
उन पर बात क्या करे ?

अब तक चन्दन साहब भी कमरे में आ गये थे। बैरा ने दो गिलासों में विहस्की और सोडा डाल दिया था। पूर्णिमा ने एक नाजुक प्यालानुमा गिलास में थोड़ी-सी 'शैरी' भर ली थी और आहिस्ता-आहिस्ता बातों में कुछ बहाव आने लगा था। आज तो चन्दन साहब भी ज़रा रंग में थे। और पूर्णिमा तो ऐसे चहक रही थी जैसे बसंत में नव-पल्लव देखकर पंखी। कृष्ण के दिमाग पर पड़ी बर्फ भी कुछ-कुछ पिघलने लगी थी। लेकिन अपनी बातों की बढ़ती सजीवता के बावजूद उसको ऐसा लग रहा था जैसे वह किसी चारदीवारी में बन्द कभी-कभी बाहर भाँककर देख लेता हो। वह अपनी बातों में आज वह नैसर्गिक निखार नहीं पा रहा था जिससे वह स्वयं भी एक प्रकार की तृप्ति महसूस किया करता था और दूसरे भी वाह-वाह कर उठते थे। आज तो उसे लग रहा था कि वह दिमाग पर ज़ोर देकर बातें बाहर निकाल रहा है, उनमें अपनी गति कोई नहीं। बातें कही जा रही हैं, उन्हें किसी-न-किसी तरह बहाव दिया जा रहा है, पूर्णिमा की खुशी के लिए.....।

चन्दन और पूर्णिमा पोर्च में खड़ी मोटर तक कृष्ण को छोड़ने आये। दोनों तरफ से 'कितना आनन्द आया' 'शाम कितनी अच्छी गुज़री' इत्यादि विदा-सूचक भाव प्रकट करके हाथ मिलाये गये। और पूर्णिमा का विदा में उठा हुआ हाथ, उसकी मधुर मुस्कान और 'फिर आइए' की याद साथ लेकर कृष्ण अपनी पुरानी मोटर में घर को चला।



चौपाटी के पास पहुँचकर कृष्ण ने अपनी मोटर रोक दी। बाहर

निकलकर एक लम्बी साँस ली। अनायास ही उसके मुँह से निकला, 'मैं अच्छा हूँ जैसे हूँ'। समुद्र से आती ठंडी हवा से उसकी रगों का तनाव कुछ कम हुआ और उसे लगा जैसे उसके दिमाग पर से कोई भारी बोझ हट गया है। उसने अपनी मोटर को थपथपाया और प्यार से बोला, 'हमें कैडिलैक नहीं चाहिए, हमें रोल्सरोइस नहीं चाहिए।' उसने और दो-चार गहरी साँसें लेकर समुद्र की हवा से अपने फेफड़ों को भरा, और दूर क्षितिज तक निगाह दौड़ायी। 'मेरे मानसिक निखार की पृष्ठभूमि यह विराट् प्रकृति है, उसने गर्व से सोचा, वह कारागार नहीं।' बेचारी पूर्णिमा ! मालूम नहीं वह उस कैदखाने में कैसे रहती है.....

कृष्ण पूर्णिमा और चन्दन को अपने घर आने का निमन्त्रण दे बैठा था, लेकिन जिस दिन उन्हें खाने पर आना था, वह कुछ घबराया-घबराया-सा था। उसका घर बुरा तो न था लेकिन कहाँ वह मालाबार हिल का विशाल महल और कहाँ यह कोलाबा में छोटा-सा फ्लैट। और फिर कृष्ण था तो अविवाहित ही। और अविवाहितों की तरह लापरवाह। घर की एक भोंकी से ही स्पष्ट हो जाता था कि कृष्ण साहब कुँवारे हैं। घर की कोई चीज़ अपनी जगह करीने में न रह पाती। सोने के कपड़े कहीं गोल कमरे में पड़े होते, पढ़ने की किताबें सोने के कमरे के किसी कोने में मिलतीं। घर में केवल एक ही सोफ़ा सेट था और चन्द कुर्सियाँ, जिन्हें वह महीने में एक-आध बार अपनी जगह पर सलीके से लगाकर ड्राइंगरूम को ड्राइंगरूम की तरह बना देता था। लेकिन न सोफ़ा-सेट पर नर्म गद्दियाँ थीं, न फ़र्श पर बढ़िया कालीन। न छिपी बत्तियों की रोशनी थी, न एयर कंडीशनिंग। एक दीवार पर चित्रकला प्रदर्शनी से पचास रुपये में खरीदा एक चित्र टंगा था, दूसरी दीवार पर एक विदेशी युवती की तस्वीर थी। पाँच

साल पहले लन्दन में उसका इस युवती से परिचय हुआ था। और यद्यपि उस युवती में कृष्ण की दिलचस्पी कब की खत्म हो चुकी थी, लेकिन कुछ मानसिक आलस्य के कारण, कुछ पुराने दिनों की याद के नाते वह उस युवती की तस्वीर को अब भी सभाले फिरता था। आज ड्राइंगरूम को सजाते हुए कृष्ण अपने दिल में यह फ़ैसला करने की कोशिश कर रहा था कि वह उस तस्वीर को टेंगा रहने दे या उतार दे। इस तस्वीर की पूर्णिमा के दिल पर क्या प्रतिक्रिया होगी। सम्भव है कि पूर्णिमा उससे पूछे कि यह तस्वीर किसकी है। वह क्या जवाब देगा? शायद एक अर्थपूर्ण मुस्कराहट ही काफ़ी हो। खैर, यह तस्वीर यहाँ दीवार पर रहनी ही चाहिए। पूर्णिमा यह न समझ बैठे कि उसके जीवन में वह पहली औरत है जो उस पर इतनी मेहरबान हुई है। उसने मेज़ पर एक नया कपड़ा बिछाया और उस पर दो-चार किताबें इधर-उधर बख़ेरकर रख दीं। इससे पूर्णिमा सहज हा जान जायगी कि उसे न केवल पढ़ने-लिखने का शौक है, बल्कि एक सच्चे कलाकार की तरह वह साधारण नियमों से बद्ध नहीं है। पहले उसने सोचा कि विहस्की को बोतल ले आये। लेकिन साधारणतया वह शराब नहीं पीता। इसलिए उसे खयाल आया कि आज के खाने के बाद यह बोतल योही पड़ी रहेगी। वह तो उन्हें वही देगा जो वह स्वयं आमतौर पर पीता है। उसके घर में 'औरेंज स्क्वाश' की बोतल पड़ी ही है। आज वह 'टोमाटो जूस' का डिब्बा और मँगवा लेगा। आखिर चन्दन और पूर्णिमा को भी कभी तो मालूम होना ही चाहिए कि बाकी दुनिया कैसे रहती है.....

पूर्णिमा के प्रवेश करते ही कृष्ण को ऐसे महसूस हुआ जैसे सहसा अँधेरे में चाँदनी बिखर गयी हो। सारा कमरा 'शैनेल गार्डिनिया'

की सुगन्ध से महक उठा। कृष्ण को पूर्णिमा इतनी सुन्दर कभी नहीं लगी थी जितनी आज। पूर्णिमा के पीछे-पीछे सिगार मुँह में दबाये चन्दन साहब भी दाखिल हुए। पूर्णिमा सोफ़े पर बैठ गयी। चन्दन साहब भी एक आराम कुर्सी पर बैठकर सिगार चवाने लगे, जैसे कोई बैल जुगाली कर रहा हो। कृष्ण अनुमति पाकर पूर्णिमा के पास ही सोफ़े पर आ बैठा।

सोफ़े पर नर्म गद्दियाँ तो थी ही नहीं, चन्दन और पूर्णिमा के वहाँ होने से कृष्ण को अपना सोफ़ा सेट और भी सख्त और फ़ज़ूल लगाने लगा। कमरे में पड़ी कुर्सियाँ, जिन पर न नयी पॉलिश थी, न गद्दियाँ, कृष्ण को ऐसे मालूम होने लगीं जैसे अभी किसी कबाड़ी की दूकान से लायी गयी हों। न कोई काम का कालीन, न काम के पर्दे। बिजली की बत्तियाँ तारों से ऐसे लटक रही थीं जैसे रास्ता भूल गयी हों। कृष्ण को लगा, यह उसका ड्राइंगरूम नहीं, किसी बेनाम रेलवे स्टेशन का थर्ड-क्लास वेटिंग रूम है। पूर्णिमा ने एक उड़ती नज़र से कमरे में पड़ी चीज़ों को देखा। कृष्ण का दिल अनायास अपने साज़ो-सामान की नहूसत के बारे में क्षमा माँगने को हुआ। वह कहने लगा, “आप तो जानती ही हैं, पूर्णिमा जी, कि कुँवारे घर के मामले में कितने लापरवाह होते हैं। अभी तक ढंग का सोफ़ा-सेट भी लाकर नहीं डाल सका।”

पूर्णिमा ने मुस्कराते हुए कहा, “कुँवारों को रहना भी ऐसे ही चाहिए। घर के सजाने का शग़ल तो विवाहित लोगों के लिए है।” इस उत्तर से कृष्ण को तसल्ली नहीं हुई। उसे लगा कि पूर्णिमा ने यह केवल उसका दिल रखने के लिए कहा है। चन्दन साहब के चेहरे से तो साफ़ मालूम हो रहा था कि वह समझते हैं कि यह जगह घर नहीं, कबूतरखाना है। कृष्ण का दिल बैठने लगा। कितनी बार इसी कमरे

में दोस्तों की महफ़िलें गर्म हुई हैं, जहाँ उसके बुद्धि-कौशल की धाक जमी है। कितनी बार यही कमरा यारों की रंगीन गप-शप का अखाड़ा बना है जिसमें उसकी सजीव बातों ने सब को मात दी है। और आज इसी कमरे में उसे सूझ नहीं रहा कि क्या बात करे। उस दिन मालाबार हिल पर पूर्णिमा के महल में उसने सोचा था कि विलासिता के वह साज़ो-सामान मानसिक विकास के दुश्मन हैं, और आज उसके अपने घर का वातावरण उसकी सजीवता के लिए रुकावट बन रहा था। उसे तेज़ी से महसूस होने लगा कि चन्दन और पूर्णिमा को अपने यहाँ बुलाकर उसने कहीं ग़लती तो नहीं की। क्लब के वातावरण में उसके बुद्धि-चातुर्य का पूर्णिमा पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। वह कहीं लुप्त तो नहीं हो रहा.....

कृष्ण का नौकर 'औरेंज स्क्वाश' के तीन गिलास ट्रे में रखकर ले आया। मालाबार हिल के बर्दी पहने बैरे के मुकामिले में उसका कमीज़-नेकर पहने नौकर कितना बेढब और बेतुका लगता था ! और मालाबार हिल की विहस्की और 'शैरी' के बाद यह नारंगी का रस कितना हास्यास्पद और अर्थहीन। कृष्ण शर्म से पानी-पानी होने लगा। तन्मा माँगते हुए बोला, "मैं आमतौर पर अपने घर विहस्की नहीं रखता, मैंने कहा, चलो आज आप लोगों को भी नारंगी का रस ही पिलायें।" पूर्णिमा एक घूँट पीकर बोली, "बड़ा अच्छा है।" पर कृष्ण को खटकता रहा कि इस बहानेबाजी से उसकी अपनी तसल्ली नहीं हुई, पूर्णिमा और चन्दन को क्या यक़ीन आयेगा। वह बेदिली से 'स्क्वाश' के गिलास को अपनी उँगलियों में आहिस्ता-आहिस्ता घुमाने लगा।

पूर्णिमा शरारत से नाचती आँखों से दीवार पर टँगी विदेशी युवती

की तस्वीर की ओर देखने लगी। कृष्ण भी उभर ही देखता हुआ मुस्कराकर कहने लगा, “ओह वह !” और तब दोनों एक-दूसरे की तरफ देखकर हँसने लगे। कुछ वक्त के लिए कृष्ण को बेचैनी गायब हो गयी, और वह अपने रंग में आने लगा। लेकिन जब वे उठकर खाना खाने वाले कमरे की ओर जाने लगे तो कृष्ण की पुरानी घबराहट फिर लौट आयी। खाना अच्छा बना था, लेकिन अब तक कृष्ण को अपने घर की हर चीज़ इतनी बेहंगम-सी लगने लगी थी कि उसे वह खाना बहुत बेस्वाद और फीका लगा। वह खाने के बारे में क्षमा माँगने को ही था कि पूर्णिमा कहने लगी, “आपका बावर्ची तो बहुत अच्छा है। क्या स्वादिष्ट खाना बनाया है !”

लेकिन इस प्रशंसा का असर कृष्ण पर उलटा ही पड़ा। उसे लगा कि प्रशंसा की आड़ में उसका मज़ाक उड़ाया जा रहा है। उसकी बेचैनी और भी बढ़ गयी। और खाने के बाद ड्राइंगरूम में बैठते वक्त तक कृष्ण की यह हानत हो गयी कि वह दिल-ही-दिल में मेहमानों के शीघ्र चले जाने के लिए दुआ करने लगा.....

खाने के बाद चन्दन साहव ने तो फिर अपने सिगार को चबा-चबाकर जुगाली करनी शुरू कर दी थी। पूर्णिमा भी आज सहज स्वभाव से वैसे ही चहक रही थी जैसे अपने मालाबार हिल के महल में। लेकिन जहाँ पहले पूर्णिमा के ओठों की मुस्कान और आँखों की चमक कृष्ण को प्रेरित किया करती थी, आज वही उसे बेहाल कर रही थी। उस दिन पूर्णिमा के घर पर उसने वातावरण में कुछ घुटन महसूस की थी। लेकिन आज तो जैसे उसकी स्फूर्ति पर एकदम कुहरा पड़ गया हो। कहाँ तो उसे पूर्णिमा की बातों के प्रत्युत्तर में बड़े दूर-दूर की सूझा करती थी और कहाँ आज उसे बड़ी मुश्किल से अपने-आपको सभालना पड़ रहा था

कि वह एकदम मूक न हो जाय । पूर्णिमा से भी यह बात छिपी न रही । उसने एक बार कहा भी, “कृष्ण साहब, क्या बात है आज आप कुछ रंग में नहीं हैं.....”

जब पूर्णिमा और चन्दन अपनी मोटर में बैठकर वापस चले तो दरवाजे के पास खड़ा कृष्ण बड़ी देर तक दूर होती हुई मोटर को देखता रहा जिसके ब्रेक की बत्तियाँ कभी चमक उठती थीं, कभी मद्धिम हो जाती थीं । कृष्ण को लगा कि उसका जीवन भी इन बत्तियों की तरह ही है—आशा और निराशा की लहरें । और वह आशा और निराशा के समुद्र में किसी तरह डूबता-उतराता चला जा रहा है । ज़िन्दगी में उसने कितने रिश्ते कायम करने की कोशिश की थी । लेकिन वह सब कच्चे धागे के निकले । प्रतिकूल हवा के एक झोंके से ही टूट गये । दो व्यक्तियों का परस्पर आकर्षण ही उन कच्चे धागों को पक्की डोर नहीं बना देता । ऐसा आकर्षण रिश्ते को अंकुरित भले ही कर दे, लेकिन उसके पनपने के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि चाहिए । और यह पृष्ठभूमि बहुत-सी जटिल चीज़ों का जोड़ है । किसी भी व्यक्ति का असली व्यक्तित्व उसकी विशेष पृष्ठभूमि के चौखटे में ही समझा जा सकता है । और जब भी इस चौखटे की उपेक्षा करके सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया गया, तभी सम्बन्ध कच्चे धागे का साबित हुआ । यह अच्छा ही है कि पूर्णिमा उसकी नहीं हुई । उसकी होकर भी उसकी न हो पाती । पूर्णिमा का उपयुक्त स्थान मालाबार हिल का महल ही है । कृष्ण के घर में, जहाँ न छिपी बत्तियाँ हैं, न एयर-कन्डीशनिंग, न संगमरमर का फ़र्श है, न बढ़िया कालीन, पूर्णिमा की आँखों की चमक और ओठों की मुस्कराहट दस ही दिन में उड़ जाती । कृष्ण का सारा बुद्धि-चातुर्य और उसकी बातों का सारा निखार भी पूर्णिमा और उसकी ताज़गी को कुम्हलाने से

की तस्वीर की ओर देखने लगी। कृष्ण भी उधर ही देखता हुआ मुस्कराकर कहने लगा, “आह वह !” और तब दोनों एक-दूसरे की तरफ देखकर हँसने लगे। कुछ वक्त के लिए कृष्ण को बेचैनी गायब हो गयी, और वह अपने रंग में आने लगा। लेकिन जब वे उठकर खाना खाने वाले कमरे की ओर जाने लगे तो कृष्ण की पुरानी घबराहट फिर लौट आयी। खाना अच्छा बना था, लेकिन अब तक कृष्ण को अपने घर की हर चीज़ इतनी बेहंगम-सी लगने लगी थी कि उसे वह खाना बहुत बेस्वाद और फीका लगा। वह खाने के बारे में क्षमा माँगने को ही था कि पूर्णिमा कहने लगी, “आपका बावर्ची तो बहुत अच्छा है। क्या स्वादिष्ट खाना बनाया है !”

लेकिन इस प्रशंसा का असर कृष्ण पर उलटा ही पड़ा। उसे लगा कि प्रशंसा की आड़ में उसका मज़ाक उड़ाया जा रहा है। उसकी बेचैनी और भी बढ़ गयी। और खाने के बाद ड्राइंगरूम में बैठते वक्त तक कृष्ण की यह हानत हो गयी कि वह दिल-ही-दिल में मेहमानों के शीघ्र चले जाने के लिए दुआ करने लगा.....

खाने के बाद चन्दन साहब ने तो फिर अपने सिगार को चबा-चबाकर जुगाली करनी शुरू कर दी थी। पूर्णिमा भी आज सहज स्वभाव से वैसे ही चहक रही थी जैसे अपने मालाबार हिल के महल में। लेकिन जहाँ पहले पूर्णिमा के आँठों की मुस्कान और आँखों की चमक कृष्ण को प्रेरित किया करती थी, आज वही उसे बेहाल कर रही थी। उस दिन पूर्णिमा के घर पर उसने वातावरण में कुछ घुटन महसूस की थी। लेकिन आज तो जैसे उसकी स्फूर्ति पर एकदम कुहरा पड़ गया हो। कहाँ तो उसे पूर्णिमा की बातों के प्रत्युत्तर में बड़े दूर-दूर की सूझा करती थी और कहाँ आज उसे बड़ी मुश्किल से अपने-आपको सम्हालना पड़ रहा था

कि वह एकदम मूक न हो जाय । पूर्णिमा से भी यह बात छिपी न रही । उसने एक बार कहा भी, “कृष्ण साहब, क्या बात है आज आप कुछ रंग में नहीं हैं.....”

जब पूर्णिमा और चन्दन अपनी मोटर में बैठकर वापस चले तो दरवाजे के पास खड़ा कृष्ण बड़ी देर तक दूर होती हुई मोटर का देखता रहा जिसके ब्रेक की बत्तियाँ कभी चमक उठती थीं, कभी मद्धिम हो जाती थीं । कृष्ण को लगा कि उसका जीवन भी इन बत्तियों की तरह ही है—आशा और निराशा की लहरें । और वह आशा और निराशा के समुद्र में किसी तरह डूबता-उतराता चला जा रहा है । ज़िन्दगी में उसने कितने रिश्ते कायम करने की कोशिश की थी । लेकिन वह सब कच्चे धागे के निकले । प्रतिकूल हवा के एक झोंके से ही टूट गये । दो व्यक्तियों का परस्पर आकर्षण ही उन कच्चे धागों को पक्की डोर नहीं बना देता । ऐसा आकर्षण रिश्ते को अंकुरित भले ही कर दे, लेकिन उसके पनपने के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि चाहिए । और यह पृष्ठभूमि बहुत-सी जटिल चीज़ों का जोड़ है । किसी भी व्यक्ति का असली व्यक्तित्व उसकी विशेष पृष्ठभूमि के चौखटे में ही समझा जा सकता है । और जब भी इस चौखटे की उपेक्षा करके सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया गया, तभी सम्बन्ध कच्चे धागे का साबित हुआ । यह अच्छा ही है कि पूर्णिमा उसकी नहीं हुई । उसकी होकर भी उसकी न हो पाती । पूर्णिमा का उपयुक्त स्थान मालाबार हिल का महल ही है । कृष्ण के घर में, जहाँ न छिपी बत्तियाँ हैं, न एयर-कन्डीशनिंग, न संगमरमर का फ़र्श है, न बड़िया कालीन, पूर्णिमा की आँखों की चमक और ओठों की मुस्कराहट दस ही दिन में उड़ जाती । कृष्ण का सारा बुद्धि-चातुर्य और उसकी बातों का सारा निखार भी पूर्णिमा और उसकी ताज़गी को कुम्हलाने से

न बचा पाते । मालाबार हिल में उसको सब-कुछ मिलता है, जिसके लिए वह बनी थी—ऐश्वर्य और आराम । बाकी रही पूर्णिमा की और उसकी अपनी सजीवता । उसके लिए क्लब की पृष्ठभूमि ही उपयुक्त है । वहाँ न मालाबार हिल के महल का कारागार है, न कोलाबा 'कबूतरखाने' की परिधि । क्लब में बराबर की बाज़ी है । वहाँ निखर। निखरी बातें भी हैं, नाच भी है, ठहाके भी हैं । और जब उस अनुकूल पृष्ठभूमि में पूर्णिमा और कृष्ण मिलते हैं तो दोनों के चेहरे खिल उठते हैं और उनकी ताज़गी और सजीवता यौवन पर आ जाती है और जब पूर्णिमा नाचते-नाचते अपनी चमकती आँखों को कृष्ण की प्यासी आँखों में डालकर कह उठती है, 'कितनी मिठास है आपकी बातों में !' तो कृष्ण के दिमाग की उड़ान आकाश छूने लगती है, पूर्णिमा का हाथ उसके हाथ में ज़रा और दब जाता है, वह एक-दूसरे के ज़रा और करीब आते मालूम होते हैं और दोनों बैंड के संगीत की लय में गुम हो जाते हैं—एक होकर ।



